अनुक्रमणिका

अध्यवसाय	१
सज्जन स्वभाव	३
हृदय बल	३
शिक्षा	५
प्यासा	१०
कुम्भ कलश	११
सच्चा सुख	१३
साँप का जहर	१५
धर्म का फल	१६
बहिरात्मा	२२
साकार से निराकार की ओर	२४
परसुख में अपना दुख	३०
जिंदगी के गुलाम	३५
सोऽहं	३६
बेबुनियाद	३९
मूल का सुधार	४१
अन्धापन	४२
कर्त्तव्य-पथ	४३
मोह का छाला	५०
फकीरी और अमीरी	५३
धार्मिक की पहिचान	५४
अन्याय का धन	५७
सरलता	५९

२४.	ईमानदार मुनीम	६२
२५.	फूलाँ बाई	६६
२६.	माता—पिता का उपकार	७६
२७.	विद्वान और मूर्ख	८३
२८.	राजा और चोर	८७
२९.	वक्ता	९६
३०.	कषाय विजय	१०२
३१.	ईमानदार श्रावक	१०८
३२.	दोष—स्वीकृति	१०९
३३.	पोथी का बैंगन	१२१
३४.	झूठी साक्षी	१२४
३५.	अक्षय तृष्णा	१३०
३६.	माया	१३२
३७.	पुण्य का प्रताप	१३४
३८.	खरा—खोटा	१३८
३९.	तत्त्व-ज्ञान	१४२
४०.	परिग्रह	१४५
४१.	जाट-जाटिनी	१४९
४२.	लज्जा	१५१
४३.	खान-पान की शुद्धि और सामायिक	१५८
४४.	भार	१६०
४५.	मिश्री का हीरा	१६३
४६.	कर्तव्य पालन	१७०
४७.	निष्काम-सेवा	१७३
४८.	ढोंग	१७८
४९.	समभाव	
५०.	लेश्या	
५१.	जीते-जी पुनर्जन्म	
५२.	नीरवन्य-नाश	

माँ-बाप सावधान	१९५
विवेकहीनता	१९८
चमार गुरु	२००
परमात्म-प्रीति	२०५
लक्ष्मी	२०८
ठसक का रोग	२१३
हठ	२१५
महल का द्वार	२१६
पतिव्रता	२१८
आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता	२२१
वीर	२२४
व्यापार की बेईमानी	२२५
आत्म निरीक्षण	२२९
सभ्य चोरी	२३०
परोपकारी	२३२
मनोयोग	२३९
स्वामी नहीं, ट्रस्टी	२४२
समझदारी	२४४
अदृश्य-शक्ति	२४६
दूसरा विवाह	२४८
चार ब्राह्मण	२४९
छोटा और बड़ा	२५०
सत्य निष्ठा	२५१
सत्य भाषण	२५७
अंतिम अवस्था	२६४
असलियत	२६५
मृतक भोज	२६७
समय का मोल	२६९
श्रद्धा	२७५

८२.	ऊँची भावना	२७६
८३.	पाप-पुण्य	२७७
८४.	यह भी न रहेगी	२७८
८५.	मच्छीमार साधु	२८०
८६.	शरणागत प्रतिपाल	२८२
८७.	बफादार	२८३
८८.	पंचों का मकान-शरीर	२८६
८९.	सौ-सयाने एक मत	२८९
९०.	अस्पृश्यता का अभिशाप	२९१
९१.	माया की महिमा	३०२
९२.	अर्थ का अनर्थ	३०३

१ : अध्यवसाय

एक नगर में दो मित्र रहते थे। उसी नगर में कुछ महात्मा भी आये थे और वेश्या भी आयी थी। एक ही समय पर एक जगह तो महात्मा का उपदेश होने वाला था और दूसरी जगह वेश्या का नाच। एक मित्र ने दूसरे मित्र से कहा कि चलो उस नयी आई हुई वेश्या का नाच देखने चलें। दूसरे मित्र ने कहा—नहीं, मैं नाच देखने नहीं चलूंगा, मैं महात्मा का उपदेश सुनने जाऊँगा। दोनों मित्र अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दोनों स्थानों पर गये।

वेश्या का नाच हो रहा था। वेश्या चारों ओर घूम-घूम कर कटाक्षपूर्वक सब की ओर देखती हुई नाच रही थी। लोग वेश्या की प्रशंसा के पुल बांधे देते थे। उसी समय वह मित्र उस नाच की महफिल में पहुंचा। वेश्या को इस प्रकार नाचते और लोगों को उसकी प्रशंसा करते देखकर उस मित्र को विचार हुआ कि आत्मा तो इस वेश्या का भी शुद्ध है, परन्तु न मालूम किन पापों के कारण इसके आत्मा पर अज्ञान का आवरण है। इसी से यह अपने इस सुन्दर शरीर को विषय-भोग में लगा रही है और थोड़े से धन के लोभ में अपना शरीर कोढ़ी को सौंपने में भी संकोच नहीं करती है। हाय! हाय!! यह तो साक्षात् ही नरक की खान है। ये देखने वाले भी कैसे मूर्ख हैं, जो इसके चारों ओर इस प्रकार लगे हुए हैं, जैसे मरे हुए पशु को कुत्ते घेर लेते हैं। यद्यपि यह वेश्या किसी व्यक्ति विशेष को नहीं देखती है—सबको उल्लू बनाने के लिये उनकी तरफ देखती है—फिर भी ये सब लोग अपने-अपने मन में यही समझ रहे हैं कि यह मुझे ही देख रही है।

मैं इस पापस्थान में कहाँ आ गया ! मित्र ने कहा था, फिर भी मैं महात्मा का उपदेश सुनने के लिये नहीं गया । धन्य है मित्र को ! जो इस समय महात्माओं के पास बैठा हुआ धर्मोपदेश श्रवण कर रहा होगा और अपना कल्याण साधता होगा ।

वेश्या की महफिल में गया हुआ मित्र तो इस प्रकार विचार कर रहा है तथा महात्माओं का उपदेश सुनने के लिए गये हुए मित्र को धन्य मान रहा है, परन्तु जो मित्र महात्मा के समीप गया था, वह कुछ और ही विचारता है । जिस समय वह महात्माओं के समीप पहुँचा, उस समय महात्मा लोग विषयों के प्रति घृणोत्पादक वैराग्य का उपदेश सुना रहे थे । इस मित्र को महात्माओं का उपदेश रुचिकर नहीं हुआ, इससे वह अपने मन में कहने लगा कि मैं कहाँ आ गया ! मित्र ने कहा था, फिर भी मैं नाच देखने नहीं गया । धन्य है मित्र को, जो इस समय महफिल में बैठा हुआ आनन्द से नाच देख रहा होगा और गाना सुन रहा होगा ।

दोनों मित्र इस प्रकार अपने-अपने मन में विचार कर रहें हैं और अपनी निन्दा करते हुए दूसरे मित्र की प्रशंसा कर रहे हैं। वेश्या के यहाँ गया हुआ मित्र, वेश्या के नाच को घृणा-पूर्वक देखता है, उसका मन साधुओं के उपदेश में लगा हुआ है, और साधुओं के यहाँ गये हुये मित्र का मन वेश्या के नाच में लगा हुआ है तथा वह नाच देखने के लिये गये हुए मित्र की प्रशंसा कर रहा है । इस तरह वेश्या के नाच—जो पापस्थान है, में बैठा हुआ मित्र तो पुण्य-प्रकृति बांध रहा है और साधु के स्थान—जो धर्मस्थान है, में बैठा हुआ मित्र पाप-प्रकृति बांध रहा है । क्योंकि पाप, पुण्य या धर्म अध्यवसाय पर निर्भर हैं और वेश्या के नाच में बैठे हुए मित्र के अध्यवसाय अच्छे तथा साधुओं के उपदेश स्थान में बैठे हुए मित्र के अध्यवसाय बुरे हैं ।

२ : सज्जन स्वभाव

एक ब्राह्मण गंगा के किनारे खड़ा हुआ था। किनारे के वृक्ष पर एक बिच्छू चढ़ा था। वह गंगा के जल में गिर पड़ा और तड़फड़ाने लगा। यह देखकर ब्राह्मण को दया आ गई। उसने एक पत्ता लेकर बिच्छू को उठाया। लेकिन बिच्छू हाथ पर चढ़ गया और उसने हाथ में डांक मार दिया। डंक लगते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया और बिच्छू फिर पानी में गिर पड़ा। ब्राह्मण ने उस बिच्छू को फिर उठाया लेकिन फिर भी ऐसा ही हुआ। ब्राह्मण ने तीन–चार बार बिच्छू को उठाया लेकिन हरबार बिच्छू ने उसे काटा। यह हाल देख कर वहाँ खड़े, कुछ लोग कहने लगे यह ब्राह्मण कितना मूर्ख है ! बिच्छू इसे बार–बार काटता है और यह उसे बार–बार उठाता है ! उसे मरने क्यों नहीं देता ?

इन लोगों के कथन के उत्तर में ब्राह्मण ने कहा—बिच्छू अपना स्वभाव प्रकट कर रहा है और मैं अपना स्वभाव दिखला रहा हूं। जब बिच्छू अपना स्वभाव नहीं त्यागता तो मैं अपना स्वभाव कैसे त्याग दूं ?

३ : हृदयबल

सुना है, एक अमेरिकन पुरुष भारत में आया। एक भारतीय से उसकी मित्रता हो गई। अमेरिकन अपना कार्य समाप्त

करके अमेरिका लौट गया। उसका वह भारतीय मित्र जब अमेरिका गया तब उसने अपने अमेरिकन मित्र से मिलने का विचार किया। वह उसके घर पहुंचा। साहब उस समय घर नहीं था। उसकी पत्नी ने भारतीय अतिथि का सत्कार करके उसे बिठलाया। भारतीय ने पूछा— साहब कहाँ गये हैं ? मेम साहिबा ने कहा— आप बैठिये, अब उनके लौटने में कुछ ही समय बाकी है। आते ही होंगे।

भारतीय सज्जन बैठे रहे। थोड़ी देर बाद ही उन्होंने देखा कि साहब आ रहे हैं मगर उनके दोनों कन्धों पर दो कुदाल रखे हैं और वे मिट्टी से लथपथ हैं। भारतीय सज्जन मन ही मन सोचने लगे— भारत में यह इतने ऊंचे पद पर कार्य करता था और बड़े ठाट से रहता था। यहाँ इसका यह कैसा हाल है ? क्या इसका दीवाला निकल गया है ? इस प्रकार सोचते हुए वह भारतीय उससे मिलने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने साहब का अभिवादन किया। मगर साहब उससे कुछ भी न बोले। जब साहब की लड़की ने उन्हें पानी दिया और साहब स्नान करके अपनी बैठक में आये, तब वह अपने मित्र से मिले।

भारतीय मित्र ने साहब से पूछा—आप भारत में तो बड़े पद पर थे। अब यहाँ इस प्रकार क्यों रहना पड़ता है ! साहब बोले—हम लोग भारतीयों सरीखे नहीं हैं। भारतीय तनिक आगे बढ़े कि वास्तविकता को और अपने असली धंधे को भूल जाते हैं। हम लोग नहीं भूलते। खेती करना हमारे बाप-दादों का धंधा है। मैं जब तक भारत में था, दूसरा काम करता था। लेकिन जब यहाँ आया हूं तो अपने पैत्रिक धंधे में लगा हूं।

इस प्रकार की विचारधारा हृदयबल से ही उत्पन्न होती है। भारतीय लोग हृदयबल को जल्दी भूल जाते हैं इस कारण जहाँ कोई बी० ए० एल-एल० बी० होता है कि दो—चार

आदमियों के लिए भी भारभूत हो जाता है। कारण यही है कि उसका हृदयबल दब जाता है और मस्तिष्क का बल उमड़ आता है।

५ : शिक्षा

एक राजा था। उसके एक लड़का था, जो गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करता था। इधर राजा को अपने शरीर पर कुछ ऐसे चिन्ह दिखाई दिये जो वृद्धावस्था के द्योतक थे। उन चिन्हों को देखकर राजा ने विचारा कि बुढ़ापे का नोटिस आ गया है, इसलिये मुझे कोई ऐसा काम करना चाहिये, जो भावी सन्तान के लिए आदर्श-रूप भी हो और जिसके करने से मेरे आत्मा का भी हित हो। इसलिये मुझे राजपाट राज-पुत्र को सौंप कर दीक्षा ले लेनी उचित है।

इस प्रकार निश्चय कर, राजा ने प्रधान को बुला कर अपने विचार प्रकट करते हुये राजकुमार के राज्याभिषेक की तैयारी करने का हुक्म दिया। सारे नगर में यह समाचार फैल गया कि राजा अपने राजपाट का भार पुत्र को सौंप कर आप दीक्षा ले रहा है। होते-होते यह खबर उस गुरुकुल में भी पहुंची, जिसमें कि कुमार पढ़ रहा था। कुमार को पढ़ाने वाले शिक्षक ने विचार किया कि राजकुमार कल राजा बनेगा, लेकिन अभी इसे वह शिक्षा तो देनी रह ही गई है, जिस शिक्षा से जनता का हित होने वाला है। आज तो मैं इसका गुरु हूं और यह मेरा विद्यार्थी है। आज मैं इसे जैसी और जिस तरह चाहूँ शिक्षा दे सकता हूँ, परन्तु कल

जब कि यह राजा हो जाएगा इसे कुछ न तो कह ही सकूँगा, न यह मानेगा ही । इसे जो शिक्षा देनी है, वह कई दिन में दी जाने की है और यह मेरे पास केवल आज भर है । कल तो चला ही जायगा । अब बहुत दिन में दी जाने वाली शिक्षा इसे आज ही कैसे दे दूं ?

शिक्षक इस चिन्ता में पड़ गया । सोचते-सोचते उसने वह उपाय सोच लिया, जिससे कुमार को वह आज ही में शेष शिक्षा दे सके । उसने कुमार को एकान्त में बुलाकर उसके हाथ-पैर बांध दिये और एक बेंत से खूब पीटा । राजकुमार एक तो सुकुमार था, दूसरे उसने मार के नाम पर कभी एक थप्पड़ भी नहीं खाया था, इसलिये उसे शिक्षक का उक्त व्यवहार बहुत दुःखदायी हुआ । उसके शरीर की चमड़ी निकल आई । वह अपने मन में, दुःख करने के साथ ही शिक्षक के विषय में बहुत से बुरे संकल्प कर रहा था । यद्यपि इस मार से राजकुमार को बहुत पीड़ा हुई, परन्तु शिक्षक ने उसे इतने में ही नहीं छोड़ा, अपितु एक अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया । निश्चित समय तक राजकुमार को एक कोठरी में बन्द रखकर शिक्षक ने उसे कोठरी से निकाला और अपने शिष्यों के साथ उसे उसके घर भेजकर राजा से कहलवा दिया कि तुम्हारा पुत्र सब शिक्षा प्राप्त कर चुका है, अतः शिक्षक ने इसे आपके पास लौटा दिया है ।

राजकुमार अपने पिता के पास पहुंचा । अपने शरीर को बताते हुए उसने राजा से शिक्षक के निर्दयतापूर्ण व्यवहार की शिकायत की । पुत्र के शरीर पर मार के चिन्ह देख और उसकी शिकायतें सुनकर राजा को शिक्षक के ऊपर बहुत ही क्रोध हुआ । उसने उसी क्रोधावेश में यह आज्ञा दी कि शिक्षक को पकड़ कर फांसी लगा दी जावे ।

राजा की आज्ञा पाकर राज-सेवक शिक्षक को पकड़ लाये ।

शिक्षक अपने मन में समझ गया कि यह सजा राजकुमार को शिक्षा देने की ही है। उसने राजकर्मचारियों से पूछा कि मैं क्यों पकड़ा जाता हूं? उन्होंने उत्तर दिया कि यह हम नहीं जानते, परन्तु राजा की आज्ञा तुम्हें फाँसी देने की है। अतः तुम फाँसी पर चढ़ने को तैयार हो जाओ।

फाँसी के समय नियमानुसार शिक्षक से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई। शिक्षक ने कहा कि मेरी इच्छा केवल यही है कि मैं राजा से मिलकर एक बात पूछ लूं। अधिकारियों ने शिक्षक की इस इच्छा की सूचना राजा को दी। राजा ने पहिले तो यह कह कर कि ऐसे आदमी का मुंह नहीं देखना चाहता, शिक्षक से मिलना अस्वीकार कर दिया, परन्तु अधिकारियों के समझाने-बुझाने पर उसने शिक्षक से मिलना और उसकी बात का उत्तर देना स्वीकार कर लिया।

शिक्षक को राजा के सामने लाया गया। राजा को शिक्षक का प्रसन्न चेहरा देखकर आश्चर्य हुआ। शिक्षक के चेहरे से यह ज्ञात होता था कि जैसे इसे मरने का दुःख नहीं, किन्तु सुख है। राजा ने शिक्षक से कहा कि तुम क्या कहना चाहते हो? कहो! शिक्षक ने कहा कि मैं आपके पास प्राण-भिक्षा के लिये नहीं आया हूं। मुझे, फांसी लगने का किंचित् भी भय नहीं हैं। मैं केवल आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आपने मुझे किस अपराध पर फांसी का हुक्म दिया है? सब को मेरा अपराध मालूम हो जाना अच्छा है, नहीं तो मुझ पर यह कलंक रह जावेगा, कि शिक्षक ने न मालूम कौनसा गुप्त अपराध किया था, जिससे उसे फांसी दे दी गई।

शिक्षक की इस बात ने तो राजा का आश्चर्य और भी बढ़ा दिया। वह विचारने लगा, कि यह भी कैसा विचित्र आदमी है, जो मरने से भय नहीं करता है? उसने शिक्षक की बात के

उत्तर में कहा कि क्या तुमको अपने अपराध का पता नहीं है ? तुमने कुमार को बड़ी निर्दयतापूर्वक पीटा और कोठरी में बन्द कर दिया, फिर अपराध पूछते हो !

राजा के उत्तर के प्रत्युत्तर में शिक्षक ने कहा कि मैंने तो कुमार को नहीं मारा ! शिक्षक की यह बात सुनकर राजा का आश्चर्य क्रोध में परिणत हो गया । वह, शिक्षक तथा वहां पर उपस्थित लोगों को कुमार का शरीर दिखाकर कहने लगा कि मैं शिक्षक की अब तक की बात से तो प्रसन्न हुआ था, परन्तु अब यह मरने के भय से झूठ बोलता है । देखो, इसके शरीर पर अब तक मार के चिह्न मौजूद हैं, फिर भी यह कहता है कि नहीं मारा ।

राजा ने कुमार के मुंह से घटना की समस्त बातें कहलवाई । सब लोग शिक्षक की निन्दा करते हुए कहने लगे कि वास्तव में इसने फांसी का ही काम किया है । शिक्षक ने कहा कि मैंने इसे मारा जरा भी नहीं है, जिसे आप मार कहते हैं वह तो मैंने शिक्षा दी है । यदि शिक्षा देने के पुरस्कार में ही आप मुझे फांसी दिलवाते हैं, तो यह आपकी इच्छा । मुझे आपसे इतनी बात करनी थी, अब आप मुझे फांसी लगवा दीजिये ।

शिक्षक की बात ने तो सभी को आश्चर्य में डाल दिया । राजा ने शिक्षक से कहा कि तुम्हारी इस बात का अर्थ समझ में नहीं आया, कि तुमने इसको इतना कष्ट दिया और फिर कहते हो कि मैंने मारा नहीं, किन्तु शिक्षा दी है ? बतलाओ कि तुम्हारे उस कथन का रहस्य क्या है ? शिक्षक कहने लगा, कि मुझे मालूम हुआ कि राजकुमार कल राजा होगा । मैंने विचारा कि कुमार अब तक सुख में ही रहा है, दुःख का इसे किंचित् भी अनुभव नहीं है । इससे यह राज्याधिकार में मस्त होकर बिना विचार किये ही प्रजा में से किसी को कैद करने की आज्ञा देगा । यह इस बात का

विचार नहीं करेगा कि मारने, बांधने और कैद करने से इसे कैसा दुःख होगा! इस प्रकार विचार कर मैंने निश्चय किया कि कुमार को इसका अनुभव करा दिया जावे, जिससे यह आज्ञा देते समय अपने अनुभव पर से दूसरे के कष्ट को जान सके और विचार कर आज्ञा दे। यद्यपि यह मैं पहिले ही जानता था कि कुमार को जो शिक्षा मैं दे रहा हूं, इसके बदले में सम्भव है कि मुझे फांसी की सजा भी मिले। लेकिन इसके लिए मैंने यही निश्चय किया कि मेरी फांसी से अनेकों आदमी कष्ट से बचेंगे, इसलिए मुझे फांसी का भय न करना चाहिये और कुमार को शिक्षा दे देनी चाहिये। यही विचार कर मैंने कुमार को शिक्षा दी है, कुमार को मारा नहीं।

शिक्षक की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। वह शिक्षक की प्रशंसा करने लगा कि तुमने वह काम किया है जिसके विषय में मुझे अब तक चिन्ता थी, तुमने मुझे चिन्तामुक्त कर दिया। यद्यपि तुम्हारे इस कार्य से प्रसन्न होकर मुझे उचित था कि मैं तुम्हें पुरस्कार देता, परन्तु मैं इस रहस्य को अब तक न जान सका था इसलिए मैंने तुम्हें फांसी देने की आज्ञा दे दी। अब मैं तुम्हें फांसी देने की अपनी आज्ञा को वापिस लेता हूँ और दस ग्राम की जागीर देकर तुम्हारे सिर पर यह भार देता हूँ कि जिस तरह इस बार तुमने अपने प्राणों की परवाह न करके कुमार को शिक्षा दी है, इसी प्रकार सदा शिक्षा देते रहना। राजा की बात के उत्तर में शिक्षक ने कहा कि आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु मैं जागीर नहीं ले सकता। यदि जागीर लूंगा तो फिर आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकूंगा। क्यों कि तब मैं शिक्षक न रहूँगा किन्तु गुलाम होऊंगा। मुझे अपनी जागीर छिन जाने का सदा भय बना रहेगा, जिससे मैं सच्ची बात न कह कर ठकुर-सुहाती बात कहूंगा।

५ : प्यासा

एक आदमी गंगा के किनारे खड़ा रो रहा था। वह इतने जोर से रो रहा था कि राहगीरों को भी उस पर दया आ जाती थी। किसी राहगीर ने उससे पूछा—भाई, रोते क्यों हो ? तुम्हें क्या कष्ट है ?

रोने वाला रोते-रोते बोला—मुझे जोर की प्यास लग रही है।

राहगीर—तो रोने से मतलब ? सामने गंगा बह रही है। निर्मल जल है। शीतल है, मधुर है। पी ले। प्यास बुझा ले।

रोने वाले ने कहा—हाय ! गंगा-जल पीऊँ कैसे ? गंगा की धारा इतनी चौड़ी है और मेरा मुँह जरा-सा है। यह धारा मुँह में समाएगी कैसे ?

राहगीर का करुणा-रस हास्य-रस में परिवर्तित हो गया। उसने हँसते हुये कहा—मूर्खराज, तुझे अपनी प्यास मिटाने में मतलब है या गंगा की धारा मुँह में भरने से ? अगर तू इसी विचार में डूबा रहेगा तो प्यास का मारा प्राण खो बैठेगा। न गंगा की धारा इतनी छोटी होगी कि तेरे मुँह में समा जाय, न तेरा मुँह इतना बड़ा होगा कि वह उसे अपने भीतर घुसेड़ सके।

तात्पर्य यह है कि आजकल अनेक लोग तो हिंसा की व्यापकता को देखकर उससे जरा भी निवृत्त होने की चेष्टा नहीं करते और कुछ लोग सूक्ष्म हिंसा को अपनी जवाबदेही समझते हैं। ऐसे लोग न स्थूल हिंसा से बच पाते हैं, न सूक्ष्म हिंसा से ही। वे न इधर के रहते हैं, न उधर के रहते हैं।

६ : कुम्भकलश

एक मनुष्य ने, एक सिद्ध की सेवा करके उसे प्रसन्न किया। सिद्ध ने प्रसन्न होकर उस मनुष्य से कहा, कि मेरे पास कुम्भकलश भी है और कुम्भकलश बनाने की विधि भी मैं जानता हूं। कुम्भ-कलश में यह गुण है किसी भी वस्तु की इच्छा करने पर वह वस्तु उस कुम्भकलश से उसी समय प्राप्त हो जावेगी और कुम्भकलश बनाने की विधि जानने पर जब चाहो तभी कुम्भकलश बन सकता है। यदि तुम चाहो तो मेरे से कुम्भकलश ले सकते हो और यदि चाहो, तो कुम्भकलश निर्माण की विधि सीख सकते हो।

सिद्ध की बात सुनकर सिद्ध के सेवक ने विचार किया, कि प्रत्यक्ष लाभ को छोड़कर अप्रत्यक्ष लाभ के पीछे दौड़ना मूर्खता है। कुम्भकलश से तो मैं अभी ही लाभ उठा सकता हूँ परन्तु कुम्भकलश बनाने की विधि सीखने पर अभी लाभ नहीं उठा सकता। इसके सिवाय क्या ठीक है, कि उस विधि से कुम्भकलश बन ही जावेंगे। इसलिये यही उत्तम है, कि मैं सिद्ध के पास वाला कुम्भकलश ले लूं।

इस प्रकार विचार कर उसने सिद्ध से कुम्भकलश ले लिया और प्रसन्नमन घर को आया। घर आकर उसने अपने सब कुटु-म्बियों से कह दिया, कि अब अपने को न तो कोई काम करने की ही आवश्यकता है, न चिन्ता करने की ही। इस कुम्भकलश से जो वस्तु चाहेंगे, यह वही वस्तु देगा। इसलिए अब कोई काम मत करो और जो कुछ चाहिए, वह इस कुम्भकलश से माँगकर आनन्द उड़ाओ।

कुटुम्ब के सभी लोग, कुम्भकलश के आश्रित हो गये।

उन्होंने, खेती बाड़ी, पीसना-कूटना, वाणिज्य-व्यापार आदि सब कुछ छोड़ दिया। सभी लोग अकर्मण्य बन कर उस कुम्भकलश से मांग-मांग कर खाने लगे और इस प्रकार के जीवन को आनंद का जीवन मानने लगे। कुम्भकलश से वे जो कुछ चाहते, कुम्भकलश उन्हें वही वस्तु देता।

एक दिन सब ने उस कुम्भकलश से अच्छी से अच्छी मदिरा मांगी। कुम्भकलश से मिली हुई मदिरा को सब लोगों ने खूब पिया और उसके नशे में मस्त बन गये। फिर उस कुम्भ-कलश को एक आदमी के सिर पर रखकर सब लोग नाचने लगे। शराब में मस्त होने के कारण उस समय उन लोगों को त्रैलोक्य की भी पर्वाह नहीं थी, तो कुम्भकलश की परवाह वे क्यों करने लगे थे! कुम्भकलश को सिर पर रख कर उपेक्षा-पूर्वक नाचने और आपस में धौल-धप्पे करने से कुम्भकलश सिर पर से गिरकर फूट गया। कुम्भकलश के फूटते ही उन लोगों का नशा भी उतर गया। जिस कुम्भकलश की कृपा से अब तक कार्य चल रहा था वह तो नष्ट हो गया और जिन उपायों से कुम्भकलश मिलने के पहले जीवन-निर्वाह होता था, उन्हें वे लोग भूल गये थे तथा उनके साधन भी नष्ट हो गये थे, इसलिये वे सब लोग एक साथ ही कष्ट में पड़ गये।

मतलब यह, कि जो कुम्भकलश फूट गया है, उसके बनाने की विधि यदि उन लोगों में से किसी को मालूम होती, तो उन लोगों को कष्ट में न पड़ना पड़ता। इसलिए पदार्थ देकर सुख देने की अपेक्षा, सुख-प्राप्ति का उपाय बताना बहुत बड़ा उपकार है। साधु लोग यही उपकार करते हैं। वे पदार्थ द्वारा सुख देकर अकर्मण्य नहीं बनाते, किन्तु धर्म सुनाकर सुख-प्राप्ति का उपाय ही बता देते हैं, जिससे फिर दुःख हो ही नहीं। वे लोग आध्यात्मिक विद्या सिखाते हैं। सब ऋद्धि इस विद्या को जानने वाले की दासी

है। यह विद्या जानने वाले को किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहती।

७ : सच्चा सुख

सुख के लिए कहीं भी बाहर की तरफ नजर फैलाने की जरूरत नहीं है। अपनी ही ओर देखने से, अपने में ही लीन होने से सुख की प्राप्ति होगी। बाह्य वस्तुएं सुख नहीं दे सकतीं। उनसे जो सुख मिलता मालूम होता है, वह सुख नहीं, सुखाभास है। शहद लपेटी हुई तलवार की धारा चाटने से क्षणभर सुख सा प्रतीत होता है, मगर उसका परिणाम कितना दुःखप्रद है? यही बात संसार की समस्त सुख-सामग्री की है। अन्ततः राजपाट, महल-मकान, मोटर, गाड़ी, भोजन, वस्त्र, कुटुम्ब-परिवार आदि सभी पदार्थ धोखा देने वाले हैं। अथवा इनमें जो मनुष्य का अनुराग है वह चिर दुःख का कारण है। अतएव इन सब से निरपेक्ष होकर एकमात्र आत्मपरायण बनना ही सुख का सच्चा मार्ग है।

जहाँ बाह्य पदार्थों का संसर्ग होगा, वहाँ व्याकुलता होना अनिवार्य है, और जहाँ व्याकुलता है वहाँ सुख नहीं है। निरा-कुलता ही सुख है और निराकुलता तभी आती है जब संयोग-मात्र का त्याग कर दिया जाता है।

एक पुरुष सुख रूपी पुरुष को पकड़ने दौड़ा। सुख रूपी पुरुष भागा। पकड़ने वाला उसके पीछे-पीछे दौड़ा और सुख आगे-आगे भागता ही गया। आखिर सुख हाथ न आया। पकड़ने के लिए दौड़ने वाला पुरुष थक गया। वह अशक्त होकर एक झरने के समीप, वृक्ष की छाया में बैठ कर सुख न पा सकने की चिन्ता

में मग्न हो गया। सुख को न पा सकने से उसे इतना दुःख हुआ कि उसे अपने कपड़े और यहाँ तक की शरीर भी भारी मालूम होने लगा। उसके पास खाने को था, मगर चिन्ता के कारण उसे खाना न सूझा।

इतने ही में उधर से एक मनुष्य निकला। उसने इस चिताग्रस्त पुरुष से चिल्लाकर कहा—'मुझे सुख दे!'

यह चिन्ताग्रस्त पुरुष आश्चर्य में डूब गया। सोचा—यह कौन है जो मुझ से सुख माँग रहा है? अगर मेरे पास सुख होता तो इतना भटकने की जरूरत ही क्या थी? उसने उसकी ओर मुड़ कर देखा तो एक दरिद्र-सा पुरुष उसे नजर आया। उस दरिद्र ने फिर उससे कहा—'मुझे सुख दे।'

इसने उत्तर दिया—मेरे पास सुख कहाँ है? मैं कहाँ से तुझे सुख दूं?

दरिद्र ने कहा—तेरे पास सुख न होता तो मैं माँगता ही क्यों?

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला प्रेम-दया रस का रे।
नाभिकमल बिच हैं कस्तूरी, कैसे भर्म मिटे मृग का रे ॥पीले॥

दरिद्र पुरुष ने फिर कहा—मृग की नाभि में ही कस्तूरी होती है। फिर भी वह कस्तूरी की खोज में इधर-उधर भागता फिरता है और यह नहीं जानता कि कस्तूरी मेरी ही नाभि में है, इसी प्रकार तू सुख के लिए दौड़—दौड़ कर थक गया परन्तु तुझे यह पता नहीं कि सुख तो तेरे ही पास है। और वह सुख भी थोड़ा नहीं, अनन्त है, अक्षय है, असीम है, अद्भुत है।

दरिद्र पुरुष की यह बात सुनकर वह आश्चर्य में आ गया। वह सोचने लगा—क्या यह मेरी हँसी करता है? फिर उससे पूछा—मेरे पास सुख कहाँ है?

दरिद्र ने कहा—मैं बता सकता हूं। तुम्हारे पास यह जो

खाना पड़ा है, यह मुझे दे दो तो मैं बतलाऊं।

सुख के अभिलाषी पुरुष ने अपना खाना उसे दे दिया। दरिद्र खाना खाकर हंसते हुए चेहरे से उसके सामने आ खड़ा हुआ फिर कहने लगा—अब देख! मैं कितना सुखी हो गया हूँ। यह सब तेरा ही प्रताप है। तूने मुझे सुख दिया, इसी कारण मैं सुखी हो गया हूँ।

दरिद्र पुरुष की बात सुनकर वह कहने लगा—अब मैं समझ गया। वास्तव में दूसरे से सुख मांगने में सुख नहीं है, किन्तु दूसरे को सुख पहुंचाने में सुख है। सुख भिखारी को नहीं, दाता को होता है।

८ : साँप का ज़हर

सर्प के ज़हर ने आपके शरीर में प्रवेश किया। दूसरा ज़हर आपका आपके शरीर में विद्यमान है। दोनों के मिलने से ज़हर की शक्ति बढ़ जाती है और वह आपको मारने वाला हो जाता है। साँप के काटने पर आपको तनिक भी क्रोध न आवेगा तो जहर नहीं चढ़ेगा।

बिहार प्रान्त में एक आदमी घास का छप्पर बांध रहा था। एक सर्प छप्पर में बँध गया और उसने उस आदमी को काट खाया। आदमी को खबर न हुई। उसने समझा—कोई काँटा चुभ गया है। अगले साल जब वह आदमी छप्पर खोलकर नये सिर से बाँधने लगा तो उसे मरा सर्प दिखाई दिया। उसे गत वर्ष की घटना याद आ गई। सोचा—अरे! जिसे मैंने काँटा समझा था,

में मग्न हो गया। सुख को न पा सकने से उसे इतना दु:ख हुआ कि उसे अपने कपड़े और यहाँ तक की शरीर भी भारी मालूम होने लगा। उसके पास खाने को था, मगर चिन्ता के कारण उसे खाना न सूझा।

इतने ही में उधर से एक मनुष्य निकला। उसने इस चिंताग्रस्त पुरुष से चिल्लाकर कहा—'मुझे सुख दे!'

यह चिन्ताग्रस्त पुरुष आश्चर्य में डूब गया। सोचा—यह कौन है जो मुझ से सुख माँग रहा है? अगर मेरे पास सुख होता तो इतना भटकने की जरूरत ही क्या थी? उसने उसकी ओर मुड़ कर देखा तो एक दरिद्र-सा पुरुष उसे नजर आया। उस दरिद्र ने फिर उससे कहा—'मुझे सुख दे।'

इसने उत्तर दिया—मेरे पास सुख कहाँ है? मैं कहाँ से तुझे सुख दूं?

दरिद्र ने कहा—तेरे पास सुख न होता तो मैं माँगता ही क्यों?

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला प्रेम-दया रस का रे।
नाभिकमल बिच हैं कस्तूरी, कैसे भर्म मिटे मृग का रे ॥पीले॥

दरिद्र पुरुष ने फिर कहा—मृग की नाभि में ही कस्तूरी होती है। फिर भी वह कस्तूरी की खोज में इधर-उधर भागता फिरता है और यह नहीं जानता कि कस्तूरी मेरी ही नाभि में है, इसी प्रकार तू सुख के लिए दौड़-दौड़ कर थक गया परन्तु तुझे यह पता नहीं कि सुख तो तेरे ही पास है। और वह सुख भी थोड़ा नहीं, अनन्त है, अक्षय है, असीम है, अद्‌भुत है।

दरिद्र पुरुष की यह बात सुनकर वह आश्चर्य में आ गया। वह सोचने लगा—क्या यह मेरी हँसी करता है? फिर उससे पूछा—मेरे पास सुख कहाँ है?

दरिद्र ने कहा—मैं बता सकता हूं। तुम्हारे पास यह जो

खाना पड़ा है, यह मुझे दे दो तो मैं बतलाऊं।

सुख के अभिलाषी पुरुष ने अपना खाना उसे दे दिया। दरिद्र खाना खाकर हंसते हुए चेहरे से उसके सामने आ खड़ा हुआ फिर कहने लगा—अब देख! मैं कितना सुखी हो गया हूँ। यह सब तेरा ही प्रताप है। तूने मुझे सुख दिया, इसी कारण मैं सुखी हो गया हूँ।

दरिद्र पुरुष की बात सुनकर वह कहने लगा—अब मैं समझ गया। वास्तव में दूसरे से सुख मांगने में सुख नहीं है, किन्तु दूसरे को सुख पहुंचाने में सुख है। सुख भिखारी को नहीं, दाता को होता है।

८ : साँप का ज़हर

सर्प के ज़हर ने आपके शरीर में प्रवेश किया। दूसरा ज़हर आपका आपके शरीर में विद्यमान है। दोनों के मिलने से ज़हर की शक्ति बढ़ जाती है और वह आपको मारने वाला हो जाता है। साँप के काटने पर आपको तनिक भी क्रोध न आवेगा तो जहर नहीं चढ़ेगा।

बिहार प्रान्त में एक आदमी घास का छप्पर बांध रहा था। एक सर्प छप्पर में बंध गया और उसने उस आदमी को काट खाया। आदमी को खबर न हुई। उसने समझा—कोई कांटा चुभ गया है। अगले साल जब वह आदमी छप्पर खोलकर नये सिर से बाँधने लगा तो उसे मरा सर्प दिखाई दिया। उसे गत वर्ष की घटना याद आ गई। सोचा—अरे! जिसे मैंने कांटा समझा था,

वह काँटा नहीं, साँप था ! क्रोध आते ही जहर ने असर किया और वह आदमी मर गया। सोचिये, इतने दिनों तक जहर कहाँ छिपा बैठा था ?

९ : धर्म का फल

अगर तुम्हारी आशा पूरी नहीं होती तो यह धर्म का दोष नहीं है, तुम्हारी करनी में ही कहीं कमी है। अतएव कांक्षा पूरी न होने के कारण धर्म को मत छोड़ो। कांक्षा ही तुम्हारी मुराद पूरी नहीं होने देती। कांक्षा ही तुम्हें धर्म-श्रद्धा से डिगा देती है। अतएव जहाँ तक हो सके, कांक्षा को ही छोड़ने का प्रयत्न करो। निष्कांक्ष हो जाने पर तुम्हारी समस्त कांक्षाएं पूरी हो जाएंगी। एक वृद्धा स्त्री की बात कहता हूं:—

किसी वृद्धा को धर्म से बड़ा प्रेम था। वह सदा साधुसन्तों के दर्शन करने जाती और उनका धर्मोपदेश सुनती। इतना ही नहीं वह आस-पास की स्त्रियों को भी साथ ले जाती। स्त्रियों में धर्म-भावना फैलाती। उन्हें सीख देती।

एक दिन उसे विचार आया—मैं इतना धर्म-ध्यान करती हूं। धर्म के लिए उद्योग करती हूँ। अतएव मेरे पोता अवश्य होगा। इसके बाद पोता होने की आशा में दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीत गये परन्तु पोता नहीं हुआ। पोता न होने से उसकी धर्म-भावना मन्द पड़ने लगी। वह विचार करने लगी— 'यह कौनसा धर्म है, जो मेरी साधारण-सी अभिलाषा भी पूरी नहीं करता। जो धर्म पोता नहीं दे सकता, वह मोक्ष क्या देगा ? इस

प्रकार वृद्धा की श्रद्धा घटने लगी। ठीक ही कहा—'श्रद्धा परम-दुर्लभा।' सब कुछ सरल हो सकता है, मगर श्रद्धा कायम रहना बहुत कठिन है। उस वृद्धा की श्रद्धा जोखिम में पड़ गई। धीरे-धीरे उसे धर्म के प्रति इतनी अरुचि होगई कि स्वयं साधु सन्तों के के समीप न फटकती और जो जाती उन्हें भी हटकती। कहती—'क्या रक्खा है दर्शन करने में! क्यों घर के काम का नुकसान करती हो? वहाँ कुछ स्वाद होता तो मैं ही क्यों छोड़ बैठती?

वृद्धा जहां की थी, वहां अकसर साधु पहुंचा करते थे। एक पुराने साधु वहां गये। बहुत-सी बहिनें दर्शन करने आईं। मगर साधु ने वृद्धा को न देखा। वह किसी समय महिला समाज में अगुआ थी। धर्म में उसे बड़ा उत्साह था। अतएव साधुजी ने पूछा—बहिनों! यहां एक धर्मशीला वृद्धा बाई थी। वह आज दिखाई नहीं दी। क्या कहीं गई है?

एक स्त्री ने मुंह मटका कर उत्तर दिया—'महाराज, वह तो मिथ्यात्विनी हो गई। खुद नहीं आती और दूसरों को भी आने से रोकती है।

साधु—अच्छा, यह बात है! उससे जरा कह देना कि अमुक मुनि आये हैं। व्याख्यान सुनना। अगर इच्छा न हो तो भी जैसे मिलने वालों से मिल जाते हैं, उसी प्रकार सपक्ष कर व्याख्यान सुनना।

यह समाचार वृद्धा के पास पहुंच गये। वह कहने लगी—मैंने बहुत दर्शन किये। कई व्याख्यान सुने। कोई मुराद पूरी नहीं हुई। अब वहाँ जाकर क्या करूंगी?

साधु प्राणीमात्र का भला चाहते हैं। उन्हें किसी पर क्रोध नहीं होता। उन्होंने वृद्धा को सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से एक बार फिर कहला भेजा।

वृद्धा आई। अनमनी होकर, हाथ जोड़, नीचा सिर किये

गुमसुम बैठ गई ।

साधुजी ने कहा—बहिन, आजकल तुम धर्मध्यान नहीं करतीं। पहले तो बहुत धर्मक्रिया किया करती थीं ! क्या कारण है ?

लम्बी सांस लेकर वृद्धा बोली—क्या कहूं महाराज !

साधु—नहीं, नहीं बहिन, कुछ कहो । बात क्या है ? क्या श्रद्धा हट गई ?

वृद्धा—पूछकर क्या करोगे महाराज !

साधु—बन सकेगा तो उपाय करेंगे।

वृद्धा उत्सुक होकर—आप सुनना चाहते हैं ?

साधु—हां, बहिन !

वृद्धा—तो सुनिये । मेरा लड़का है । आप जानते ही हैं कि मैं पहले कैसा धर्म करती थी और कैसी सेवा बजाती थी । मैं समझती थी कि धर्म के प्रताप से मेरे पोता होगा। आशा ही आशा में कई वर्ष व्यतीत हो गए, किन्तु पोता नहीं हुआ । धर्म यह जो आशा पूरी करे । बहुत धर्म करने पर भी आशा निराशा में पलट गई । पोते का मुंह देखने को न मिला । इस कारण धर्मआस्था घट गई ।

साधुजी ने समवेदना दिखलाते हुई कहा—बहिन, सच कहती हो । जो धर्म आशा पूरी न करे वह कैसा धर्म !

अपने पक्ष का समर्थन होते देखकर वृद्धा कहने लगी—महाराज, आप सच फरमाते हैं । झूठ कहती होऊं तो आप बताइये ।

साधु—नहीं बहिन, तुम झूठ नहीं कहती । अच्छा एक बात तुमसे पूछता हूं । धर्म ने पोता नहीं दिया, यह मैंने माना मगर बहिन, संसार सम्बन्धी ऐसी कुछ बाधाएं भी होती हैं कि धर्म भी विचारा क्या करे ? अगर अकेला धर्म ही पोता दे देता तो तुम घर में बहू आने से पहले ही मांगती । पर ऐसा नहीं, संसार संबंधी

भी कुछ कारण मिलते हैं तब पोता होता है।

वृद्धा सिर हिलाकर—सच बात है।

साधु फिर कहने लगे—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इसमें कोई सांसारिक बाधा ही कारण होगी।

वृद्धा—नहीं महाराज, सांसारिक बाधा कुछ भी नहीं है।

साधु—बहिन हो सकता है कि तुम्हें मालूम ही न हो। मान लो, पति-पत्नी में मेल-मिलाप ही न हो तो ?

वृद्धा—नहीं महाराज, दोनों में इतना प्रेम है, जितना सीता और राम में था।

साधु—सम्भव है, बहू रोगिणी हो ! रोगिणी के बच्चा नहीं भी होता।

वृद्धा—अजी, उसके तो नख में भी रोग नहीं है, वह खूब भली-चंगी है।

साधु—तुम्हारे लड़के में कोई त्रुटि नहीं हो सकती ?

वृद्धा—यह भी नहीं है। ऐसा होता तो सँतोष कर लेती कि जब लड़के में कमी है तो पोता कैसे हो ? पर वह तो बलिष्ठ और सुन्दर है। देखती हूँ, कई लड़के खाट पर पड़े रहते हैं, पर मेरा ऐसा नहीं है। वह पहाड़ सा बलवान् है।

साधु— इसके अतिरिक्त एक बात और हो सकती है।

वृद्धा—वह क्या ?

साधु—सब कुछ ठीक हो, पर यदि तुम्हारा लड़का परदेश चला जाता हो और बहू तुम्हारे पास ही रहती हो तो पोता कैसे हो ? एक बात और भी है। सम्भव, पति-पत्नी साथ ही रहते हो किन्तु मनुष्य को धन की चिन्ता बहुत बुरी होती है। इस चिन्ता से तुम्हारा लड़का घुलता हो तो भी पोता न होना सम्भव है।

वृद्धा व्यंग की हंसी हँसकर बोली—मैं ऐसी भोली नहीं हूँ। काले केश पक गये हैं। ऐसा होता तो समझ जाती, मगर यह सब

कुछ नहीं है ।

साधु—एक बात पूछना फिर भूल गया ।

वृद्धा—वह भी पूछ लीजिए ।

साधु—जो माता-पिता की सेवा नहीं करते उनके भी प्रायः पोता नहीं होता ।

वृद्धा–महाराज, मेरा लड़का और मेरी बहू–मिलकर मेरी इतनी सेवा करते हैं कि शायद ही किसी को नसीब होती हो । सब बातें आपने पूछ ली । अब बताइये, किसका दोष है ?

साधु—यह तो धर्म का ही दोष हैं ।

वृद्धा जरा तेज स्वर में–मैं पहले कहती थी कि यह धर्म का ही दोष है । इसी कारण मैंने धर्म छोड़ दिया । स्त्रियां मुझे मिथ्यात्विनी कहती हैं । कहती रहें मेरा क्या बिगड़ता है ? सच्ची बात तो कहनी पड़ेगी ।

साधु—मैं समझ गया बहिन, यह दोष धर्म का ही है । धर्म से जाकर अर्ज करनी पड़ेगी कि बहुत-से लोग बेचारे बूढे होकर मर जाते हैं, पर बेटे का मुंह नही देख पाते । तुमने उस वृद्धा को लड़का देकर और दुखी कर दिया । नहीं तो वह धर्मध्यान करती । अब पोते के बिना उसे चैन नहीं पड़ती । उसे रात-दिन चिन्ता रहती है ।

वृद्धा चौंक कर बोली—एं महाराज ! यह क्या कहते हैं ?

साधु–सच ही तो कह रहा हूँ ।

वृद्धा—नहीं महाराज ! यह तो धर्म का ही प्रताप है । अच्छा पुण्य किया तो बेटा मिला है ।

साधु–कई लोग विवाह के लिए भटकते-फिरते हैं । तुम्हारे लड़के का विवाह जल्दी हो गया, यह बुरा हुआ ?

वृद्धा–नहीं अन्नदाता, यह तो धर्म का ही प्रताप है ।

साधु–लोग पैसे–पैसे को मोहताज रहते हैं । तुम्हें पैसा देकर

धर्म ने बुरा किया ।

वृद्धा--हुजूर, यह क्या फरमाते हैं ! यह भी धर्मका ही प्रताप है ।

साधु—यह क्या ? सभी बातों में धर्म ही धर्म का प्रताप बतलाती हो !

वृद्धा—सच बात तो कहनी ही चाहिये न ?

साधु—अच्छा तो पति-पत्नी की जोड़ी स्वस्थ मिली; यह बुरा हुआ। नहीं तो सन्तोष मानकर धर्म तो करतीं !

वृद्धा–यह भी धर्म का प्रताप है ।

साधु—पति-पत्नि अविनीत–माता–पिता से झगड़ने वाले मिलते तो ठीक था ।

वृद्धा—जिसने खोटे कर्म किये हों, उसी को ऐसे लड़का-बहू मिलते हैं । आपकी कृपा से कुछ पुण्य-धर्म किया, उसी का यह प्रताप है ।

साधु—तुम सभी बातें धर्म के प्रताप से कहती हो ! ऐसा है तो जो धर्म सभी कुछ दे, सिर्फ एक पोता न दे, उस पर इतनी नाराजी क्यों ?

वृद्धा हाथ जोड़कर बोली—क्षमा कीजिये महाराज ! मुझसे भूल हुई । मैंने धर्म का उपकार न माना । मैं बड़ी कृतघ्नी और पापिनी हूं । अब मैं समझ गई । मेरा मोह दूर हो गया । आपने मुझ पर असीम दया की, ठीक रास्ता दिखला दिया । अब मैं फिर यथाशक्ति धर्म की सेवा करूंगी ।

आपने यह दृष्टान्त सुना । ऐसे विचार वाले भाई— बहिन आप में कम नहीं होंगे जो अपनी आशा पूरी होते न देख कह उठते हैं—वाह ? धर्म ने इतना भी न किया !

इस प्रकार की तुच्छ भावना से धर्म की दुर्दशा नहीं, आपकी ही दुर्दशा होती है । तुम सच्चे धर्मात्मा बनो, तुम्हारी मुराद तो क्या, त्रिलोकी तुम्हारे चरणों में लोटने लगेगी ।

१० : बहिरात्मा

एक देहाती मनुष्य बहुत बुद्धिमान् और होशियार आदमी था। उसने सोचा—देहात में जैसी चाहिए वैसी इज्जत नहीं होती और न कोई काम ही है। ऐसा सोचकर वह शहर में गया। शहर में पहुंचकर वह किसी सेठ की दुकान पर गया। सेठ साहब ने उससे कुछ भी बात नहीं की, क्योंकि वह देहाती था और सादी पोशाक पहने था। सेठ अपनी धुन में मग्न था। दुकान पर दस-पाँच मुनीम काम कर रहे थे। कोई हुंडी लिख रहा था, कोई कुछ और कर रहा था। उस देहाती से किसी ने कुछ न पूछा।

आगन्तुक पुरुष देहाती होने पर भी बुद्धिमान् था। वह समझ गया कि मेरी सादी पोशाक देखकर मुझसे कोई बात नहीं करता। वह वहाँ से उठा और धोबी के पास गया। धोबी से कहा—भाई, तुम्हारे पास किसी अमीर की पोशाक धुलने आई हो तो कुछ समय के लिए मुझे दे दो। मैं वापिस लौटा दूंगा। तुम उसे दोबारा धोकर दे देना। अपना मेहनताना चाहे पहले ही ले लो।

धोबी ने उसकी बात चीत से समझा—कोई भला आदमी है। उसने उसे कपड़े दे दिये। देहाती ने कपड़े पहने और कहीं से बढ़िया जूते भी खोज लिये। हाथ में एक बेंत ले लिया। अब वह अकड़ के साथ चलता हुआ उसी सेठ की दुकान पर जा पहुंचा। उसे आता देख सेठ खड़ा हो गया और बोला—पधारिये साहब, कहाँ से तशरीफ लाये हैं? कैसे पधारना हुआ?

देहाती बोला—आप ही से मिलने आया हूँ।

सेठ—ठीक, विराजिये।

देहाती शाम के साथ बैठ गया । सेठजी ने पूछा-आपको भोजन आदि करना होगा न ?

देहाती—हाँ, कर लेंगे । जल्दी क्या है ।

सेठजी की आज्ञा होते ही कोई नौकर रसोई की तैयारी में लगा, कोई पानी लाने लगा । देहाती बुद्धिमान् तो था ही, इधर-उधर की दो-चार बातें जनाईं । सेठ उसकी बुद्धिमत्ता पर रीझ गया । खूब खातिर की । भोजन तैयार हो गया तो भोजन के लिए कहा । देहाती भोजन करने गया । आसन पर बैठकर दो लड्डू इस जेब में डालने लगा और दो बर्फियाँ उस जेब में । तीसरी मिठाई साफे में बांधने लगा और कुछ सामान रूमाल में रखने लगा । यह देखकर सेठ भौंचक्का-सा रह गया । वह बोला— आप यह क्या कर रहे हैं ?

देहाती ने धीमे स्वर में कहा—जिनके प्रसाद से मुझे यह मिठाई मिली है, उन्हें तो पहले जिमा दूँ ।

सेठ—सो कैसे ?

पहले सादी पोशाक पहन कर मैं आपकी दुकान पर आया था । तब आपने मुझसे बात भी न की । जब यह कपड़े पहनकर आया तब यह खातिर हुई । वास्तव में यह खातिर इन कपड़ों की है ।

सेठ बड़ा लज्जित हुआ और उसने क्षमा मांगी ।

आप में से बहुत से भाई इसी प्रकार का आदर-सत्कार करते हैं । परन्तु यह सच्चे श्रावक का लक्षण नहीं है । मित्रो ! सभ्यता सीखो । सभ्यता के बिना धर्म का पालन नहीं हो सकता ।

११ : साकार से निराकार की ओर

कहा जाता है कि हमने कभी परमात्मा के दर्शन नहीं किये। बिना दर्शन हुए उससे प्रीति किस प्रकार की जाय? कभी परमात्मा की बोली भी नहीं सुनी तो उसका स्मरण कैसे किया जाय? यह प्रश्न ठीक है। इसका समाधान करने के लिए एक लौकिक दृष्टांत उपयोगी होगा। आप अशुध्द वस्तु को अच्छी तरह जानते हैं। उसके सहारे शुद्ध वस्तु को भी समझ जाएंगे।

एक मनुष्य किसी सुन्दरी महिला के रूप पर इतना मोहित हो गया कि उसके बिना उसे चैन न पड़ता। उसे चलते-फिरते सदैव उसी बाई का ध्यान रहता। कब उससे मेरा मिलन हो और कब मैं अपने हृदय की प्यास बुझाऊँ, बस ऐसा ही विचार उसके मन में सदा बना रहता था। उस आदमी की बात किसी दूसरी बाई ने जानी। वह विचारशील और सदाचारिणी थी। उसने सोचा—इस मनुष्य का पतन होने वाला है। यह स्वयं तो भ्रष्ट होगा ही, एक मेरी बहिन को भी भ्रष्ट करेगा अतएव इन्हें भ्रष्ट होने से बचाने का कोई उपाय करना चाहिए।

अगर आपको ऐसे भोगाभिलाषी पुरुष का पता चल जाय तो आप क्या करेंगे? आप मारेंगे, पीटेंगे या दुत्कारेंगे। इसके सिवाय और कुछ नहीं करेंगे। परन्तु सुधार का यह मार्ग ठीक नहीं है। यह तो उसे और गड्हे में डालने का उपाय है। किसी को दुत्कार कर, फटकार कर या किसी के प्रति घृणा करके उसे पाप से नहीं बचाया जा सकता। अगर पापी से प्रेम करो और शान्तिपूर्वक समझाओ तो वह बहुत आसानी से समझ जायगा।

उस दूसरी बाई ने यही रास्ता अख्तियार किया। वह उस

कामी पुरुष के पास जाकर बोली—भाई, तू इतनी चिन्ता क्यों करता है ? तेरे मन की बात मैं जानती हूँ । अगर तू मेरा कहना माने तो मैं तुझे उस स्त्री से मिला दूंगी ।

उस पुरुष ने घबराहट से कहा—एँ, तुम मेरे मन की बात जानती हो ? और उसे मिला दोगी ? किसने तुमसे यह बात कही है ?

स्त्री—मैं तुम्हारे हाव-भाव से समझ गई हूँ । फिकर मत करो । मैं उससे मिला दूंगी ।

पुरुष को कुछ तसल्ली हुई । उसने सोचा—चलो, अच्छा हुआ । अनायास और मुफ्त ही दूती मिल गई ।

स्त्री ने कहा—मैं तुम्हारा काम तो कर दूंगी, पर तुम्हें मेरा कहना मानना होगा । कहो, मानोगे ?

पुरुष—वाह, मैं तुम्हारा कहना नहीं मानूंगा ? अगर तुम उससे मिला दोगी तो मैं तुम्हारे लिए तन-मन निछावर कर दूंगा ।

'तो बस ठीक है' इतना कहकर वह बाई चली गई । वह दूसरे दिन फिर आई । उसने पुरुष से कहा—भाई, चलो ।

पुरुष की प्रसन्नता का पार न रहा । उसने समझा, काम बन रहा है तो ढील क्यों की जाय । वह जल्दी—जल्दी सजकर साथ चलने के लिए तैयार हो गया ।

वह बाई उसे एक बड़े सफाखाने में ले गई । वहाँ कई रोगियों की चीरफाड़ की जारही थी । कई सड़ रहे थे । कइयों के शरीर से लोहू और मवाद झर रहा था । चारों ओर दुर्गन्ध फैल रही थी ।

यह सब वीभत्स दृश्य देखकर उस पुरुष ने कहा—ऐसे गन्दे स्थान पर क्यों ले आई हो ? मारे दुर्गन्ध के सिर फटा जाता है । चक्कर आते हैं । चलो जल्दी यहां से ।

स्त्री—'जरा ठहरो, बस चलती ही हूं ।' इतना कहकर वह

रोगियों से पूछने लगी—भाइयो, तुम्हें यह रोग कैसे हो गये ?

रोगियों में से एक ने कहा—बहिन, क्या बताएं, यह सब हमारे ही खोटे कर्मों के फल हैं। विषय-सेवन की मर्यादा न पालने से किसी को सुजाक, किसी को गर्मी, किसी को कुछ और किसी को कुछ रोग हो गया है। अगर हम मर्यादा में रहे होते, पराई स्त्रियों को माता-बहिन समझते तो हमारी यह दुर्दशा न होती। मगर क्या किया जाय। अब तो अपने हाथ की बात रही नहीं।

स्त्री ने अपने साथी पुरुष को लक्ष्य करके कहा—सुना आपने, यह रोगी क्या कह रहे हैं ? ध्यान से सुन लीजिये।

वह बोला—हां सुना, सब सुना। तुम बाहर निकलो। मेरा सिर दुर्गन्ध के मारे फटा जा रहा है।

दोनों बाहर निकल पड़े और अपने-अपने घर चले गये। स्त्री ने सोचा—मेरी दवाई ने पूरा असर नहीं किया। खैर,कल फिर देखा जायगा।

दूसरे दिन फिर वह उसके घर पहुंची। चलने के लिये कहा। तब वह पुरुष कहने लगा—तुम उससे कब मिलाओगी ? चकमा तो नहीं दे रही हो ?

उत्तर मिला—भैया ! उसी से मिलाने के लिए तो उद्योग कर रही हूं।

पुरुष—तो ठीक है। चलो।

आज वह स्त्री उसे जेलखाने में ले गई। कोई आजन्म कैदी था, कोई आठ वर्ष की और कोई दस वर्ष की सजा पाया हुआ था।

स्त्री ने एक कैदी से पूछा—कहो भाई, तुम किस अपराध में सजा भोग रहे हो ?

कैदी बोला—हम लोग अलग-अलग अपराधों के अपराधी हैं। किसी ने चोरी की, किसी ने जालसाजी की, किसी ने परस्त्री-

गमन किया। इसी कारण हम लोग इस नरक में पड़े सड़ रहे हैं। किसी को भरपेट रोटी नहीं मिलती। कोई बहुत तंग कोठरी में रक्खा गया है। उसी कोठरी में खाना और उसी में पाखाना! कईयों को बेंत लगते हैं और बहुतों को चक्की पीसनी पड़ती है। हम लोगों को जीवित अवस्था में ही नरक से पाला पड़ा है।

स्त्री ने अपने साथी से कहा--सुनो भैया, इनकी बातें। यह बेचारे कितना कष्ट पा रहे हैं! ध्यान दिया आपने!

वह पुरुष बोला--होगा, इससे हमें क्या सरोकार है?

स्त्री ने सोचा–अब भी मेरा उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। कल दूसरा प्रयोग करूँगी। यह सोच वह लौट गई।

प्रातःकाल होते ही वह उसे समझा-बुझा कर साथ ले गई। उसने आज कसाईखाने में प्रवेश किया। वहाँ बकरों की गर्दन पर खचाखच छुरियाँ चल रही थीं। प्राणी अपने प्राणों की रक्षा के लिए 'बें-बें' चिल्लाते हुए दूर भागना चाहते थे। मगर कसाइयों के हाथ से उन्हें कैसे छुटकारा मिल सकता था? बड़ा ही निर्दयतापूर्ण दृश्य था। कहीं गाय-भैंसों का सिर कटा पड़ा था। कहीं कलेजा कटा पड़ा धड़-धड़ कर रहा था। कहीं किसी जानवर का चमड़ा उधेड़ा जा रहा था। कहीं कोई माँस को इधर-उधर ले जा रहा था। कहीं हड्डियों के ढेर लगे थे और कहीं आगे कटने वाले जानवर खड़े थे। दुर्गन्ध की तो बात ही क्या पूछना। वह मनुष्य यह सब देखकर घबरा उठा। बोला—वह सब क्या हो रहा है?

स्त्री ने कहा—भैया, घबराओ नहीं। अभी इन आदमियों से पूछ लेती हूँ। इतना कहकर एक कसाई से पूछा—भाई, तुम इन जानवरों को क्यों मारते हो?

कसाई—मारें नहीं तो क्या करें? पैसा कमावें कि नहीं? इन्हें मारकर इनका मांस बेचते हैं और अपने बाल-बच्चों की परवरिश करते हैं।

स्त्री—भाई, इन पर कुछ दया करो न ?

कसाई—दया किस पर ? यह तो हमारे खाने के लिए ही पैदा किये गए हैं।

साथ का पुरुष बीच ही में बोला—चलो यहाँ से। मुझ से यह दृश्य नहीं देखा जाता।

स्त्री ने सोचा—ठीक है, हृदय कुछ तो पिघला।

दोनों कसाईखाने से बाहर निकले। बाहर निकलने के बाद वह पुरुष कहने लगा—आखिर इतने पशु क्यों मारे जाते हैं ?

स्त्री—इन पशुओं ने पहले खराब काम किये होंगे।

पुरुष—क्या खराब काम किये होंगे इन बेचारों ने ?

स्त्री—खराब काम यही—चोरी करना, विश्वासघात करना, किसी को ठगना, परस्त्री पर मोहित होना आदि।

पुरुष—इन कामों का फल इतना भयंकर है ?

स्त्री—सो तो तुमने अपनी आँखों देखा है।

अन्त में दोनों अपने-अपने घर चले गये। उस स्त्री ने विचार किया—ऐसे-ऐसे दृश्य दिखलाने पर भी ठीक परिणाम न निकला। वह अपनी बात के पीछे पागल हुआ जा रहा है। करना क्या चाहिये ?

संयोग की बात है कि जिस महिला पर वह मोहित था, उसका कुछ ही दिन बाद अचानक देहान्त हो गया। जैसे ही उस स्त्री को उसके देहान्त की खबर लगी कि वह दौड़कर उस पुरुष के पास गई। जाकर उससे बोली—आज उससे मिलने का मौका है। चलो, देरी मत करो।

वह पुरुष अतीव प्रसन्नता के साथ जल्दी तैयार हो गया। इत्र लगा कर और सुन्दर वस्त्र धारण करके चला।

पुरुष के साथ आने वाली बाई को सभी जानते और आदर की दृष्टि से देखते थे। उसे वहाँ आती देख लोगों ने पूछा-आज

आपका यहाँ कैसे पधारना हुआ ?

उसने उत्तर दिया—भाइयो, आज मैं एक महत्त्वपूर्ण काम से आई हूँ। आप सब लोग थोड़ी देर के लिए जरा बाहर हो जाइये।

सब लोग बाई का कहना मानकर बाहर चले गये। उन्हें विश्वास था कि यह बाई किसी न किसी धार्मिक काम के लिए ही आई है। अतएव उसका कहना मानने में किसी को आपत्ति नहीं हुई।

बाई पहले अकेली अन्दर गई। मृत स्त्री को अच्छे कपड़े ओढाये और आभूषण पहनाये। इत्र भी लगा दिया। फिर वह बाहर आई और उस पुरुष को अन्दर ले जाने लगी।

दोनों भीतर गये। बाई बोली-भैया, लो यह तैयार है। भेंट कर लो।

वह पुरुष कुछ आगे बढ़ा और फिर एकदम एक कदम पीछे लौटता हुआ घबरा कर बोला—यह तो मर चुकी है।

बाई बोली—मरना कैसा ? वही शरीर है। वही कान और नाक है। वही मुख है। वही वस्त्र और आभूषण हैं। सभी कुछ वही तो है। फिर मर गई का क्या अर्थ ?

पुरुष—इसमें प्राण नहीं रहे।

बाई— तुम्हारा प्रेम प्राणों (आत्मा) से है या इस शरीर से ?

पुरुष—यह तो बड़ा ही भयंकर है। मुझे भय मालूम होता है।

बाई—तो क्या तुम इसकी आत्मा को भ्रष्ट करना चाहते थे ? अरे पागल ! कसाई बकरा मारकर उसके शरीर के मांस को लेना चाहता है और तू इसके जीते जी ही इसके मांस आदि पर अपना अधिकार जमाना चाहता था ? जिसके लिए तू तड़फ

रहा था, आज उसी से भयभीत हो रहा है । तेरा प्रेम ऐसा ही था !

पुरुष कुछ कहना ही चाहता था कि बीच में बाई फिर बोल उठी—अरे मेरे भाई ! जितना प्रेम तू इस शरीर पर करता था, उतना अगर आत्मा पर किया होता तो तिर जाता, क्योंकि सब आत्माएँ समान हैं । आत्मा ही अपनी दबी हुई शक्तियां विकसित करके परमात्मा बन जाता है ।

१२ : पर सुख में अपना सुख

किसी समय में एक राजा राज्य करता था । उसके पास बहुत से विद्वान् आते रहते थे । वे लोग राजा में जो दुर्गुण देखते दूर करने का उपदेश राजा को दिया करते थे । पर राजा किसी की कुछ मानता नहीं था । वह विद्वान् पण्डितों को अपने सुख में विघ्न डालने वाला समझता था । अगर कोई विद्वान् अधिक जोर देकर उपदेश देता तो राजा उसका अपमान करने से भी नहीं चूकता था । इस प्रकार किसी की बात पर कान न देने के कारण राजा के दुर्व्यसन बढ़ते गये ।

एक रोज राजा अपने साथियों के साथ, घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जंगल में गया । वहां अपना शिकार हाथ से जाते देख उसने शिकार का पीछा किया । राजा बहुत दूर जा पहुंचा । साथी बिछुड़ गये । पर शिकार हाथ नहीं आया ।

मनुष्य भले ही अपना कुव्यसन न छोड़े, मगर प्रकृति उसे चेतावनी जरूर देती रहती है । यही बात यहाँ हुई । बहुत दूर

चले जाने पर राजा रास्ता भूल गया । वह बुरी तरह थक गया गया । विश्राम के लिए किसी पेड़ के नीचे ठहरा । इतने में जबर्दस्त आंधी उठी और पानी की वर्षा होने लगी । थोड़ी ही देर में बिजली चमकने लगी । मेघ घोर गर्जना करके मूसलाधार पानी बरसाने लगा और ओलों की बोछार होने लगी । राजा बड़ी विपदा में फंस गया । उसने इसी जंगल में न जाने कितने निरपराध पशुओं को अपनी गोली का निशाना बनाया था । आज वह स्वयं प्रकृति की गोलियों–ओलों का निशाना बना हुआ था । राजा ओलों से बचने के लिए वृक्ष के तने में घुसा जाता था पर वृक्ष ओलों से उसकी रक्षा न कर सका । घोड़ा थका हुआ था ही । ओलों की मार से वह और हाँफ गया और अन्त में उसने भी राजा का साथ छोड़ दिया । अब राजा को एक भी सहायक नजर नहीं आता था । उसके महलों में सैकड़ों दास और दासियों का जमघट था, मगर आज मुसीबत के समय कोई खोज-खबर लेने वाला भी नसीब नहीं था ।

विपत्ति हमेशा नहीं रहती । कभी न कभी टल जाती है । इस नियम के अनुसार पानी का बरसना, मेघों का गरजना और हवा का चलना बन्द हो गया । धीरे-धीरे बादल भी फटने लगे । अब राजा के जी में जी आया । उसने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई तो जल ही जल दिखाई दिया । पर दूर की तरफ नजर दौड़ाने पर अग्नि का कुछ प्रकाश दिखाई दिया ।

प्रकाश देखकर राजा के हृदय में तसल्ली बंधी । उसने सोचा वहां कोई मनुष्य अवश्य होगा । वहां चलना चाहिए । रास्ते में गिरता-पड़ता–फिसलता हुआ धीरे–धीरे वह अग्नि के प्रकाश की तरफ बढ़ा । वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता था, एक झोंपड़ी उसे साफ मालूम होती जाती थी । आखिर राजा झोंपड़ी के द्वार पर जा पहुंचा ।

रहा था, आज उसी से भयभीत हो रहा है। तेरा प्रेम ऐसा ही था!

पुरुष कुछ कहना ही चाहता था कि बीच में बाई फिर बोल उठी—अरे मेरे भाई! जितना प्रेम तू इस शरीर पर करता था, उतना अगर आत्मा पर किया होता तो तिर जाता, क्योंकि सब आत्माएँ समान हैं। आत्मा ही अपनी दबी हुई शक्तियाँ विकसित करके परमात्मा बन जाता है।

१२ : पर सुख में अपना सुख

किसी समय में एक राजा राज्य करता था। उसके पास बहुत से विद्वान् आते रहते थे। वे लोग राजा में जो दुर्गुण देखते दूर करने का उपदेश राजा को दिया करते थे। पर राजा किसी की कुछ मानता नहीं था। वह विद्वान् पण्डितों को अपने सुख मे विघ्न डालने वाला समझता था। अगर कोई विद्वान् अधिक जोर देकर उपदेश देता तो राजा उसका अपमान करने से भी नहीं चूकता था। इस प्रकार किसी की बात पर कान न देने के कारण राजा के दुर्व्यसन बढ़ते गये।

एक रोज राजा अपने साथियों के साथ, घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। वहाँ अपना शिकार हाथ से जाते देख उसने शिकार का पीछा किया। राजा बहुत दूर जा पहुंचा। साथी बिछुड़ गये। पर शिकार हाथ नहीं आया।

मनुष्य भले ही अपना कुव्यसन न छोड़े, मगर प्रकृति उसे चेतावनी जरूर देती रहती है। यही बात यहाँ हुई। बहुत दूर

चले जाने पर राजा रास्ता भूल गया। वह बुरी तरह थक गया गया। विश्राम के लिए किसी पेड़ के नीचे ठहरा। इतने में जबर्दस्त आंधी उठी और पानी की वर्षा होने लगी। थोड़ी ही देर में बिजली चमकने लगी। मेघ घोर गर्जना करके मूसलाधार पानी बरसाने लगा और ओलों की बौछार होने लगी। राजा बड़ी विपदा में फंस गया। उसने इसी जंगल में न जाने कितने निरपराध पशुओं को अपनी गोली का निशाना बनाया था। आज वह स्वयं प्रकृति की गोलियों–ओलों का निशाना बना हुआ था। राजा ओलों से बचने के लिए वृक्ष के तने में घुसा जाता था पर वृक्ष ओलों से उसकी रक्षा न कर सका। घोड़ा थका हुआ था ही। ओलों की मार से वह और हांफ गया और अन्त में उसने भी राजा का साथ छोड़ दिया। अब राजा को एक भी सहायक नजर नहीं आता था। उसके महलों में सैकड़ों दास और दासियों का जमघट था, मगर आज मुसीबत के समय कोई खोज-खबर लेने वाला भी नसीब नहीं था।

विपत्ति हमेशा नहीं रहती। कभी न कभी टल जाती है। इस नियम के अनुसार पानी का बरसना, मेघों का गरजना और हवा का चलना बन्द हो गया। धीरे-धीरे बादल भी फटने लगे। अब राजा के जी में जी आया। उसने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई तो जल ही जल दिखाई दिया। पर दूर की तरफ नजर दौड़ाने पर अग्नि का कुछ प्रकाश दिखाई दिया।

प्रकाश देखकर राजा के हृदय में तसल्ली बंधी। उसने सोचा वहां कोई मनुष्य अवश्य होगा। वहां चलना चाहिए। रास्ते में गिरता-पड़ता–फिसलता हुआ धीरे–धीरे वह अग्नि के प्रकाश की तरफ बढ़ा। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता था, एक झोंपड़ी उसे साफ मालूम होती जाती थी। आखिर राजा झोंपड़ी के द्वार पर जा पहुंचा।

राजा शिकारी के वेष में झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हुआ। झोंपड़ी में एक किसान रहता था। राजा को देखते ही उसने कहा 'आओ भाई, अन्दर आओ।'

अहा ! ऐसी घोर विपदा के समय यह स्नेह-पूर्ण 'भाई' सम्बोधन सुनकर राजा को कितना हर्ष हुआ होगा !

किसान राजा को शिकारी ही समझे था। उसके कपड़े पानी में तर देखकर किसान ने कहा—ओह ! तू तो पानी से लथ-पथ हो गया है ! आज तुझे बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी होगी !

किसान के सहानुभूति से भरे मीठे शब्द सुन कर राजा गद्गद् हो गया। भाटों और चारणों के द्वारा बखान की गई अपनी विरुदावली सुनने में और अपने मुसाहिबों के मुजरे में जो आनन्द उसे अनुभव नहीं हुआ होगा, वह अपूर्व आनन्द किसान के इन थोड़े-से शब्दों ने प्रदान किया।

किसान ने अपनी स्त्री से कहा— देख, इस शिकारी के सब कपड़े गीले हो रहे हैं। इसे ठण्ड लग रही है। अपना कम्बल उठा ला। इसे कम्बल देकर इसके कपड़े निचोड़ कर सूखने डाल दे।

किसान की स्त्री कम्बल ले आई। राजा ने बहुत-से कीमती दुशाले ओढ़े होंगे; पर इस कम्बल को ओढ़ने में उसे जो आनन्द आया वह शायद दुशालों से नसीब न हुआ होगा।

आज राजा को यह छोटी-सी झोंपड़ी अपने विशाल राज-महलों की अपेक्षा अधिक आनन्ददायिनी प्रतीत हुई किसान दम्पती की सेवा उसे ईश्वरीय वरदान-सी प्रतीत हुई। राजमहलों को अपना मान कर गर्व से इतराता था, जिस वैभव पर फूला नहीं समाता था, आज वह सब उसे तुच्छ प्रतीत हो रहा था।

राजा ने जब कम्बल पहन लिया, तब किसान ने घास के बिछौने की ओर इशारा करके कहा–तू बहुत थका मालूम देता है। उसे बिछा कर उस बिछौने पर विश्राम कर ले।

राजा सो गया। थकावट के मारे उसे गहरी नींद आ गई।

किसान ने स्त्री से कहा—बेचारे की ठण्ड अभी नहीं गई होगी, जरा आग से तपा दे। स्त्री फूटे-टूटे कम्बल के चीथड़ों का गोटा बना कर राजा को तपाने लगी। किसान की स्त्री अपने पुत्र के समान विशुद्ध-भाव से राजा की सेवा कर रही थी। सरल-हृदय किसान-पत्नी के हृदय में वही वात्सल्य था जो अपने बेटे के लिए होता है।

और किसान राजा के कपड़े हिला-हिला कर अग्नि के ताप से सुखाने में लगा हुआ था।

जब राजा अंगड़ाई लेता हुआ उठ खड़ा हुआ तब किसान ने कहा—अरे अब तो तू अच्छा दिखाई देता है। अब तेरा चेहरा भी पहले से अच्छा मालूम होता है। पर यह तो बता, तू घर से कब निकला था?

राजा—सुबह।

किसान—तब तो तुझे भूख लगी होगी। अच्छा (स्त्री की तरफ देखकर) अरी जा, इसके लिए रोटी और डूंगरी पालक की तरकारी ले आ।

राजा मोटी रोटी जंगली तरकारी के साथ खाने बैठा। उसने अपने सुसराल में, बड़ी मनवार के साथ अच्छे-अच्छे पकवान खाये होंगे। पर कहाँ वह पकवान और कहाँ आज की यह मोटी रोटी! उन पकवानों में जड़ का माधुर्य था, पर इस मोटी रोटी में किसान दम्पती के हृदय की मधुरता! उन पकवानों को भोगने वाला था राजा और इस रोटी को खाने वाला था साधारण मानवी! राजा इस भोजन में जो निस्वार्थ-भाव भाव भरा हुआ पाता था, वह उन पकवानों में कहाँ!

रात बहुत हो गई थी। किसान-दम्पती और उसके बाल-बच्चे सो गये। राजा भी उसी झोंपड़ी में फिर सो गया। मगर

राजा को नींद नहीं आ रही थी। मन ही मन वह किसान की सेवा पर लट्टू हो रहा था। पंडितों के उपदेश ने उसके हृदय पर जो प्रभाव नहीं डाला था, किसान की सेवा ने यह प्रभाव उसके हृदय पर डाला। एक ही रात में उसका सारा जीवन पलट गया। अब तक वह निरा राजा था, आज किसान ने उसे आदमी भी बना दिया।

प्रातःकाल राजा ने अपने कपड़े पहने और किसान से जाने की आज्ञा माँगी। किसान को क्या पता था कि जिसके नाम-मात्र से बड़ों-बड़ों का कलेजा काँप उठता है, वह महाराजाधिराज यही हैं। उसकी निगाह में वह साधारण मनुष्य था। किसान ने यही समझते हुए कहा—'अच्छा भाई, जा। यह झोंपड़ी तेरी ही है। फिर कभी आना।'

इस आत्मीयता ने राजा के दिल में हलचल मचा दी। वह किसान के पैरों में गिर पड़ा। किसान को अपना गुरु मान वह वहाँ से चल दिया।

राजा अपने महल में पहुंचा। राजा के पहुंचते ही मुसाहबों ने मुजरा किया। रानियों ने आदर-सत्कार कर कुशल-क्षेम पूछी। पर राजा को यह सब शिष्टाचार फीका मालूम हुआ। राजा के दिल में किसान की सेवा-परायणता, किसान-पत्नि की सरलता और उन दोनों की सादगी एवं वत्सलता ने घर कर लिया था। वह उसे भूल नहीं सका। बार-बार वही याद करके वह प्रफुल्लित हो जाता था।

विद्वानों ने उसे बहुतेरे उपदेश दिये थे, पर उनका कुछ भी असर नहीं हुआ था। किसान की सरल और निस्वार्थ सेवा ने राजा पर ऐसा जादू डाला कि उसका सारा जीवन-क्रम ही बदल गया। राज्य में जो त्रुटियाँ थीं, उसने उन्हें दूर कर दिया और अपने तमाम दुर्व्यसनों को तिलांजलि दे दी।

एक गरीब की प्रेम-पूर्ण सेवा ने सारे राज्य को सुधार दिया। राजा उस किसान को अपना आदर्श और महापुरुष मानने लगा। जब भी उसे किसान का स्मरण हो आता, तभी वह किसान के चरणों में अपना सिर झुका देता।

मित्रो ! दूसरे के सुख में अपना सुख मानने वाले का प्रभाव कितना होता है, यह इस कहानी से समझो। वास्तव में वही सच्चे सुख का अधिकारी होता है जो दूसरों के सुख को ही अपना सुख मानता है।

१२ : जिंदगी के गुलाम

एक शहर में डाके बहुत पड़ते थे। वहाँ के महाजनों ने सोचा— हमेशा की यह आफत बुरी है। चलो सब मिलकर डाकुओं का पीछा करें। उन्हें पकड़ें। सब महाजन तैयार हुए। शस्त्र बाँध कर शाम के समय जंगल की तरफ रवाना हुए। रास्ते में विचार किया—डाकू आधी रात को आवेंगे। सारी रात खराब करने से क्या लाभ है? अभी सो जाएँ और समय पर जाग उठेंगे।

सब महाजन पंक्तिवार सो गये। उनमें जो सब से आगे लेटा था, यह सोचने लगा—'मैं सब से आगे हूं। अगर डाकू आए तो पहला नम्बर मेरा होगा। सब से पहले मुझ पर हमला होगा। मैं पहले क्यों मरूँ? डाका तो सभी पर पड़ता है और मैं पहले मरूँ, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है, अच्छा मैं उठ कर सब के पीछे चला जाऊँ !'

वह सब के अन्त में आकर सो गया । अब तक जिसका दूसरा नम्बर था । उसका पहला नम्बर हो गया । उसने भी सोचा—'पहले मैं क्यों मरूँ ?' और वह उठा और सब के अन्त में सो गया । इसी प्रकार बारी-बारी सब खिसकने लगे । सुबह होते-होते जहाँ थे वही वापस आ गये ।

लड़ाई का काम वीरों का है । वीर पुरुष ही न्याय की प्रतिष्टा और अन्याय के प्रतीकार के लिए अपने प्राणों की चिन्ता न करके जूझ पड़ते हैं । डरपोक उसमें फतह नहीं पा सकते । जिसके लिए प्राण-रक्षा ही सब कुछ है, जिन्होंने जीवन को ही सर्वोच्च आराध्य-मान लिया है, वे अन्याय बर्दाश्त कर सकते हैं, गुलामी को उपहार समझ सकते हैं और अपने अपमान का कडुवा घूँट चुपचाप पी सकते हैं । वे महाजन जीवन के गुलाम थे । इसी कारण वे लड़ाई के लिए निकल कर भी ठिकाने पहुंच गये ।

मित्रो ! जो कदम आपने आगे रख दिया है उसे पीछे मत हटाओ । तभी आप विजयी होंगे ।

१४ : सोऽहं

एक गुरु के दो शिष्य थे । दोनों को सोऽहं का पाठ पढ़ाया गया और उस पर स्वतन्त्र विचार-अनुभव करने के लिए कहा गया ।

दोनों शिष्यों में एक उद्दण्ड स्वभाव का था । उसने साधना तो कुछ की नहीं और सोऽहं—मैं ईश्वर हूँ, इस प्रकार कह कर अपने आप परमात्मा बन बैठा । वह अपने परमात्मा होने का

ढिंढोरा पीटने लगा। जो मिले उसीसे कहता—मैं ईश्वर हूं। लोगों ने उसकी मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके हाथों पर जलते अंगारे रखने चाहे। तब वह बोला—हैं! क्या करते हो? हाथ पर अंगार रखकर मुझे जलाना क्यों चाहते हो?

लोगों ने कहा—'भले आदमी! कहीं ईश्वर भी जलता होगा?' फिर भी वह मूर्ख शिष्य अपनी मूर्खता को न समझ सका। वह अपने को ईश्वर कहता ही रहा। एक आदमी ने उसके गाल पर चांटा मारा। वह बोला—क्यों तुमने मुझे चांटा मारा?

वह आदमी—मूर्ख! कहीं ईश्वर के भी चांटा लगता है?

मगर उसकी मूर्खता का रंग इतना कच्चा नहीं था। वह चढ़ा रहा। वह लोगों के विनोद का पात्र बन गया। उससे अधिक वह कुछ न कर सका। पर दूसरा शिष्य साधना में लगा। वह एकान्तवास करने लगा और सोचने लगा—मैं अनेक प्रकार के रूप से देख रहा हूं, यह आंखों का प्रभाव है। मैं अनेक काव्य सुनता हूं, यह कानों की शक्ति है। नाना प्रकार के रसों का आस्वादन करना जिह्वा का काम है। किसी वस्तु का स्पर्शज्ञान होना हाथ-पैर आदि का काम है। मैंने जो गंध सूंघे हैं सो नाक के द्वारा। तो अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि यह इन्द्रियां ही सोऽहं है।

वह अपना निष्कर्ष लेकर प्रसन्न होता हुआ गुरुजी के पास पहुंचा। गुरुजी से बोला—महाराज, मैंने सोऽहं का पता पा लिया है।

गुरुजी—कैसे पता पा लिया?

शिष्य—जो इंद्रियां हैं वही सोऽहं है।

गुरुजी—जाओ, अभी और साधना करो। तुम्हें अभी तक सोऽहं का ज्ञान नहीं हुआ।

शिष्य चला गया। उसने सोचा—मैं अब तक सोऽहं का

पता न पा सका। खैर, अब फिर प्रयत्न करता हूं।

वह फिर साधना में जुट गया। विचार करने लगा—गुरुजी ने कहा है—इन्द्रियाँ सोऽहं नहीं हैं। वास्तव में इन्द्रियाँ सोऽहं कैसे हो सकती हैं इन्द्रियाँ सोऽहं होतीं तो अस्थिरता कैसे होती? इन्द्रियाँ बचपन में जैसी थीं आज वैसी कहाँ हैं? इसके अतिरिक्त मैंने भूतकाल में अनेक शब्द सुने थे। उनका आज भी मुझको ज्ञान है, यद्यपि वे वर्त्तमान में नहीं बोले जा रहे हैं। भूतकाल में मैंने जो विविध रूप देखे थे वे आज दिखाई नहीं दे रहे हैं फिर भी उनका मुझे स्मरण है। अगर इन्द्रियाँ ही जानने वाली होतीं तो वर्त्तमान में भूतकालीन विषयों को कौन स्मरण रखता? इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि इन्द्रियों से परे कोई ज्ञाता अवश्य है। तब फिर वह कौन है?

उसने समस्या पर गहराई के साथ विचार किया। तब उसे जान पड़ा कि इन सब क्रियाओं में मन की प्रेरणा रहती है। अतएव मन ही सोऽहं होना चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके वह गुरुजी के पास आया। बोला—गुरु महाराज, मैं सोऽहं का मतलब समझ गया।

गुरुजी—क्या समझे?

शिष्य—यह जो मन है सो ही सोऽहं है।

गुरुजी—फिर जाओ और साधना करो।

शिष्य फिर चला गया। उसने फिर साधना आरंभ की। सोचा—मन सोऽहं नहीं है। ठीक है। मन को प्रेरित करने वाला कोई और ही है। उसी का पता लगाना चाहिए। उसने बहुत विचार किया। तब उसे मालूम हुआ। मन को बुद्धि प्रेरित करती है। इसलिए मन से परे बुद्धि सोऽहं है। वह फिर गुरुजी के पास पहुंचा। कहने लगा—गुरुजी, अब मैंने सोऽहं को समझ पाया है।

गुरुजी—क्या है, बताओ?

शिष्य—मन से परे बुद्धि सोऽहं है।

गुरुजी—वत्स, जाओ, अभी और साधना करो।

शिष्य बेचारा फिर साधना में लगा। सोच-विचार के पश्चात् उसने स्थिर किया—गुरुजी ने ठीक ही कहा है कि बुद्धि सोऽहं नहीं है। अगर बुद्धि सोऽहं होती तो उसमें विचित्रता-विविधता क्यों होती ? कभी वह विकसित होती है, कभी उसमें मंदता आ जाती है। कभी अच्छे विचार आते हैं, कभी बुरे विचार आते हैं। इससे जान पड़ता है कि बुद्धि के परे जो तत्त्व है वही सोऽहं है।

शिष्य बड़ी प्रसन्नता के साथ गुरुजी के पास पहुँचा। बोला—महाराज, अब की बार सोऽहं का पक्का पता चला लाया हूँ।

गुरुजी—क्या ?

शिष्य—जो गुह्य तत्त्व बुद्धि से परे है, जिसकी प्रेरणा से बुद्धि का व्यापार होता है, वह सोऽहं है।

गुरुजी—(प्रसन्नतापूर्वक) हाँ, अब तुम समझे। जो कुछ तुम हो वही ईश्वर है। उसी को सोऽहं कहते हैं।

मित्रो ! आत्मा का पता आत्मा के द्वारा आत्मा को ही लग सकता है।

१५ : बेबुनियाद लड़ाई

चाँद नाम का एक मुसलमान था। उसने अपनी बीबी से कहा—मैं एक भैंस लाऊंगा।

बीबी बोली—बड़ी खुशी की बात है। मैं अपने मायके (पीहर) वालों को भी छाछ भेजा करूंगी।

यह सुनना था कि मियाँ का पारा तेज हो गया। वे बिगड़ते हुए उठे और बीबी को लतियाने लगे।

बीबी बेचारी हैरान थी। उसकी समझ में ही न आया कि मियाँ साहब क्यों खफा हो उठे हैं? उसने पूछा—मियाँ, आखिर बात क्या है? क्यों नाहक मुझ पर टूट पड़े हो?

मियाँ गुस्से में पागल हो गये। बोले—राँड कहीं कीं, भैंस तो लाऊँगा मैं और छाछ भेजेगी मायके वालों को?

इसके बाद फिर तड़ातड़, फिर तड़ातड़!

लोग इकट्ठे हुए। उन्हें मियां के कोप का कारण मालूम हुआ तो उन्हें भी जब्त न रहा। उन्होंने मियाँ को मारना आरंभ किया। तमाचे पर तमाचे पड़ने लगे।

अब मियाँ की अक्ल ठिकाने आई। चिल्ला कर कहने लगे—खुदा के वास्ते माफ करो भाई, आखिर तुम लोग मेरे ऊपर क्यों पिल पड़े हो?

लोगों ने कहा—तेरी भैंस हमारा सारा खेत खा गई है।

मियाँ—भैंस अभी मैं लाया ही कहाँ हूँ?

लोग—तेरी बीबी ने पीहर वालों को छाछ भेजी ही कहाँ है?

मियाँ समझे। उन्हें होश आया। अपनी भूल समझ कर शर्मिन्दा हुए।

स्त्रीशिक्षा का कार्य जब आरम्भ होगा तब होगा; पर उसके विरुद्ध अभी से काना-फूसी होने लगी है। जो लोग ऐसा करते हैं वे उक्त मियाँजी का दृष्टान्त चरितार्थ करते हैं।

एक ही बात नहीं, अनेक बातों में अक्सर इसी प्रकार बेबुनियाद लड़ाई-झगड़ा खड़ा हो जाता है और लाखों रुपया कचहरी देवी की भेंट चढ़ जाता है। बेचारे जज हैरान-परेशान हो जाते हैं पर आप लड़ते-लड़ते थकते नहीं।

१६ : मूल का सुधार

एक बाबाजी थली की ओर आ निकले। जंगल का मामला था ! बाबाजी को भूख प्यास सता रही थी। ऊपर से सूरज अपनी कठोर किरणें फेंक रहा था। पर विश्रान्ति के लिए न कहीं कोई वृक्ष आदि दिखाई दिया और न पानी पीने के लिए जलाशय ही नजर आया। बाबाजी हाँफते-हांफते कुछ और आगे बढ़े। थोड़ी दूर पर, रेतीले टीलों पर तुम्बे के फल की बेल दिखाई दी। बाबाजी पहले कभी इस ओर आये नहीं थे। इस कारण इसके गुणों और दोषों से अनभिज्ञ थे। बाबाजी इन बेलों के पास आये और पीले-पीले सुन्दर फल देखे तो बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा—अब इनसे मैं अपनी भूख मिटाऊंगी।

बाबाजी ने एक फल तोड़ा और मुँह में डाला। जीभ से स्पर्श होते ही उनका मुँह जहर-सा कड़ुआ हो गया। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। देखने में जो फल इतना सुन्दर है, उसमें इतना कड़ुवापन ! मगर वे धुन के पक्के थे। उन्होंने सोचा—देखना चाहिए, फल में कटुकता कहाँ से आई है ? कटुकता की परीक्षा करने के लिए बाबाजी ने पता चखा। वह भी कटुक निकला। फिर तन्तु का आस्वादन किया तो वह भी कटुक ! अन्त में जड़ उखाड़ कर उसे जीभ पर रखा तो वह भी कटुक निकली। बाबाजी ने मन में कहा—जिसकी जड़ ही कटुक है उसका फल मीठा कैसे हो सकता है ? फल मीठा चाहिए तो मूल को सुधारना होगा।

१७ : अन्धापन

कहा जाता है, एक बार बादशाह ने अपने दरबारियों से पूछा—यहां अन्धे ज्यादा हैं या आंख वाले ?

दरबारियों ने कहा—जहांपनाह, यह तो साफ दीखता है कि अन्धे थोड़े हैं और आँख वाले ज्यादा है।

बादशाह इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने यही प्रश्न वजीर से किया। वजीर बोला—अन्धे ज्यादा हैं और आँख वाले कम हैं। आँख वाला तो हजारों-लाखों में एक निकलेगा।

बादशाह ने कहा—तुम्हें अपनी बात सिद्ध करके बतानी होगी।

वजीर— ठीक है। मैं साबित कर दूंगा।

एक दिन वजीर बादशाह को जमना के किनारे ले गया। उसने वहाँ एक स्थान बैठने के लिए विशेष तौर से बनवाया था। उस स्थान पर बादशाह को तथा अन्य साथियों को बिठला कर वजीर अपने आपका स्वांग ले आया। जब वह स्त्री बन कर आया तब सब लोग उसे स्त्री कहने लगे। घड़ी भर स्त्री का स्वाँग दिखा कर फिर पुरुष बन आया। तब सब लोग उसे पुरुष कहने लगे। इस प्रकार वजीर ने जितने स्वाँग दिखाये, लोग उसे वैसा ही कहने लगे। अन्त में वजीर अपने असली रूप में आया। सब लोग कहने लगे—वजीर साहब तसरीफ लाये हैं।

वजीर ने बादशाह से कहा—हुजूर, देखिये, सब लोग अन्धे हैं कि नहीं ? मैं अभी कई-एक भेष बना कर आया था परन्तु मुझे किसी ने नहीं पहचाना। कोई भी मेरा असली रूप नहीं देख सका। सभी लोग मेरे ऊपरी भेष के अनुसार अनेक नामों से मुझे

पुकारते रहे । अतएव इन सब को अन्धों की गिनती में गिनना चाहिए । अब यही लोग मुझे वजीर कह रहे हैं, इसलिए भी अन्धे हैं । एक दृष्टि से देखा जाय तब तो मैं मनुष्य हूं और दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो मैं आत्मा हूं । स्त्री, पुरुष या वजीर हूं तब भी क्या मनुष्य से भिन्न हूं ? मगर लोग असलियत नहीं देखते । मेरे ख्याल से जो असलियत नहीं देखता वह अन्धा है ।

इसी दृष्टान्त के अनुसार लोग अपने आपको और दूसरों को स्त्री, पुरुष या बच्चा कहते हैं । मगर वास्तव में वह कथन ठीक नहीं है । स्त्री-पुरुष आदि तो आत्मा की औपाधिक पर्यायें हैं । आत्मा, ईश्वर है, यह बात ही सत्य है । लोग कड़े और कण्ठी आदि को सोना कहना गलत मानते हैं और सोने को कड़े कण्ठी आदि कहना सही समझते हैं । उस प्रकार आत्मा को ईश्वर मानना झूठ दिखाई देता है और गरीब, अमीर, पुरुष, स्त्री आदि मानना सत्य मालूम होता है । इसी भ्रम के कारण आत्मा संसार के झंझटों में पड़कर ईश्वर से दूर जा पड़ा है ।

१८ : कर्त्तव्य-पथ

कबूतरों की एक टोली जंगल में विचर रही थी । इस टोली का नेता चित्रग्रीव था । वैज्ञानिक कहते हैं कि सर्वसाधारण जनता जिन्हें अपने से बड़ा मानती है उनमें कोई असाधारण गुण होता है । इस कथन के अनुसार कबूतरों ने चित्रग्रीव में नेता के योग्य गुण देखकर उसे अपना नेता बनाया था और उसकी सम्मति से सब साथ-साथ विचरते थे । विचरते-विचरते कबूतरों ने जंगल में

चावल बिखरे देखे । एक पारधी ने चावल बिखेर कर उनके ऊपर जाल फैलाया था । चावलों को देखकर कुछ कबूतर कहने लगे—'चलो, चावल पड़े हैं, उन्हें खाएँ ।' पर राजा चित्रग्रीव ने विचार कर कहा—

इस निर्जन वन में चावलों के दाने कहाँ से आये ? मुझे तो इन चावलों को खाने में कल्याण नहीं जान पड़ता । अतएव थोड़ी देर राह देखो मैं जाँच-पड़ताल कर आता हूँ ।

राजा चित्रग्रीव ने ऐसा कहा । पर आज के युवक मानें, तो वे कबूतर मानें ! ऐसे थे वे कबूतर ! राजा या नेता बना तो दिया जाता है, पर बहुत बार उसकी आज्ञा मानने में कठिनाई प्रतीत होती । इस प्रकार एक हठी कबूतर को राजा चित्रग्रीव का कथन रुचिकर न हुआ । वह बोला-विपदा के वक्त बूढ़ों की बात माननी चाहिए । भोजन के समय बूढ़ों की बात मानने से तो हानि होती है । यदि हम ऐसी शंका करते रहेंगे, तो सभी जगह ऐसी शंकाएँ उत्पन्न होंगी और फल यह होगा कि तड़प-तड़प कर भूखों मरना पड़ेगा । आँखों के आगे चावल पड़े हैं, फिर भी चावल लेंगे तो 'यह होगा, वह होगा' इस तरह कार्य कारण, भाव का विचार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? राजा की यह बात हमें तो जँचती नहीं ।

आज के नवयुवक यह कहने लगते हैं कि हम यदि इन बूढ़ों के कथनानुसार चलेंगे तो अणु मात्र भी सुधार न हो सकेगा । कबूतर भी यही कहने लगे । पर ऐसी परिस्थिति में नेता का क्या कर्त्तव्य है, यह देखिए ।

चित्रग्रीव ने सोचा—'सब कबूतर एक-मत हो गये हैं । मैं इसके मत से विरुद्ध चलूँगा तो अनैक्य आ घुसेगा । इस प्रकार विचार कर उसने कबूतरों से कहा—'यदि सभी का विचार चावल खाने का है, तो चलो । भूख तो मुझे भी लगी है ।' चित्रग्रीव ने

यह नहीं कहा कि तुम लोग मेरी बात नहीं मानते तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैं तो तुम से अलग ही रहूँगा। चित्रग्रीव को भली-भाँति ज्ञान था कि यहाँ संकट है, फिर भी उसने सोचा—संकट-काल में मुझे सब के साथ रहना चाहिए। यही मेरा कर्त्तव्य है। जब सिर पर सँकट आ पड़ेगा, तब आप ही मेरी बात मानेंगे।

यह विचार कर राजा भी सब कबूतरों के साथ चल दिया। कबूतरों ने चावल के दाने तो खाये, पर सब के पैर जाल में फंस गये। वे उड़ने में असमर्थ हो गये। अब सभी कबूतर उस जवान कबूतर को कोसने लगे कि तूने राजा की आज्ञा नहीं मानी और सबको जाल में फँसा दिया। राजा ने सबको सान्त्वना देते हुए कहा—जो होनहार था सो हो गया है। अब उसे कोसना छोड़कर जाल में से छुटकारा पाने का उपाय खोजो। उपालम्भ देने से काम नहीं चलने का।

राजा की यह बात सुनकर सब कबूतर कहने लगे—आप ही इसका कोई उपाय बताइए।' राजा बोला—'तो मेरी बात सब लोग मानोगे न ?' सब ने कहा—'पहले आपकी बात न मानने का कटुक फल यह भोगना पड़ रहा है। अब आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे।'

संकट एक शिक्षाप्रद बोध-पाठ है। राजा ने कहा—यदि सब एक मत हो जाओ तो हम संकट से मुक्त हो सकते हैं। एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो सँकट से मुक्त न हो सकेंगे। अतएव सब हिलमिल कर एक साथ उड़ो और बस जाल को साथ ही साथ उठाओ, तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी।'

आज भारत में फूट है और इसी फूट के कारण पारधियों की बन पड़ी है। फूट न होती तो भारत किसी के जाल में न फँसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश

उड़ चले। कबूतरों को उड़ते देख पारधी उनके पीछे-पीछे दौड़ा और सोचने लगा— मैं इन कबूतरों को अपने जाल में फँसाना चाहता था, पर यह तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय यह सब एक-मत हो रहे हैं, पर जब इनमें फूट पड़ेगी तब सारे नीचे आ गिरेंगे। यह सोचकर पारधी कबूतरों के पीछे-पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा—देखो, पीछे अपना शत्रु आ रहा है। अतएव आपस में झगड़ना नहीं और यह न सोचना कि उड़ने में सब अपने बल का उपयोग कर रहे हैं तो मैं अपने बल का उपयोग क्यों करूँ ? यदि आपस में लड़ोगे-झगड़ोगे या एक-दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पड़ेंगे, काल का ग्रास बन जायेंगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिल कर उड़ने लगे। पारधी थोड़ी दूर तो पीछे-पीछे दौड़ा पर अन्त में वह थक गया और वापस लौट गया। पारधी को पीछा लौटा देखकर कबूतरों ने राजा से कहा—शत्रु तो लौट रहा है, अब हमें क्या करना चाहिए ? राजा ने कहा—हम लोग एक आपत्ति से मुक्त हो गये हैं, पर अभी जाल से मुक्त होना बाकी है। जाल को तोड़ने की शक्ति हम लोगों में नहीं है। यह शक्ति जमीन खोदने वालों में ही होती है। अतएव हम आगे उड़ते चलें। हम तो सिर्फ उड़ना जानते हैं, हमें जाल काटना नहीं आता !

आज स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं। किन्तु जो लोग आकाश में स्वैर विहार करने की तरह केवल लम्बे-चौड़े भाषण ही करना जानते हैं, उनसे परतन्त्रता का जाल कट नहीं सकता। परतंत्रता का जाल तो जमीन को खोदने वाले किसान ही काट सकते हैं।

राजा ने कबूतरों से कहा—गंधक की नदी के किनारे हिरण्यक नामक मेरा एक मूषक (चूहा) मित्र रहता है। हालां कि मैं कबूतर हूं और वह चूहा है, फिर भी वक्त-बेवक्त कभी एक दूसरे को सहा-

यता पहुंचा सकें, इस उद्देश्य से हमने आपस में मित्रता की है। अतएव हम सब उसके पास चलें, तो वह इस जाल के बन्धनों को काट डालेगा और हम लोगों को बन्धन-मुक्त कर देगा।

सब कबूतर उड़ते-उड़ते गंडकी नदी के किनारे आ पहुंचे। जाल के साथ कबूतरों को उड़ते आते देख हिरण्यक अकचका गया। सोचने लगा—यह कौन-सी आफत आई है! लेकिन उसने अपने बिल में सौ द्वार बना रक्खे थे, इसलिए कि आपत्ति आने पर किसी न किसी द्वार से निकल कर बाहर हो सके। कबूतरों को देखकर वह चट से अपने बिल में घुस गया।

हिरण्यक के बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने कहा—'मित्र हिरण्यक! बाहर निकलो, मैं तुम्हारा मित्र हूं।' मित्र की आवाज पहचान कर हिरण्यक बाहर निकला और चित्रग्रीव से कहने लगा—'तुम इतने बुद्धिमान् हो, फिर इस जाल में कैसे फंस गये!' राजा ने उत्तर दिया—यह तो समय की बलिहारी है। राजा ने यह नहीं कहा कि इन कबूतरों ने मेरा कहना नहीं माना इस कारण जाल में फंस गये। हिरण्यक यह सुन कर चित्रग्रीव मित्र का जाल काटने के लिए उसके पास आया। पर चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! पहले मेरे इन साथियों के बन्धन काटो। चित्रग्रीव चाहता तो पहले अपने बन्धन कटवा सकता था। पर उसने ऐसा न करते हुए अपने बंधन काटने का आदेश नहीं दिया। हिरण्यक ने कहा— मित्र! मैं बहुत छोटा प्राणी हूं। मैं इन सबके बन्धन कैसे काट सकूंगा? मेरे दांत भी इतने मजबूत नहीं हैं कि सबके बंधन काट सकूं। अतएव पहले तुम्हारे बंधन काट देता हूं। इसके बाद यदि मेरे दांतों में शक्ति होगी, तो दूसरों के भी काट दूंगा।

हिरण्यक की बात चित्रग्रीव ने स्वीकार न की। नीति कहती है:—

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।

आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥

भावार्थ—आपत्ति के समय के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए, और धन का त्याग करके भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु आत्म-रक्षण के समय स्त्री की या धन की हानि का भी खयाल नहीं करना चाहिए। जब नीति यह कहती है तो चित्र-ग्रीव ने अपने बंधनों को पहले क्यों नहीं कटवा लिया? उत्तर यह है कि नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर धर्म तो कुछ और ही बतलाता है। हिरण्यक ने अपने मित्र को जब यह नीति बतलाई तो राजा ने कहा—

नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर मैं तो नीति से आगे बढ़ गया हूं। नीति मस्तक की उपज है, जब कि धर्म हृदय से उद्भूत होता है। नीति अपने आश्रितों की परवाह न करके अपनी रक्षा करने का उपदेश देती है, पर धर्म बतलाता है कि स्वयं कष्ट-सहन करके भी दूसरों को सुखी बनाओ! राजा ने कहा—मैं तो धर्म का पालन करूंगा। प्रिय मित्र! मैं तुम्हारे ऊपर अधिक बोझ लादना नहीं चाहता। तुममें जितनी शक्ति हो उसी के अनुसार मेरे इन आश्रितों के बन्धन काटो।

धर्म का यह विधान है कि दूसरों के लिए धन और यहाँ तक कि जीवन का भी उत्सर्ग कर देना चाहिए, जब कि नीति स्वयं अपना रक्षण करने के लिए कहती है।

धर्म और नीति में यही अन्तर है। धर्म कहता है—'लीजिए', नीति कहती है—'लाये जाओ।' नीति स्वार्थ पर नजर रखती है, धर्म परमार्थ की ओर संकेत करता है। जिस प्रकार माता का धर्म बालक को चूमना, पुचकारना ही नहीं है, किन्तु बालक का पालन-पोषण करना है, इसी प्रकार आगे बढ़ते जाइये और इस नीति द्वारा धर्म को हृदय में स्थान देते चले जाइए।

चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! जब मैं राजा हूं तो राजा की

हैसियत से अपने आश्रितों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है या नहीं ? मित्रता की खातिर तुम्हारा भी यह कर्तव्य है कि पहले मेरे आश्रितों के बन्धन काट कर फिर मेरे बन्धन काटो। मित्र ! पहले मेरे आश्रितों के बन्धन काटकर मेरे इस भौतिक शरीर के बदले मेरे यश रूपी शरीर की रक्षा करो। यह भौतिक शरीर नाशवान है, जब कि यश अविनश्वर है। अतएव हे मित्र ! मेरे भौतिक शरीर का भोग देकर भी यशःशरीर को बचाओ।

आज के वृद्ध भी स्वार्थ में डूबे हैं। इसलिए वृद्धों का कर्त्तव्य भी युवकों को बताना पड़ता है।

मित्र की यह बात सुनकर हिरण्यक को अत्यन्त आनन्द हुआ। उस हर्ष के आवेश में उसने सब कबूतरों के बन्धन काट फैंके। हिरण्यक चित्रग्रीव से कहने लगा—मित्र ! तुम्हारे उन्नत और उज्ज्वल गुण तुम्हें तीन लोक का स्वामी बनाने के लिए पर्याप्त हैं। वास्तव में त्रिलोकपति वह है जो स्वयं कष्ट-सहन करके दूसरों को कष्ट से बचाता है। यही मानव-धर्म है। स्वयं आपत्तियों को झेलकर दूसरों को सुख-शान्ति पहुंचाना ही मानवधर्म है।

हिरण्यक ने सबके बन्धन काटकर चित्रग्रीव के बन्धन काटे। राजा ने सब कबूतरों से कहा—जो हुआ सो हुआ। 'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहु।' अब उसे याद न करना, अन्यथा परस्पर में लड़ाई होगी।

हिरण्यक ने कहा—'मैं आपका क्या सत्कार करूँ ? मेरे पास इतनी भोजन-सामग्री भी नहीं है कि आप सब को भोजन करा सकूँ ?' राजा ने उत्तर दिया—'भोजन देना कोई बड़ा काम नहीं है। तुमने हमें बन्धनों से मुक्त कर दिया है तो अब खाने की क्या चिन्ता है ?'

इसी प्रकार आप भी दूसरों को कष्टों से मुक्त करने का प्रयत्न करो और ऐसा चिन्तन करते रहो कि मैं स्वयं कष्ट

झेलकर भी दूसरों को सुखी बनाऊँ! प्राणी मात्र को आत्म-तुल्य समझूं। इसके लिये परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करोः—

दयामय! ऐसी मति हो जाय।
औरों के सुख को सुख समझूं, सुख का करूं उपाय।
अपना दुःख मैं सहूं किन्तु पर-दुःख न देखा जाय॥
दयामय०!

दूसरों को कष्ट से मुक्त करने लिये तुम स्वयं कष्ट सहिष्णु बनों, दूसरों के सुख में अपना सुख समझो।

११ : मोह का छाला

किसी राजा के हाथ में एक छाला हो गया। उस छाले का नाम मोती छाला था और वह बड़ा विषैला था। चिकित्सकों ने राजा से कहा—अगर शस्त्र से इसकी चीरफाड़ की गई तो आपका बचना कठिन होगा। यह छाला अगर हंस की चोंच से फुटे तो अच्छा हो जायगा।

राजा ने चिन्तित होकर कहा—हंस मिले और वह छाले को फोड़े! ऐसा योग कब और कैसे मिलेगा।

चिकित्सकों ने कहा—उद्योग करने वालों के लिए कोई बात असम्भव नहीं है। राजहंस के मिलने का उपाय हम बतलाते हैं।

राजा के पूछने पर चिकित्सक ने कहा—समुद्र के किनारे, ऊँची छत पर, एक तख्ता कटवाकर आप उसके नीचे सो रहिये। फटे हुए तख्ते के नीचे हाथ इस प्रकार रखिये कि केवल छाला ही बाहर दीखे-आपका शरीर और शेष हाथ भी तख्ते के बाहर

न दिखाई पड़े। उस छाले के आस-पास मोती बिखेर दीजिए और वहाँ अन्य पक्षियों का भी भोजन रख दीजिये, जिससे अन्य पक्षी भी वहाँ एकत्र हो जावें। पक्षियों को देख कर पक्षी आते हैं। इस उपाय से, सम्भव है, राजहंस भी आजावे और अपनी चोंच से, मोती समझ कर आपका छाला भी फोड़ दे।

मरता क्या न करता! इस कहावत के अनुसार राजा ने ऐसा ही किया। संयोग से अन्यान्य पक्षियों की तरह एक दिन राजहंस भी वहाँ उतर आया। मोती समझकर उसने छाले में चोंच मारी। छाला फूट गया। राजा को अत्यन्त शान्ति का अनुभव हुआ।

राजा को अन्य पक्षियों से प्रयोजन नहीं था। उसे केवल राजहंस की अपेक्षा थी। मगर यदि वह उदारता से काम न लेता—अन्य पक्षियों को दाना न देता, या उनके आने पर उन्हें मार भगाता, तो क्या राजहंस उसके पास फटकता?

"नहीं!"

राजा को जैसा छाला था, वैसा ही छाला आपको मोहनीय कर्म का है। मोहनीय कर्म रूपी विषैले छाले को फोड़ने के लिए आपको महानिर्जरा रूपी चोंच की आवश्यकता है और वह भी साधु रूपी राजहंस की चोंच होनी चाहिए। लेकिन जैसे राजा अगर अन्य पक्षियों को भगा देता होता तो राजहंस उसके पास न आता, इसी प्रकार आप अपने घर आये अतिथि—भिखारी का अपमान करके केवल सुपात्र साधु की इच्छा करोगे तो साधु कैसे आएंगे? पक्षी को उड़ाते देख दूसरा पक्षी भी उड़ जाता है। इसी प्रकार साधु जब आपको अन्य अतिथियों—भिखारियों का अपमान करते देखेगा तो वह आपके यहाँ क्यों आवेगा?

२० : फकीरी और अमीरी

अरब के रेतीले मैदान में एक फकीर घूम रहा था। प्रथम तो ग्रीष्म-ऋतु थी, जिस पर दोपहर का सूरज आकाश से आग बरसा रहा था। पृथ्वी तवे की तरह तपी हुई थी। फिर भी फकीर अपनी मस्ती में ऐसे घूम रहा था, मानो किसी शीतल उद्यान में भ्रमण कर रहा हो।

किसी आवश्यक कार्य से, एक आदमी उधर होकर निकला। अमीर ऊंट पर सवार था। खाने-पीने का सामान उसके साथ था। अमीर के पीछे उसी ऊंट पर उसका एक नौकर बैठा था। उसके बायें हाथ में छाता था और दाहिने हाथ में पंखा। अमीर महाशय को धूप और गर्मी से बचाने के लिए नौकर पूरा उद्योग कर रहा था। उत्तम वस्त्र और आभूषण अमीर की शोभा बढ़ा रहे थे।

अमीर की नजर मस्त फकीर पर पड़ी। उसने कहा—यह भी कोई आदमी है! कैसा बद्शक्ल और मनहूस है! इसे अपनी जिन्दगी की भी चिन्ता नहीं है। धूप में बिना कपड़ा-लत्ता, बिना छाता, प्रेत की तरह घूम रहा है!

अमीर की उत्सुकता बहुत बढ़ गई। उसने फकीर को रोका और पूछा—तू कौन है? फकीर ने लापरवाही से उत्तर दिया—जो तू है सो मैं हूं!

अमीर की त्योरियां चढ़ गई। यह नाचीज मेरी बराबरी करता है? उसने क्रोध से कहा—मनुष्यता का कोई चिन्ह तो तुझ में नजर नहीं आता, अलबत्ता तू मनुष्य को बदनाम करता है। तुझ जैसे बेवकूफ फकीरों ने ही दुनिया को दुःखी बना रक्खा है। तेरी जिन्दगी से तो तेरी मौत बहतर है। मौत आ जाय तो

मनुष्यों का एक कलंक कम हो जाय।

अमीर लोग मनुष्यता को शायद वस्त्रों और आभूषणों से नापते हैं। अगर मनुष्यता को नापने का यही गज हो तो वे मनुष्यता की प्रतिस्पर्द्धा में बहुत पिछड़ जावें। इसी कारण उन्होंने यह गज मान लिया है। उनकी निगाह में वह मनुष्य निरा जंगली पशु है, जिसके पास पहनने को कपड़ा नहीं और सजने को आभूषण नहीं। मगर बात उलटी है। जिनके पास मनुष्यता का बहुमूल्य आभूषण है, उन्हें जड़ आभूषणों की क्या आवश्यकता है? जिन्हें मनुष्यत्व का वास्तविक और सहज आभूषण प्राप्त नहीं है वही लोग ऊपरी आभूषण लादकर अपने आपको आभूषित घोषित करते हैं।

अमीर की बात के उत्तर में फकीर ने कहा—'हम क्यों मरें? मरेंगे तो अमीर मरेंगे।'

अमीर ने फकीर को फटकार बताई और सामने से हट जाने को कहा। फकीर पहले की तरह, मस्त भाव से चल दिया।

थोड़ी ही देर हुई थी कि बड़े जोर की आँधी आई। आँधी मे छाता उड़ गया और छाता उड़ने के कारण ऊँट भड़क उठा। ऊँट भड़कने से अमीर और उसका नौकर धड़ाम से धरती पर आ गिरे। दोनों की मृत्यु हो गई।

आँधी जब थम गई तो वही फकीर घूमता-घामता उधर से आ निकला, जहाँ अमीर और उसका नौकर मरा पड़ा था। फकीर ने अमीर की लाश को पैर की ठोकर लगाते हुए कहा—साली अमीरी! तूने मेरे दोस्त को इतनी जल्दी मार डाला! वह था तो मुझ-सा ही मनुष्य, पर तूने बात की बात में उसके प्राण ले लिये!

फकीरी इस तरह खुदा को प्यारी है। सब लोग फकीर नहीं हो सकते, मगर इतना तो सभी कर सकते हैं कि वे फकीर की निन्दा न करें।

२१ : धार्मिक की पहिचान

किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर, हृदय उस दुःख को अपना ही अनुभव करने लगे—हृदय में सहानुभूति की भावना उमड़ उठे, तो समझना कि मेरे हृदय में दया विराजमान है। जो मनुष्य दुःखी जन को देख कर उपेक्षा-पूर्वक कहता है—'अपने किये का फल भोग रहा है। इसके और इसके किये के बीच में पड़ने की मुझे क्या जरूरत है?' उसके दिल में दया का वास नहीं है। ऐसा विचार आना एक प्रकार की निर्दयता है—क्रूरता है, अधार्मिकता है। खेद है कि आजकल कुछ भाई धर्म के नाम पर इस निर्दयता का पोषण करते हैं। वे इस दया को मोह—अनुकम्पा कहकर त्याज्य ठहराते हैं। वास्तव में पुण्यवान् पुरुष ही दया-धर्म का पालन कर सकता है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा—

कहते हैं, काशी में एक मेला था। विश्वनाथ के मन्दिर में सोने का एक थाल आया। किसी देवता ने वह थाल मन्दिर में रख कर आवाज दी—जो सब से अधिक भक्त हो उसे यह थाल उपहार में दिया जाय। सबसे बड़े भक्त की पहचान यह है कि भक्त का हाथ लगने से थाल देदीप्यमान हो उठेगा और जो सच्चा भक्त न होगा उसका हाथ लगने से लोहे या पीतल का दिखाई देगा।

थाल को देख कर विश्वनाथ के पड़े काँप उठे। उन्होंने सोचा यह थाल हमें हजम नहीं हो सकेगा। इसे किसी को दान में ही दे डालना चाहिए। यह सोचकर एक पण्डे ने, ऊंचे स्थान पर खड़े होकर थाल का हिसाब बताया।

एक तो सोने का थाल हाथ लगता है और दूसरे सबसे बड़े

धर्मात्मा की पदवी मिलती है। भला किसका मन न चलता ! सबके मुँह में पानी भर आया। सभी थाल लेने दौड़ पड़े।

मेले में एक सेठ लाखों का दान करने वाला आया था। उसे अपने दान का बड़ा अभिमान था। वह समझता था—मुझ सा दानी-धर्मात्मा कोई है ही नहीं। वह पुजारी के पास आया और अपने दान-धर्म का बखान करके थाल पाने का अधिकारी बताने लगा। लेकिन पुजारी ने जैसे ही उसके हाथ में थाल दिया कि थाल काला पड़ गया। थाल काला होते ही सेठजी का चेहरा भी काला हो गया। वह मन ही मन लज्जित हुआ, पछताया और नीची निगाह किये चलता बना।

उसके बाद दूसरा तीसरा, चौथा और पाँचवाँ व्यक्ति आया। किसी को अपने तप का अभिमान था, किसी को अपने चरित्र पर नाज था। कई अपने दान के अभिमान में डूबा था और कोई ठाकुरजी की भक्ति के अहंकार में चूर था। सभी ने थाल को हाथ में लिया, पर थाल ने सबकी पोल खोल दी। थाल काला पड़ गया। जब इन्होंने थाल को यथास्थान रखा तो पहले की तरह चमकने लगा।

एक गरीब किसान कन्धे पर हल लादे खेत की तरफ जा रहा था। रास्ते में उसने एक मूर्च्छित मनुष्य को पड़ा देखा। कृषक स्वभाव से दयालु था। उसे दया आगई। वह उसके पास गया। उसे उठाया और बड़े यत्न के साथ अपने झोंपड़े में ले गया। वहाँ उसने अपनी गाय दुह कर उसे ताजा दूध पिलाया, शीतल उपचार किया। तब उसकी मूर्छा हटी। मूर्छा हटते ही उसने कृपक से पूछा—'भाई, तुम कौन हो ?'

कृषक ने कहा—मैं एक गरीब किसान हूं। इसी झोंपड़े में रहता हूं। इसके सिवाय मेरा और कोई परिचय नहीं है।

किसान की सरलता से अजनबी मुग्ध हो गया। बोला—

'मेले में मेरे कई जान-पहचान वाले हैं, कई सम्बन्धी भी हैं। उनमें से किसी ने मुझे संभाला नहीं। तुमने बिना किसी जान-पहचान के ही उठा लिया और जीवन दिया। मैं उपकार का बदला कैसे चुका सकूंगा ?'

कृषक ने कहा—'मैंने अपना कर्त्तव्य पाला है। कर्त्तव्य-पालन में बदला लेने की भावना नहीं होती। आप कृपा करके मुझे किसी प्रलोभन में न डालिये। आपकी सेवा से मुझे जो सन्तोष और सुख हुआ है, वही मेरे कर्त्तव्य का उपयुक्त पुरस्कार है। सेवा को आजीविका बनाना मुझे नहीं रुचता और आप कहते हैं कि तुम्हारा हमारा कोई नाता नहीं, सो वास्तव में ऐसी बात नहीं है। आपके साथ मेरा, ठाकुरजी के द्वारा नाता है। आप मेरे भाई हैं। मैं अपने एक भाई को बेहोश पड़ा छोड़ जाता तो मेरी मनुष्यता मुझे छोड़ जाती।'

अजनबी जब स्वस्थ हो गया तब किसान खेत पर जाने को उद्यत हुआ। परन्तु वह भी किसान के पीछे-पीछे चला। 'किसान बड़ा धर्मात्मा है' 'इस किसान के मुकाबिले का कोई धर्मात्मा नहीं है', इस प्रकार चिल्लाता-चिल्लाता वह चलता चला। किसान ने कहा—'भाई मेरे, तुम क्यों वृथा चिल्लाते हो! मैंने कोई बड़ा काम नहीं किया है। मैं एक मामूली गरीब किसान हूं। 'इतने पर भी अजनबी न माना और चिल्लाता ही चला गया।'

लोगों ने चिल्लाहट सुनी तो दंग रह गये। किसी ने पूछा—'इसने धर्म का कौनसा काम किया है ?' उसने उत्तर दिया—'मनुष्य के प्राण बचाये हैं।'

आखिर दोनों उधर से निकले, जहां पुजारी थाल देने के लिये खड़ा था। उस मनुष्य ने कहा—'पुजारीजी, थाल इन्हें दो। थाल के सच्चे अधिकारी यही हैं।'

पुजारी ऐंठ कर बोला—ऐसे ऐरे-गैरे के लिए यह थाल

नहीं है। यह एक मामूली किसान है। खेत जोत कर पेट भरता है। यह सब से बड़ा धर्मात्मा कैसे हो सकता है ?

वह बोला—"तो जाँच कर लेने में हानि ही क्या है ? तुम्हारे पास धर्मात्मापन की पहचान तो है ही। भले ही यह किसान तिलक–छापा नहीं लगाता, मन्दिर में आकर अपनी भक्ति की घोषणा नहीं करता, फिर भी है यह बड़ा धर्मात्मा। एक बार थाल हाथ में देकर देख तो लो !"

पुजारी ने किसान को थाल लेने के लिये बुलाया। किसान संकोच में पड़ गया। वह थाल लेने से इन्कार करने लगा। जो इन्कार करता है उसे सभी देना चाहते हैं। सभी लोग आग्रह करने लगे। पुजारी ने उसके हाथ पर थाल रख दिया। किसान के हाथ में आते ही थाल एकदम देदीप्यमान हो उठा। मानो दया का तेज थाल में से फूट पड़ा हो।

लोग दंग रह गये। एक स्वर से सभी उसकी सराहना करने लगे। लोगों को जिज्ञासा हुई—'इसने क्या धर्माचरण किया है ?' किसान के साथी ने किसान की मानव-दया का वर्णन कर के सब का समाधान किया।

२२ : अन्याय का धन

एक वकील साहब की पत्नी बड़ी सुशीला और धर्मभीरु थी। एक दिन वकील भोजन करने बैठे और उसी समय एक सेठ आया। सेठ को वकील ने एक मुकदमे में जिताया था। उसने आते ही वकील साहब के सामने पचास हजार के नोट रख दिये। वकील समझ

गये मगर अपनी पत्नी के आगे रौब जमाने के लिये पूछने लगे—'यह नोट किस बात के हैं ?'

सेठ ने कहा—'वकील साहब, मुकदमे में मेरा पक्ष सरासर झूठा था। जिसे मुझे देना था, उससे आपने मुझे उल्टा दिलवाया है। मुझे आपके बुद्धिकौशल के प्रताप से लाखों की सम्पत्ति मिली है। उसी के उपलक्ष्य में यह तुच्छ भेंट आपकी सेवा में उपस्थित की गई है।'

वकील के हर्ष का पार न रहा। अपनी बुद्धि के अभिमान में फूला न समाया। सोचा—कैसी प्रखर बुद्धि है मेरी ! मैं सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा प्रमाणित कर सकता हूं।

वकील ने अभिमान भरी आँखों से अपनी पत्नी की ओर देखा तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उसकी आँखों से अश्रु धारा का प्रवाह फूट रहा था। वकील साहब ने पूछा—'हंसने के समय यह रोना कैसा ? तुम रो क्यों रही हो ?'

पत्नी ने कहा—इसमें खुशी की क्या बात है ? क्या आप इसी प्रकार के अन्याय की रोटी हमें खिलाते हैं ? क्या इसी कमाई से यह जेवर बनाये गये हैं ? क्या मेरी प्राणप्यारी सन्तान के उदर में यही अन्याय का अन्न गया है ? मुझे इस सुख-विलास की आवश्यकता नहीं है। मुझे आभूषणों की परवाह नहीं है। मैं भूखी रहना पसन्द करूंगी, नंगी रहना कबूल करूंगी, मगर अन्याय के धन से दूर रहूंगी। संसार में कोई अजर-अमर होकर नहीं आया। एक दिन सब छोड़ कर जाना होगा। फिर पैसे के लिए ऐसे पाप क्यों ? आप अपनी प्रखर बुद्धि का झूठे को सच्चा बनाने में उपयोग करते है, यह कल्पना ही मेरे लिए असह्य है। फिर यह तो सच्चाई बन गई है। इसे मैं किस प्रकार सहन करूं ?

वकील साहब ने अपनी पत्नी की बातें सुनी तो उनकी अक्ल टिकाने आ गई।

बहिनों को चाहिए कि वे इस वकील-पत्नी का अनुकरण करें। पति अन्याय से धन उपार्जन करता हो तो नम्रता से, मगर दृढ़ता पूर्वक प्रार्थना करो—हमें अधिक आभूषणों की आवश्यकता नहीं है। हम विषय-विलास पसन्द नही करतीं। आप घर में अन्याय की दमड़ी भी न लाइये। बहिनो, अगर तुम इस नीति को अपनाओगी तो इस लोक और परलोक में तुम्हारा और साथ तुम्हारे पति का भी कल्याण होगा। इससे तुम पति के प्रति भी अपना कर्त्तव्य पालन करोगी।

२३ : सरलता

लोग बालक को बुद्धिहीन और मूर्ख समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं। परन्तु बालक जैसे निरहंकार होते हैं, वैसे अगर आप बन जाएं तो आपका बेड़ा पार हो जाए। बुद्धिमत्ता का ढोंग छोड़कर अगर आप अपने अन्तःकरण में बालसुलभ सरलता उत्पन्न कर लें तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जाय। बालक का हृदय कितना सरल होता है, यह बात एक दृष्टान्त से समझिए।

एक मुहल्ले में आमने-सामने दो घर थे। उन दोनों घरों में देवकी और यशोदा नाम की दो लड़कियां थीं। देवकी और यशोदा नहीं जानती थीं कि हम देवकी और यशोदा हैं, पर उनके माता-पिता ने उन्हें यही नाम दे दिये थे। फागुन का महीना था। दोनों बालिकाओं के माँ-बापों ने उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाये थे। बच्चों को स्वभावतः घर प्यारा नहीं लगता। वे

बाहर घूमना-फिरना और खेलना बहुत पसन्द करते हैं। शायद अपने शरीर का निर्माण करने के लिए उन्हें प्रकृति से यह अव्यक्त प्रेरणा मिलती है। अगर बालकों की तरह आप भी घर से उतना प्रेम न रक्खें तो आपको पता चलेगा कि इसका परिणाम कितना अच्छा होता है।

देवकी और यशोदा कपड़े पहनकर अपने-अपने घर से बाहर निकलीं। वर्षा होकर बन्द हो चुकी थी किन्तु पानी गलियों में अब भी बह रहा था। देवकी और यशोदा उसी बहते पानी में खेलने लगीं। दोनों ने पानी में अपने-अपने पैर छपछपाये। पैरों के छपछपाने से कीचड़ भरा पानी उछला और कपड़ों पर धब्बे पड़ गये। दोनों के कपड़ों पर धब्बे पड़ गए हैं, यह देख कर दोनों एक दूसरी को आपस में उलाहना देने लगीं। उलाहना देती हुई वह अपने-अपने घर लौटी। कीचड़ से भरे कपड़े देखकर और बालिकाओं का आपस में उलाहना देना सुनकर दोनों घर वाले झगड़ने लगे।

यद्यपि झगड़े का कोई ठोस आधार नहीं था, और अगर दोष समझा जाय तो दोनों बालिकाओं का दोष बराबर ही था। परन्तु दोनों के माँ-बापों के दिल में पहले की कोई ऐसी बात थी कि उन्हें लड़ने का बहाना मिल गया। दोनों ओर से वाग्युद्ध हो रहा था कि इतने में एक वृद्धा वहां आ पहुँची। उसने दोनों घर वालों से हाथ जोड़कर कहा—आज होली का त्योहार है। आनन्द मनाने का दिन है। प्रसन्न होने का अवसर है। फिर आप लोग आपस में एक-दूसरे की होली क्यों कर रहे हैं? आप दोनों पड़ोसी हैं। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता। दोनों लड़कियाँ खेल रही थीं। एक के कूदने से दूसरी के कपड़े गन्दे हो गये तो कौन बड़ी बात हो गई? इन नादान बच्चों के पीछे आप बड़े—बड़े क्यों झगड़ते हैं? इससे आपकी ही हंसी होती है।

वृद्धा के बहुत समझाने पर भी वे न माने। लड़ाई का जोश इतना तीव्र था कि बुढ़िया की बात सुनने की किसी ने परवाह न की। खूब तपे हुए तवे पर पानी के कुछ बूंद कोई असर नहीं करते। इसी प्रकार तीव्र क्रोध के उत्पन्न होने पर शान्ति की बात व्यर्थ हो जाती है।

इधर दोनों घर वाले झगड़ रहे थे, उधर मौका देखकर दोनों लड़कियाँ फिर घर से बाहर निकल पड़ी। वे वहाँ पहुँची जहाँ पानी बह रहा था। बहते-पानी को रोकने के लिए दोनों ने मिलकर रेत का बाँध बनाया। पानी रुक गया। रुके पानी में दोनों लड़कियों ने घास का तिनका या लकड़ी का टुकड़ा डाला। उसे पानी में तिरते देखकर दोनों उछलने लगी। एक ने कहा—देख, देख, मेरी नाव तैर रही है! दूसरी ने कहा—और मेरी भी तैर रही है। देख ले न!

संयोगवश वह वृद्धा उधर से निकल पड़ी। उसने देखा—इन लड़कियों को लेकर उधर झगड़ा मच रहा है, सिरफुटौवल की नौबत आ पहुँची है, और इधर ये मस्त होकर खेल रही हैं। उसने झगड़ने वालों के पास जाकर कहा—अरे झगड़ना बन्द करके एक तमाशा देख लो! पड़ौसी हो, चाहोगे तभी झगड़ लोगे, मगर यह तमाशा चाहे तब नहीं देख पाओगे। आओ मेरे साथ चलो।

तमाशे की बात प्यारी लगती ही है। फिर बुढ़िया के कहने का ढंग भी कुछ आकर्षक था। अतः झगड़ने वाले बुढ़िया के पीछे-पीछे हो लिये और वहाँ पहुँचे जहां दोनों बालिकाएँ अपनी-अपनी नाव तिरा रही थी। दोनों घर वालों को दिखाते हुए बुढ़िया ने कहा—यह तमाशा देखो, पानी में लकड़ियों के टुकड़े तैर रहे हैं। दर असल यह नाव है!

एक झगड़ने वाले ने कहा—यह कौनसा तमाशा हुआ! तैराई होगी किसी ने!

वृद्धा-और किसी ने नहीं, यशोदा और देवकी ने तैराई हैं। इतना कहकर उसने लड़कियों से पूछा—इनमें कौन किस की नाव है बेटियो ! जरा बताओ तो सही।

दोनों ने साथ-साथ उत्तर दिया-यह मेरी है, यह मेरी है, !

तब मुस्कराती हुई वृद्धा ने कहा—देखो, दोनों लड़कियां इकट्ठी हो गई हैं और जिनको लेकर तुम लड़ रहे हो वह लड़कियां भी मिल गई हैं। अब तुम कब मिलोगे ? यह तो नादान बालक होकर भी मिल गई और तुम समझदार होकर भी झगड़ते रहोगे। वृद्धा की समयोचित शिक्षा से दोनों ... वाले शर्मिन्दा हो गये। उनकी लड़ाई समाप्त हो गई और मेल-मिलाप से रहने लगे।

मित्रो ! बालक लड़-झगड़ कर एक हो जाते हैं, इसी प्रकार अगर आप लोग भी आपस में एकतापूर्वक रहें तो कैसा आनन्द हो ? एकता आपको इतनी शक्ति प्रदान करेगी कि आप अपने को अपूर्व शक्तिशाली समझने लगेंगे। मगर बड़े लोगों की लड़ाई भी बड़ी होती है। वे लड़कर आपस में मिलते तक नहीं हैं। यहाँ तक कि धर्मस्थान में अगर पास-पास बैठना पड़ जाय तो भी एक दूसरे को देखकर गाल फुलाने लगते हैं। यह कहाँ तक उचित है ? ऐसे करने वाले बड़े अच्छे या ऐसा न करने वाले नादान बालक अच्छे ? बालक वास्तव में सरलहृदय होते हैं।

२४ : ईमानदार मुनीम

सच्चा श्रावक कभी नहीं सोचेगा कि मैं गुलामी का कार्य

करता हूँ। वह तो यही समझेगा कि मैं जो कुछ करता हूँ, अपने धर्म की साक्षी से करता हूं। कहीं ऐसा न हो कि मेरे किसी कार्य से मेरे व्रत में दोष लग जाय और मेरे धर्म की प्रतिष्ठा में कमी हो जाय। मैं नौकर हूं, लेकिन सत्य का। शास्त्र की कथाओं में उल्लेख है कि ऐसा समझने वालों को अनेक प्रलोभन दिये गये, यहाँ तक कि प्राण जाने का भी अवसर आ पहुंचा- फिर भी वे अपने सत्य धर्म से विचलित नहीं हुए।

मतलब यह है कि चाहे कोई मुनीमी करे या मजदूरी करे, अगर वह सच्चा श्रावक है तो यही विचारेगा कि मैं पैसे के लिए ही नौकरी नहीं करता हूँ। मुझे अपने धर्म का भी पालन करना है। जो ऐसा विचार करके प्रामाणिकता के साथ व्यवहार करेगा वही सच्चा श्रावक होगा। जो पैसे का ही गुलाम है वह धर्म का पालन नहीं कर सकता। सच्चा श्रावक अपने मालिक के बताये हुए भी अन्यायपूर्ण काम को करना स्वीकार नहीं करेगा।

पूज्य श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। वह इस प्रकार है—

किसी सेठ के यहाँ एक प्रामाणिक मुनीम था। अपने सेठ का काम वह धर्मनिष्ठा के साथ किया करता था। एक बार सेठ ने मुनीम की सलाह नहीं मानी और इस कारण उसका काम कच्चा रह गया। सेठ ने कुछ दिनों तक तो अपना आडम्बर कायम रक्खा मगर पूंजी के बिना कोरा आडम्बर कब तक चल सकता था! जब न चल सका तो एक दिन सेठ ने बड़े दुःख के साथ मुनीम से दूसरी जगह आजीविका खोज लेने को कह दिया। उसने लाचारी दिखलाते हुए अपनी स्थिति का भी हाल बतला दिया, यद्यपि मुनीम से कोई बात छिपी हुई नहीं थी।

मुनीम ने कहा—अपना संसार व्यवहार चलाने के लिए मुझे कोई धन्धा तो करना ही पड़ेगा, लेकिन आप यह न समझें कि

मैं पराया हूँ। जब कभी मेरे योग्य काम आ पड़े, आप निस्संकोच होकर मुझे आज्ञा दें। अधिक तो क्या, मैं प्राण देने के लिए भी तैयार हूँ।

इस प्रकार बड़े दुःख के साथ सेठ ने मुनीम को विदा किया और मुनीम भी बड़े दुख के साथ विदा हुआ।

मुनीमजी घर बैठे रहे। नगर में बात फैल गई कि अमुक मुनीमजी आजकल खाली हैं। उसी नगर में एक वृद्ध सेठ रहता था। वह खूब धनवान् था। उसके बच्चे छोटे थे। वह चाहता था कि मैं व्यापार और बालकों का भार किसी विश्वस्त आदमी को सौंप कर कुछ धर्म-कर्म करने में लगूँ। मगर उसे अपने नौकरों में ऐसा कोई नहीं दिखता था जो उसका काम--काज सँभाल कर ईमानदारी से काम कर सके।

आज के लोग तो अपनी आयु संसार कार्य में ही पूरी कर देते हैं, परन्तु पहले के लोग चौथी अवस्था में या तो साधु हो जाते थे या साधु न होने की अवस्था में धर्मध्यान में लग जाते थे। इससे आगे वालों के सामने एक अच्छा आदर्श खड़ा हो जाता था और वह अपना कल्याण कर लेता था।

सेठजी को उन मुनीमजी के खाली होने की खबर लगी। वह मुनीम को जानते थे। अपना काम-काज संभालने के लिए उन्हें सेठजी ने उपयुक्त समझा और एक दिन बुलाकर कहा— मैं आपकी चतुराई से परिचित हूं। आप हमारी दुकान का काम-काज संभाल लें। मुनीम आजीविका की तलाश में था ही। उसने सेठजी की दुकान पर रहना स्वीकार कर लिया। सेठजी ने उसे सब नौकरों का अध्यक्ष बना कर सब काम उसके सुपुर्द कर दिया।

थोड़े दिन बाद सेठ ने मुनीम से कहा—अमुक वही के अमुक पाने का खाता निकालिए। मुनीम ने खाता निकाला। खाता उसी सेठ का था, जिसके यहाँ मुनीम पहले नौकर था और जिसकी

आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी । खाते में कुछ रुपया बकाया था । सेठ ने कहा—यह रकम वसूल कीजिए ।

मुनीम वही लेकर उस सेठ के यहाँ पहुँचे । सेठ ने प्रेम के साथ आदर-सत्कार करके बिठलाया । मुनीम संकोच के कारण मुँह से तकाजा न कर सका । उसने खाता खोल कर सेठ के सामने रख दिया । सेठ समझ गया । उसने आँसू भर कर कहा—मुनीमजी, रुपया तो देना है, लेकिन इस घर की दशा आप से छिपी नहीं है । मैं क्या करूं ?

मुनीम ने कहा—आप दुःखी न हों । मैं स्थिति से परिचित हूं । अगर मैंने अपने नये सेठजी को वहीं उत्तर दे दिया होता तो ठीक नहीं रहता । इसी विचार से मैं यहाँ तक आया हूँ ।

वहीखाता लेकर मुनीमजी लौट आये । सेठ के पूछने पर उन्होंने कहा—खाते में रकम ज्यादा बकाया है । अभी चुकता कर देने की उनकी शक्ति नहीं है । कभी उनके दिन पलटेंगे तो चुका देंगे । वे हजम करने वाले आसामी नहीं हैं ।

सेठ बोला—पहले के सेठ होने के कारण आप उनकी खुशामद करते हैं । हमारे नौकर होकर उनका रुख रखना उचित नहीं है । इतना बड़ा घर था । बिगड़ जाने पर भी गहने-बर्तन आदि तो होंगे ही । अगर सीधी तरह नहीं देना चाहते तो दावा करके वसूल करो ।

मुनीम—मैं जानता हूँ कि उनकी आमदनी ऐसी नहीं है । किसी प्रकार अपना निर्वाह कर रहे हैं और इज्जत लेकर बैठे हैं । उनकी आबरू बिगाड़ना मेरा काम नहीं है । मैं तो आपकी और उनकी इज्जत बराबर समझता हूँ ।

कुछ कठोर पड़ कर सेठ ने कहा—जिसे रोटी की गरज होगी उसे किसी की आबरू भी बिगाड़नी पड़ेगी ।

मुनीम ने यह बात सुनी तो चाबियों का गुच्छा सेठजी के

मैं पराया हूँ। जब कभी मेरे योग्य काम आ पड़े, आप निस्संकोच होकर मुझे आज्ञा दें। अधिक तो क्या, मैं प्राण देने के लिए भी तैयार हूँ।

इस प्रकार बड़े दुःख के साथ सेठ ने मुनीम को विदा किया और मुनीम भी बड़े दुख के साथ विदा हुआ।

मुनीमजी घर बैठे रहे। नगर में बात फैल गई कि अमुक मुनीमजी आजकल खाली हैं। उसी नगर में एक वृद्ध सेठ रहता था। वह खूब धनवान् था। उसके बच्चे छोटे थे। वह चाहता था कि मैं व्यापार और बालकों का भार किसी विश्वस्त आदमी को सौंप कर कुछ धर्म-कर्म करने में लगूँ। मगर उसे अपने नौकरों में ऐसा कोई नहीं दिखता था जो उसका काम--काज सँभाल कर ईमानदारी से काम कर सके।

आज के लोग तो अपनी आयु संसार कार्य में ही पूरी कर देते हैं, परन्तु पहले के लोग चौथी अवस्था में या तो साधु हो जाते थे या साधु न होने की अवस्था में धर्मध्यान में लग जाते थे। इससे आगे वालों के सामने एक अच्छा आदर्श खड़ा हो जाता था और वह अपना कल्याण कर लेता था।

सेठजी को उन मुनीमजी के खाली होने की खबर लगी। वह मुनीम को जानते थे। अपना काम-काज संभालने के लिए उन्हें सेठजी ने उपयुक्त समझा और एक दिन बुलाकर कहा— मैं आपकी चतुराई से परिचित हूं। आप हमारी दुकान का काम-काज संभाल लें। मुनीम आजीविका की तलाश में था ही। उसने सेठजी की दुकान पर रहना स्वीकार कर लिया। सेठजी ने उसे सब नौकरों का अध्यक्ष बना कर सब काम उसके सुपुर्द कर दिया।

थोड़े दिन बाद सेठ ने मुनीम से कहा—अमुक वही के अमुक पाने का खाता निकालिए। मुनीम ने खाता निकाला। खाता उसी सेठ का था, जिसके यहां मुनीम पहले नौकर था और जिसकी

आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी। खाते में कुछ रुपया बकाया था। सेठ ने कहा—यह रकम वसूल कीजिए।

मुनीम वही लेकर उस सेठ के यहाँ पहुँचे। सेठ ने प्रेम के साथ आदर-सत्कार करके बिठलाया। मुनीम संकोच के कारण मुँह से तकाजा न कर सका। उसने खाता खोल कर सेठ के सामने रख दिया। सेठ समझ गया। उसने आँसू भर कर कहा—मुनीमजी, रुपया तो देना है, लेकिन इस घर की दशा आप से छिपी नहीं है। मैं क्या कहूं?

मुनीम ने कहा—आप दुःखी न हों। मैं स्थिति से परिचित हूँ। अगर मैंने अपने नये सेठजी को वहीं उत्तर दे दिया होता तो ठीक नहीं रहता। इसी विचार से मैं यहाँ तक आया हूँ।

वहीखाता लेकर मुनीमजी लौट आये। सेठ के पूछने पर उन्होंने कहा—खाते में रकम ज्यादा बकाया है। अभी चुकता कर देने की उनकी शक्ति नहीं है। कभी उनके दिन पलटेंगे तो चुका देंगे। वे हजम करने वाले आसामी नहीं हैं।

सेठ बोला—पहले के सेठ होने के कारण आप उनकी खुशामद करते हैं। हमारे नौकर होकर उनका रुख रखना उचित नहीं है। इतना बड़ा घर था। बिगड़ जाने पर भी गहने-बर्तन आदि तो होंगे ही। अगर सीधी तरह नहीं देना चाहते तो दावा करके वसूल करो।

मुनीम—मैं जानता हूँ कि उनकी आमदनी ऐसी नहीं है। किसी प्रकार अपना निर्वाह कर रहे हैं और इज्जत लेकर बैठे हैं। उनकी आबरू बिगाड़ना मेरा काम नहीं है। मैं तो आपकी और उनकी इज्जत बराबर समझता हूँ।

कुछ कठोर पड़ कर सेठ ने कहा—जिसे रोटी की गरज होगी उसे किसी की आबरू भी बिगाड़नी पड़ेगी।

मुनीम ने यह बात सुनी तो चाबियों का गुच्छा सेठजी के

सामने रख दिया और कहा—सेठ साहब, मुझे विदाई दीजिए।

सेठ—अच्छी तरह सोच-विचार लीजिए। मैंने आपको रोजगार से लगाया है। सब कर्मचारियों का प्रधान बनाया है और आप मेरे साथ ऐसा सलूक करते हैं?

मुनीम—जो अपनी इज्जत के महत्त्व को नहीं समझता वही दूसरे की इज्जत बिगाड़ता है। एक दिन वे भी मेरे मालिक थे। आज उनकी स्थिति ऐसी नहीं है, तो क्या मैं उनकी इज्जत बिगाड़ने लगूं? मैंने उनका नमक खाया है और वह मेरे सारे शरीर में व्यापा हुआ है। मैं उनकी प्रतिष्ठा नष्ट नहीं करूंगा। फिर भी अगर आप रकम वसूल करना ही चाहेंगे तो मैं अपनी जायदाद से चुकाऊंगा। मैं सिर्फ पैसे का गुलाम नहीं हूँ। मैं धर्म से काम करने वाला हूँ।

मुनीम की बात सुनकर सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने धन्यवाद देते हुए कहा—मुनीमजी, मैं आपकी कसौटी करना चाहता था। मेरी आज तक की चिन्ता दूर हो गई। यह चाबियाँ सँभालिये। अब आप जानें और दुकान जाने। अब यह घर और बाल-बच्चे मेरे नहीं, आपके हैं। मेरे सिर का भार आपके ऊपर है।

मित्रो! यदि मुनीम पैसे के प्रलोभन में पड़कर, आजीविका रखने की चिन्ता से धर्म को भूल जाता तो क्या परिणाम निकलता?

२५ : फूलां बाई

आत्मकल्याण का पहला उपाय शास्त्र की बात यथार्थ रूप

में समझना है शास्त्र का आशय कुछ और हो आप समझ लें कुछ और ही, तो बड़ा अनर्थ होता है। कुछ का कुछ अर्थ समझ लेने का क्या परिणाम होता है, उस बात को सरलता और स्पष्टता के साथ समझाने के उद्देश्य से एक दृष्टांत कहता हूँ—

एक नामी सेठ था। खूब धनाढ्य था। उसके पाँच लड़के थे, लड़की एक भी नहीं थी। एक दिन सेठ ने विचार किया— 'हम दूसरे के यहाँ से लड़की लाते तो हैं पर दूसरों को देते नहीं हैं। यह मेरे ऊपर ऋण है।' इस प्रकार विचार करने के बाद सेठ के दिल में कन्या का पिता बनने की भावना उत्पन्न हुई।

पुण्ययोग से सेठ की भावना पूर्ण हुई। उसके यहाँ एक लड़की जन्मी। सेठ का घर वैष्णव सम्प्रदाय का था, घर के सभी लोग विष्णु की भक्ति में तल्लीन रहते थे। वे अपने धन वैभव आदि को ठाकुरजी का प्रताप समझते थे। इसके अनुसार उन्होंने उस लड़की को भी ठाकुरजी का ही प्रताप समझा।

पाँच लड़कों के बाद गहरी भावना होने पर लड़की का जन्म हुआ था। इसलिए बड़े ही लाड़ प्यार के साथ लड़की का पालन-पोषण किया गया। लड़की का नाम फूलां बाई रक्खा गया। इस बात का बहुत ध्यान रक्खा जाता था कि लड़की को किसी भी प्रकार का कष्ट न होने पाये। लड़की जब कुछ सयानी हो गई तब भी सेठजी उसे उसी प्रकार रखते थे। लड़की कभी कुछ अपराध या भूल करती तो भी सेठजी एक शब्द न कहते और न दूसरों को कहने देते। इसी प्रकार व्यवहार चालू रहा और लड़की बड़ी हो चली।

जैसा होने वाला होता है वैसे ही निमित्त भी मिल जाते हैं। तदनुसार सेठ के यहाँ एक दिन कोई पंडित आये और इन्होंने गीता का निम्नलिखित श्लोक पढ़ा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोचयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

फूलां बाई इसका अर्थ समझी—सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आजाओ। तुमने कितने ही पाप क्यों न किये हों, मैं उन सब से मुक्त कर दूंगा। अब उसने निश्चय कर लिया—नारायण पापों से मुक्त कर ही देते हैं, फिर किसी भी पाप से डरने की आवश्यकता ही क्या है ? पाप से डरने का अर्थ नारायण की शक्ति पर अविश्वास करना होगा। बस, केवल ईश्वर से डरना चाहिए, पापों से नहीं।

ठाकुरजी से डरने का अर्थ उसने यह समझा कि उन्हें विधिपूर्वक नैवेद्य आदि चढ़ाकर पूजना चाहिए—किसी प्रकार की अविधि नहीं होना चाहिए। इससे ठाकुरजी प्रसन्न होंगे।

फूलां बाई के हृदय में यह संस्कार ऐसी दृढ़ता के साथ जम गया कि समय-समय पर वह कार्यों में भी व्यक्त होने लगा। हृदय का प्रबल संस्कार कार्य में उतर ही आता है। फूलां बाई का व्यवहार अपने नौकरों-चाकरों और पड़ौसियों के प्रति ऐसा ही बन गया। वह सबसे लड़ती-झगड़ती और निरंकुश व्यवहार करती। इस प्रकार फूलां बाई शूलां बाई बन गई।

पहले कहा जा चुका है कि उस घर के सभी लोग सभी बातों के लिए ठाकुरजी का ही प्रताप समझते थे। घर में जो भावना फैली होती है उसी को बालक ग्रहण करते हैं और वैसी ही भावना बन जाती है। फूलांबाई की भावना भी ऐसी ही हो चली। वह भी हर चीज को ठाकुरजी का प्रताप समझने लगी। सेठजी के यहां यह भजन गाया जाता था—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहिं रूठे तो, सबके काटलूं चोटी पटा॥

फूलांबाई ने इस भजन का यह आशय समझ लिया कि सब लोग रूठते हैं तो परवाह नहीं। उन्हें रूठ जाने दो ! अगर

ठाकुरजी अकेले न रूठे तो सब के सिर के बाल उतरवा सकती हूँ ।

फूलां बाई ने सोचा—दुनियां में बहुत लोग है । किन-किन की अलग-अलग खुशामद करती फिरूंगी । अतएव अच्छा यही है कि अकेले नारायण को राजी कर लिया जाय । फिर चाहे जिससे चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता है ।

फूलां बाई के ऐसे व्यवहार को घर के लोग हंसी में टालते रहे, मगर फूलां बाई समझने लगी कि यह सब नारायण भगवान् का ही प्रताप है । नारायण मददगार हो तो कोई क्या कर सकता है ? इस प्रकार फूलां बाई सब के साथ शूल का सा व्यवहार करने लगी ।

फूलां बाई की सगाई एक करोड़पति सेठ के घर की गई । यह देख कर तो फूलांबाई के अभिमान का पार ही न रहा । वह सोचने लगी—मुझ पर ठाकुरजी की बड़ी कृपा है । यही कारण है कि इस घर में मैंने सभी पर अंकुश रखा है, फिर भी मैं करोड़पति के घर व्याही जा रही हूँ ! जैसी धाक मैंने यहाँ जमा रक्खी है, वैसी ही सुसराल में जमा सकूं तो ठाकुरजी की पूरी कृपा समझूं ।

विवाह हो गया । फूलांबाई सुसराल पहुँची । सुसराल पहुंचकर ससुर-सासू के पैर छूना आदि विनीत व्यवहार तो दूर रहा, उसने अपनी दासी को सासू के पास भेजकर कहला दिया—'अभी से यह बात साफ कर देना ठीक जंचता है कि मैं इस इस घर में गुलाम या दासी बनकर नहीं आई हूं । मैं मालकिन बनकर आई हूँ और मालकिन बनकर ही रहूंगी । अपने साथ में धन लेकर आई हूँ, कोरी नहीं आई हूँ । सब काम-काज मेरे कहने के अनुसार होता रहा तो ठीक, अन्यथा इस घर में तीन दिन भी मेरा निर्वाह न होगा ।'

फूलाँबाई सोचती थी – ठाकुरजी प्रसन्न हैं तो फिर डर किसका ? आरम्भ में प्रभाव जम गया तो जम गया, नहीं तो जमना कठिन है । इसलिए पहले ही आतंक जमा लेना चाहिए । डर-भय की तो परवाह ही नहीं है !

नवागता पुत्रवधू का यह अनोखा संदेश सुनकर सासू को अचरज भी हुआ और दुःख भी हुआ । वह सोचने लगी—यह कैसी विचित्र बहू आई है ! इसे इतना अहंकार क्यों है ? है तो यह बड़े घर की बेटी, पर इतने घमण्ड का क्या कारण हो सकता है ? घमण्ड किसी को हो सकता है लेकिन इस प्रकार व्याह कर आते ही तो कोई बहू ऐसा नहीं कहला सकती । देखने में सुन्दर है, बड़े घर की है, फिर भी इसकी बोली और प्रकृति ऐसी क्यों है ? जान पड़ता है इसके शरीर में कुछ न कुछ अवश्य है । फिर भी इसे अभी तो प्रसन्न ही रखना चाहिए । कुछ दिनों में ठिकाने आ जाएगी । ऐसा सोचकर सासू ने कहला भेजा—'अच्छा जैसा बहू कहेगी वैसा ही होगा ।'

फूलांबाई के अहङ्कार को और ईंधन मिल गया । वह सोचने लगी—धन्य हैं ठाकुरजी, उन्होने यहाँ भी मेरा बेड़ा पार लगा दिया । बड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ उसने ठाकुरजी की मूर्ति पधराई और कहने लगी—'ठाकुरजी का प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा !'

थोड़े ही दिनों में फूलांबाई के व्यवहार से घर के सब लोग कांप उठे । उसने सब जगह अपना एकछत्र राज्य जमाना शुरू किया । वह न किसी से प्रेम करती, न किसी का लिहाज रखती । सासू वगैरह समझ गईं कि बहू का स्वभाव दुष्ट है । मगर घर की बात बाहर जाने से इज्जत चली जाएगी । इस विचार से घर के लोग कड़वे घूंट के समान फूलांबाई के व्यवहार को सहन करते गये और उसे क्षमा करते रहे । उनकी क्षमा को फूलांबाई ने ठाकुरजी

को अपने ऊपर विशेष अनुग्रह समझा। उसका व्यवहार दिन प्रतिदिन बुरा होता चला गया।

फूलां की सुसराल के किसी सम्बन्धी का विवाह था। उस विवाह मे सपरिवार सम्मिलित होना आवश्यक था। बहू को भी साथ ले जाना जरूरी था। मगर चिन्ता यह थी कि अगर पराये घर जाकर भी इसने ऐसा व्यवहार रखा तो इतनी बड़ी इज्जत कौड़ी की हो जायगी। अन्त में बहू को घर पर ही छोड़ जाने का निश्चय किया। मगर फूलांबाई को छोड़ जाना भी सरल नहीं था। इसलिए उसकी सास ने एक उपाय सोच लिया।

मूर्ख लोग अपनी मिथ्या प्रशंसा से प्रसन्न होते हैं। उन्हें प्रसन्न करके फिर जो चाहे वही काम करा सकते हो। वे खुशी-खुशी कर देंगे। सासू ने फूलांबाई की खूब प्रशंसा की। अपनी प्रशंसा सुनकर वह फूल गई। उसके बाद सासू ने कहा—इस विवाह में जाना तो सभी को चाहिए। तुम बहुत होशियार हो। अगर घर रहकर इसे संभ.लें रहो तो सब ठीक हो जाएगा।

फूलांबाई फूलकर कुप्पा हो चुकी थी। उसने कहा—तुम्हारे बिना कौन सा काम अटका है? तुम सब पधारो। घर संभालने के लिए मैं अकेली ही काफी हूं।

घर के लोग यही चाहते थे। फूलांबाई को घर छोड़कर सब विवाह में सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये।

उधर सब लोग विवाह के लिए गये और संयोगवश इधर सेठ की समानता रखने वाले एक सगे मेहमान सेठजी के यहाँ आ गये। मेहमान भी ईश्वर में निष्ठा रखने वाला भक्त था। फूलांबाई को मेहमान के आने का समाचार मिला। उसने भोजन की तैयारी करके उसे जीमने के लिए बुलाया। मेहमान जीमने बैठा और भोजन का थाल उसके सामने आया। उसने जैसे ही भोजन करना प्रारम्भ किया कि उसी समय फूलां ने कड़क कर कहा—

कभी पहले भी ऐसे टुकड़े मिले हैं या नहीं ? एकदम भुखमरों की तरह भोजन पर टूट पड़े ! कुछ विचार भी नहीं किया और पेट में भरने लगे । कै दिन के भूखे आये हो ?

ऐसे समय में क्रोध आना स्वाभाविक था । भोजन करने के अवसर पर यह शब्द कहकर फूलांबाई ने भोजन को जहर बना दिया था । पर मेहमान ने सोचा—मैं भक्त हूँ । इसने भोजन को जहर बना दिया है, उसको मैं अमृत न बना सका तो फिर मैं भक्त ही कैसा ? इसमें और मुझमें फिर अन्तर ही क्या रहेगा ? मैं तो आज आया हूँ और आज ही चला भी जाऊंगा, मगर इसके घर के लोग कितने दयाशील और सहिष्णु होंगे जो रोज-रोज इसके ऐसे बर्ताव को सहन करते होंगे ! मेरा इसके साथ परिचय नहीं है, फिर भी इसने पत्थर-सा मारा है । यह घर वालों के साथ कैसा सलूक करती होगी ? सचमुच वे लोग धन्य हैं जो इसके इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार को शान्ति के साथ सहन करते हैं ! अगर मैं इसके स्वभाव को और भड़का दूं तो इसमें मेरी विशेषता क्या है ? मैं इसका मेहमान बना हूं । किसी उपाय से अगर इसका सुधार कर सकूं तो मेरा आना सार्थक हो सकता है ।

मन ही मन इस प्रकार विचार कर उससे फूलांबाई से कहा—आपने क्या ही अच्छी बात कही है ! यह भोजन की तैयारी और उस पर आपका यह बोलना मैंने आज ही देखा है । आप ऐसी हैं तभी तो यह तैयारी कर सकी हैं ।

फूलांबाई मन ही मन कहती हैं—ठाकुरजी का प्रताप धन्य है कि उन्होंने इसे भी मेरे सामने गाय बना दिया है !

प्रकट में वह बोली—अच्छी बात है, अब आप जीम लीजिए । दो-चार दिन ठहरोगे न ? ऐसा भोजन दूसरी जगह मिलना कठिन है ।

मेहमान—आप ठीक कहती हैं । ऐसा भोजन दूसरी जगह

कदापि नहीं मिल सकता। मैं अवश्य दो-चार दिन रहूंगा। आपकी कृपा है तो क्यों नहीं रहूँगा ?

उसने सोचा—इस भोजन को अमृत बना लेना ही काफी नहीं है। इस बाई को भी मैं अमृत बना लूं तो मेरा कर्त्तव्य पूरा होगा।

वास्तव में सुधार का काम टेढ़ा होता है। तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। सुधारक को बड़ी विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयों में भी जो दृढ़ रहता है और अपने उद्देश्य की प्रशस्तता का ख्याल रख कर विकट से विकट संकटों को खुशी के साथ सहन कर लेता है, वह अपने उद्देश्य में सफल होता है।

मेहमान जीम-जाम कर चला गया। पूछताछ करके उसने पता चलाया कि फूलांबाई का स्वभाव ऐसा ही है। यह केवल ठाकुरजी की भक्ति करती है और सबकी कम्बख्ती करती है। मेहमान ने सोचा—चलो यह ठीक है कि वह ठाकुरजी की भक्ति करती है। नास्तिक को समझाना कठिन है, जिसे थोड़ी-बहुत भी श्रद्धा है, उसे समझाना इतना कठिन नहीं।

मेहमान ने एक-दो दिन रहकर फूलांबाई के वाग्बाणों को खूब सहन किया और उसकी प्रकृति का भलीभाँति अध्ययन कर लिया। उसने समझ लिया कि यह ठाकुरजी के सामने सबको तुच्छ समझती है और इसने धर्म का स्वरूप उलटा समझ लिया है। उधर फूलांबाई सोचने लगी—कैसा बेशर्म है यह आदमी, जो हँसता हुआ मेरी सभी बातों को सहन करता जाता है। जो लोग मेरे आश्रित हैं, वे भी मेरे व्यवहार को देखकर अगर मुँह से कुछ नहीं कहते तो भी आँखें लाल तो कर ही लेते हैं। मगर इसके नेत्रों में जरा भी विकार नहीं दिखाई देता। चेहरा ज्यों का त्यों प्रसन्न बना रहता है। इसे मेरी परवाह नहीं है, फिर भी इतना शांत रहता है। यह

मनुष्य कुछ निराला है ।

दो-तीन दिन बाद, आधी रात के समय, मेहमान फूलांबाई के कमरे के पास गया और उसे आवाज दी । फूलांबाई ने पूछा- कौन है ? उसने अपना नाम बता दिया । आधी रात के समय आने के लिए फूलांबाई उसे धिक्कारने लगी । तब उसने कहा— मैं किवाड़ खोलने के लिये नहीं कहता । आपके हिताहित से सम्बन्ध रखने वाली बात सुनाने आया हूं । न सुनना चाहो तो मैं जाता हूँ । सुनना हो तो किवाड़ की आड़ में से सुन लो ।

हिताहित की बात सुनने के लिए फूलांबाई किवाड़ के पास खड़ी हो गई । उसने कहा—क्या कहना है, कह डालो ।

मेहमान—कहूं या न कहूँ, इसी दुविधा में पड़ा हूँ । कुछ निर्णय नहीं कर पाया हूँ ।

फूलांबाई—जो कहना चाहते हो कह डालो । विचारने की बात ही क्या है ? डरो मत ।

मेहमान—आपका भी आग्रह है तो कह देता हूं । अभी मैं सो रहा था । स्वप्न में ठाकुरजी ने दर्शन दिये थे ।

फूलां—ठाकुरजी ! तुम्हारे भाग्य बड़े हैं जो ठाकुरजी ने दर्शन दिये ! उन्होंने तुमसे क्या कहा है ?

मेहमान—उन्होंने कहा कि भगत ! चल । अब मैं इस घर में नहीं रहूंगा, तेरे साथ चलूंगा । मैंने ठाकुरजी से कहा— मैंने इस घर का नमक खाया है । आप मेरे साथ चलेंगे तो मेरी बदनामी होगी ।

फूलां—ठाकुरजी मेरे घर से रूठे क्यों हैं ? किस कारण जाना चाहते हैं ?

मेहमान—मैंने यह भी पूछा था कि आप इस घर से क्यों रूठ गये हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं इस घर से ऊब गया हूं । अब इस घर की सत्ता मुझसे नहीं सही जाती । मैं धीरज रख

रहा था कि अब सुधरे, अब सुधरे, मगर अभी तक कुछ सुधार नहीं हुआ। उन्होंने यह भी कह दिया कि मैं तेरे हृदय में बसूंगा। तू भक्त है। मैंने ठाकुरजी से पूछा—क्या कपड़ों की या नैवेद्य की कमी रही?

फूलांबाई ने चट किवाड़ खोल दिये और कहने लगी—मैं ठाकुरजी के लिए किसी चीज की कमी नहीं होने देती। फिर वे नाराज क्यों हो गये?

मेहमान—मैंने भी तो उनसे यही प्रश्न किया था। उन्होंने उत्तर दिया—तू भी मूर्ख मालूम होता है। मैं क्या उसके कपड़े-लत्ते के लिए नङ्गा-भूखा बैठा हूं! मैं अपनी सत्ता से संसार का ईश्वर हुआ हूं। वह क्या चीज है जो मुझे कपड़े-लत्ते और नैवेद्य देगी? मुझे उसकी परवाह ही कब है?

फूलां—मैं जानती थी कि ठाकुरजी इन्हीं चीजों से प्रसन्न होते हैं। फिर मुझ से क्या अपराध हुआ है जो ठाकुरजी जाने की सोच रहे हैं?

मेहमान—ठाकुरजी ने मुझे एक बात कही है और उसका उत्तर तुम से मांगने की भी आज्ञा दी है। उन्होंने पुछवाया है इस बाई के एक सुकुमार लड़का हो। कोई मनुष्य उस लड़के को मारे या अपमान करे। फिर उन्हीं हाथों से एक थाल में पकवान भर कर वह आदमी फूलां बाई को देने आवे तो बाई लेगी या नहीं?

फूलां—जो मेरे बेटे को दुःख देगा, उसके पकवान लेना तो दूर रहा, मैं उसका मुंह भी नहीं देखना चाहूंगी।

मेहमान—तुम्हारी तरफ से यही उत्तर मैंने ठाकुरजी को दिया था। परन्तु ठाकुरजी कहने लगे—उस बाई के तो एक ही बेटा होगा, किन्तु मेरे तो संसार के सब जीव बेटे हैं। अपने मुंह के विष से जो मेरे बेटों को दुःख देती है, उनसे त्राहि-त्राहि कराती है, उस पापिनी के घर में मैं नहीं रह सकता। इस

ठाकुरजी अब तुम्हारे घर नहीं रहेंगे। वह सारे संसार के पिता हैं और तुम सब से बैर रखती हो। ठाकुरजी बेचारे रहें भी तो कैसे?

फूलां का चेहरा उतर गया। वह कहने लगी-मेरी तकदीर खोटी है जो ठाकुरजी जाते हैं। अब मैं किसके सहारे रहूँगी! मेरी नाव डूबती है, आप किसी तरह इसे किनारे लगाइए। आपकी बड़ी कृपा होगी।

मेहमान—घबराओ मत। मुझे तो पहले से तुम्हारी चिन्ता थी। इसलिए मैंने अपनी शक्ति भर तुम्हारे लिए सब कुछ किया है। मैंने ठाकुरजी से विनय की आप दीनदयाल हैं। बाई के अपराध को क्षमा करके यहीं रहिए। अन्यथा मेरी बहुत बदनामी होगी। तब ठाकुरजी बोले—मैं अब तक के अपराधों को क्षमा कर सकता हूं, पर इससे लाभ क्या होगा? जो अपराध आगे भी करते रहना है, उसके लिए क्षमा माँगने से क्या लाभ है? जिस अपराध के लिए क्षमा माँगनी है, वही अपराध आगे न किया जाय, तभी क्षमा माँगना सार्थक होता है। अगर बाई भविष्य में सब के प्रति आत्मभाव रक्खे, दूसरे की मार खाकर भी बदले में न मारे, गाली सुनकर भी गाली न दे और शांत बनी रहे, सब के प्रति नम्र हो, सब की प्रिय बने, तो मैं रह सकता हूँ, अन्यथा नहीं। अब आप बतलाइए कि आपकी इच्छा क्या है? आप ठाकुरजी की शर्तें पूरी करके उन्हें रखना चाहती हैं या नहीं?

फूलां—बलिहारी है आपकी! मैं अब आपकी शरण में हूं। आपको तो ठाकुरजी स्वप्न में ही मिले और स्वप्न में ही आपने उनसे बातचीत की, परन्तु मुझे तो आप साक्षात् ठाकुरजी मिले हैं। आपने मेरी आँखें खोल दीं। वास्तव में मेरी क्रूरता के कारण सब त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। मैं भक्त नहीं नागिन हूं। मैंने सदा ही अपने मुंह से विष उगला है। आप पर भी मैंने जहर बरसाया, पर आपकी आंखों से अमृत ही निकला। आपने मुझे सच्ची शिक्षा

दी है। सब से पहले आप ही मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अपराध रहने से ठाकुरजी न रहेंगे तो मैं अपराध रहने ही नहीं दूंगी। फिर ठाकुरजी कैसे जा सकेंगे ?

मेहमान—आपने मुझसे जो कुछ कहा है, उससे मुझे दुःख नहीं हुआ। परन्तु जो अशक्त हैं और धर्म को नहीं जानते हैं उनसे क्षमा मांगो। इसी में आपका कल्याण है। मैं तो आपके क्षमा मांगने से पहले ही क्षमा कर चुका हूं।

प्रातःकाल होते ही फूलांबाई ने सब से क्षमा मांगी। पड़ोसियों, नौकरों-चाकरों से बड़े प्रेम के साथ वह मिली और अपने अपराधों के लिए पश्चाताप करने लगी। उसने कहा— आप सब लोग अब तक मुझसे दुखी हुए हैं। आपने मेरे कठोर व्यवहार को शान्ति के साथ सहन किया हैं। एक बार और क्षमा कर दीजिए।

अगर फूलांबाई का मेहमान उसकी बातें सुनकर क्रोधित हो जाता तो फूलांबाई का सुधर ही सकता था ? नहीं। वास्तव में क्षमा बड़ा गुण है। क्षमा के द्वारा सब का सुधार किया जा सकता है।

विवाहकार्य से निवृत्त होकर फूलां के घर के लोग जब लौटे तो फूलां आंखों से जल बरसाती हुई सब के पैरों में पड़ी और अपने अनेक अपराधों के लिए क्षमा मांगने लगी! वह कहने लगी—आप मुझे क्षमा कर देंगे तभी ठाकुरजी रहेंगे, नहीं तो चले जाएंगे।

सब लोग फूलांबाई के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर चकित रह गए। किसी ने कहा—अब तुमने अपना नाम सार्थक किया! पर यह तो कहो कि इस परिवर्तन का कारण क्या है ?

फूलां—अपने घर एक भक्त आये हैं। यह परिवर्तन उन्हीं के प्रताप से हुआ है।

सारा वृत्तान्त जानकर सब परिवार के लोगों ने उन मेहमान की प्रशंसा की। उनका बड़ा उपकार माना और देवता की तरह सत्कार किया। सेठ ने कहा—सच्चे भक्त से ही ऐसा काम हो सकता है! आपने हमारा घर पावन कर दिया। जिस घर में सदा आग लगी रहती थी उसमें आपने अमृत का स्रोत प्रवाहित कर दिया।

फूलां ने भक्त मेहमान से कहा—भगतजी! अच्छा, इस पद का अर्थ बतलाइए:—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन वेटा।
एक नारायण नहिं रूठे तो सब के काटलूं चोटी पटा॥

भगत ने कहा—पहले जो अर्थ समझा है, वह बतलाओ। फिर मैं कहूंगा।

फूलां—मैंने यह अर्थ समझा था कि एक ईश्वर को खुश रखना और सब के चोटी-पट्टे काट लेना।

भगत—यही तो भूल है। इसी भूल ने तुम्हें चक्कर में डाल दिया था। इस पद का सही अर्थ यह है कि—दूसरा रूठता है तो रूठने दे। हे मन! तू मत रूठ। अर्थात् दूसरा अगर मारता और गाली देता है तो तू क्रोध मत कर।

'एक नारायण नहीं रूठे तो काट लूं सब के चोटी पटा' इसका अर्थ स्पष्ट है। अगर मैं तुम्हारी बातों पर क्रोध करता तो क्या तुम मेरे पैरों में पड़ती? मैंने अपने मन को नहीं रूठने दिया तो तुम मेरे पैरों में गिरीं! यही तो चोटी-पट्टा काटना कहलाता है।

फूलां—बहुत ठीक, अब मैं समझ गई, पर एक श्लोक का अर्थ और समझा दीजिए।

भगत—कौनसा श्लोक?

फूलां—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

अर्थ—कृष्ण कहते हैं कि तुम मेरी शरण [illegible] जितने पाप हैं, मेरी शरण में आने पर वे सब छूट जाएँगे। इसलिए कहा है कि जहां पाप है वहाँ ईश्वर की शरण नहीं है और जहाँ ईश्वर की शरण है वहां पाप नहीं है।

[illegible] आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया। आज मेरे नेत्र खुल गये। मैं कुछ का कुछ समझ बैठी थी।

इस कथा से स्पष्ट है कि सत्य के अभिप्राय को विपरीत समझ लेने से बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि सच्चे आस्तिक या परमात्मा के आराधक को अन्य प्राणियों के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए? अगर आपको भगवान् के वचन पर श्रद्धा है तो जगत् के सब जीवों को अपना ही मानो। ऐसा करोगे तो भगवान् आपके हैं, अन्यथा भगवान् रूठ जाएँगे।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'सव्वभूयप्पभूयस्स' अर्थात् समस्त प्राणियों को अपना समझो। अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो। तत्त्वदृष्टि से देखोगे तो पता चलेगा कि अन्य जीवों में और आपके अपने माने हुए लोगों में कोई अन्तर नहीं है।

२६ : माता-पिता का उपकार

वास्तव में माता-पिता के उपकार का बदला नहीं चुक सकता। कल्पना कीजिए, किसी आदमी पर करोड़ रुपयों का ऋण है। ऋण मांगने वाला ऋणी के घर गया। ऋणी ने उसका आदर किया और हाथ जोड़ कर कहा—'मैं आपका ऋणी हूं और ऋण

अवश्य चुकाऊंगा।' अब आप कहिए कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोड़ने से ही क्या ऋणी ऋण-रहित हो सकता है ?

'नहीं !'

एक राजा ने बाग तैयार कराया और किसी माली को सौंप दिया। माली ने बाग में से दस-बीस फल लाकर राजा को दे दिये, तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो गया ?

'नहीं !'

मित्रो ! इस शरीर रूपी बगीचे को माता-पिता ने बनाया है। उनके बनाये शरीर से ही उनकी सेवा की तो क्या विशेषता हो गई ? यह शरीर तो उन्हीं का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है ?

एक माता ने अपने कलियुगी बेटे से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है। पाल-पोसकर बड़ा किया है। जरा इस बात पर विचार तो कर बेटा !

बेटा नयी रोशनी का था। उसने कहा—फिजूल बड़बड़ मत करो। तुम जन्म देने वाली हो कौन ? मैं नहीं था तब तुम रोती थी और बांझ कहलाती थी। मैंने जन्म लिया तब तुम्हारे यहाँ बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार में पूछ होने लगी। नहीं तो बांझ समझ कर कोई तुम्हारा मुंह भी देखना पसन्द नहीं करता था। फिर मेरे इस कोमल शरीर को तुमने अपना खिलौना बनाया। इससे अपना मनोरंजन किया—लाड़प्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो !

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट में रखा सो ?

बेटा—तुमने जान-बूझ कर मुझे पेट में थोड़े ही रक्खा था ! तुम अपने सुख के लिए प्रयत्न करती थी, बीच में हम आ गये ! इसमें तुम्हारा उपकार ही क्या है ? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट में रहने का किराया ले लो !

यह आज की सभ्यता है ! भारतीय संस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूंजी को नष्ट कर रही है।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाड़ा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है !

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती ! तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारियाँ हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रक्खा है !

माता ने सोचा—यह बिगड़ैल बेटा यों नहीं मानेगा। तब उसने कहा—अच्छा चल, हम लोग गुरुजी से इसका फैसला करा लें। अगर गुरुजी कहेंगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नहीं है तो मैं अब से कुछ भी नहीं कहूँगी। मैं माता हूं। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुंह नहीं मोड़ सकूंगी।

माता की बात सुनकर लड़के ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते ही हैं कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकान्त पाप भी कहते हैं। फिर चलने में हर्ज ही क्या है ?

यह सोचकर लड़के ने गुरुजी से फैसला करवाना स्वीकार किया। वह गुरुजी के पास चला गया। परन्तु माता के गुरु दूसरे ही थे। वे उन गुरु कहलाने वालों में नहीं थे जो माता-पिता की सेवा करना एकान्त पाप बतलाते हैं। दोनों माता-पुत्र गुरुजी के पास पहुंचे। वहाँ माता ने पूछा—'महाराज, शास्त्र में कहीं माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नहीं ?' गुरु ने कहा—जिसमें माता-पिता के उपकार का वर्णन न हो वह शास्त्र ही नहीं। वेद में माता-पिता के सम्बन्ध में कहा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।

ठाणांगसूत्र में भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर मां ने पूछा—माता-पिता का उपकार पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है ?

गुरु ने ठाणांगसूत्र निकाल कर बताया और कहा—बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे !

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा—देख तो, शास्त्र में वही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार से मुक्त नहीं होता ! फिर सेवा करने से क्या लाभ है ?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले—मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नहीं हो सकता। पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जावे तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार से ऋण नहीं पट सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार है। इतना करने मात्र से पुत्र उनके उपकारों से मुक्त नहीं हो सकता। पर इस से यह मतलब नहीं निकलता कि माता-पिता की सेवा नहीं करनी चाहिए। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करना ही चाहिए। माता-पिता ने अपने धर्म का विचार कर तेरा पालन-पोषण किया है। नहीं तो क्या ऐसे माता-पिता नहीं मिल सकते जो अपनी सन्तान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बंधा। उसने कहा—'अब सुन ले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नहीं ?' इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझ से कहता है कि तू ने पेट में रखा है तो उसका भाड़ा ले ले। इस विषय में शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुन कर गुरुजी ने शास्त्र निकाल कर बतलाया। उसमें लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर में तीन अंग माता के, तीन अंग पिता के और शेष अंग

दोनों के हैं। मांस, रक्त और मस्तक माता के हैं, हाड़, मज्जा और रोम पिता के हैं, शेष भाग माता और पिता दोनों के सम्मिलित है।

माता ने कहा—बेटा! तेरे शरीर का रक्त और मांस मेरा है। हमारी चीजें हमें दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाड़ा भी साथ ही चुकता कर दे।

यह सब सुन कर बेटे की आँखें खुलीं। उसे माता और पिता के उपकारों का खयाल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई। वह पश्चाताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था। कुसंगति के प्रभाव से मेरी बुद्धि मलीन हो गई थी। इसके बाद वह गुरुजी के चरणों में गिर पड़ा। कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है! आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हूं।

२७ : विद्वान् और मूर्ख

विद्वान् और मूर्ख के बुरे और अच्छे कामों में भी अन्तर होता है, इस विषय में ग्रन्थकारों ने एक दृष्टान्त इस प्रकार दिया है:—

एक विद्वान् को जुआ खेलने का व्यसन लग गया था; जुए के फंदे में फंसकर उसने गांठ की सारी पूंजी गँवा दी और अपनी पत्नी के आभूषण भी बेच डाले। उसकी दशा बड़ी हीन हो गई। लोग भी उसे दुत्कारते थे।

धन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उस विद्वान् को चोरी करने के सिवाय और कोई मार्ग दिखाई न दिया। वह

में लाचार होकर उसने यही करने का निश्चय कर लिया। वह सोचने लगा—चोरी किसके घर करनी चाहिए ? अगर किसी सेठ के घर चोरी करूँगा तो वह चोरी में गये धन को भी हिसाब में लिखेगा। सेठ लोग पाई-पाई का हिसाब रखते हैं। जब-जब वह हिसाब देखेगा तब तक गालियाँ देगा। अगर किसी साधारण आदमी के घर चोरी करूंगा तो वह रोएगा। उस बेचारे के पास पूँजी ही कितनी होती है ?

इस प्रकार विद्वान् ने सब का विचार कर देखा। अन्त में उसने निश्चय किया कि औरों के घर चोरी करना तो उचित नहीं है, राजा के यहाँ चोरी करनी चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके वह राजा के यहाँ चोरी करने गया।

राजा ने एक बन्दर पाल रक्खा था। बन्दर राजा को बड़ा प्रिय था। वह उसे अपने साथ ही खिलाता और साथ ही रखता था। रात के समय जब राजा सोता तो बन्दर नगी तलवार लेकर पहरा दिया करता था। राजा बन्दर को अपना बड़ा प्रिय मित्र समझता था।

राजा सो रहा था। बन्दर नंगी तलवार लिए पहरा दे रहा था। इसी समय विद्वान् चोरी करने के लिए पहुंचा।

बन्दर राजा का मित्र है, लेकिन वह विद्वान् चोरी करने आया है इस कारण शत्रु है। फिर भी देखना चाहिए कि विद्वान् शत्रु में और मूर्ख मित्र में कितना अन्तर है ? और दोनों में कौन अधिक हितकर या अहितकर है ?

राजा गाढ़ निद्रा में लीन था। उसी समय मकान की छत पर एक साँप आया। साँप की छाया राजा पर पड़ी। बन्दर ने साँप की छाया को साँप ही समझ लिया और विचार किया कि यह साँप राजा को काट खाएगा ! वह चपल और मूर्ख तो था ही, आगे पीछे की क्यों सोचने लगा ? उसे विचार ही नहीं आया कि

छाया पर तलवार चलाने से साँप तो मरेगा नहीं, राजा ही मर जायगा। वह सम्भलकर छाया रूपी साँप को मारने के लिये तैयार हुआ।

मूर्ख मित्र की वदौलत राजा के प्राणपखेरू उड़ने में देरी नहीं थी। विद्वान् खड़ा-खड़ा यह सब देख रहा था। उसने सोचा—'इस मूर्ख मित्र के कारण वृथा ही राजा की जान जा रही है। चाहे मै पकड़ा जाऊं और मारा जाऊ, मगर राजा को बचाना ही चाहिए। अपनी आँखों के आगे राजा का वध मैं नहीं होने दूँगा!' यह सोचकर विद्वान् एकदम झपट पड़ा और उसने बन्दर की तलवार पकड़ ली। बन्दर और विद्वान् में झगड़ा होने लगा। इतने में राजा की नींद खुल गई। वह हड़बड़ा कर उठा और बन्दर तथा विद्वान् की खींचतान देखकर और भी विस्मित हुआ। राजा के पूछने पर विद्वान् ने कहा—'यह बन्दर आपके प्राण ले रहा था पर मुझसे यह नहीं देखा गया। इसी कारण झपट कर मैंने तलवार पकड़ ली है।'

राजा—तू कौन है?

विद्वान्—मैं? मैं चोर हूँ!

राजा—बन्दर मुझे कैसे मार रहा था?

विद्वान्—आप सो रहे थे और मैं चोरी करने की ताक में आया था। छत पर साँप आया। उसकी छाया आपके शरीर पर पड़ी। छाया को साँप समझ कर यह बन्दर तलवार चलाने को उद्यत हुआ। मुझसे यह नहीं देखा गया। मैंने झपट कर तलवार पकड़ ली।

विद्वान् की बात सुनकर राजा सोचने लगा—प्रजा को अशिक्षित रखकर बन्दर के समान मूर्ख बनाये रखने से क्या हानि होती है, यह बात आज मेरी समझ में आई। मगर राजा ने पण्डित से पूछा—तुम पण्डित होकर चोरी करने आये हो?

पण्डित—मैं जुआ खेलने के व्यसन में पड़ गया। एक दुर्व्यसन भी मनुष्य के जीवन को किस प्रकार पतित कर देता है, किस प्रकार विवेक को विनष्ट कर देता है, इसके लिए मैं उदाहरण हूं। जुआ के दुर्व्यसन ने मेरी पण्डिताई पर पानी फेर दिया है। मेरी विद्वत्ता जुए से कलंकित हो रही है। मैं आपके सामने उपस्थित हूं। जो चाहें, करें।

मतलब यह है कि नादान दोस्त की अपेक्षा ज्ञानवान् शत्रु भी अधिक हितकारी होता है। ज्ञानवान् अपने कल्याण-अकल्याण को शीघ्र समझ जाता है। ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को शीघ्र ही सन्मार्ग पर ले आता है। पथभ्रष्ट मनुष्य भी, अगर उसके हृदय में ज्ञान विद्यमान है तो, एक दिन सत्पथ पर आये बिना नहीं रहेगा। अतएव प्रत्येक दशा में ज्ञान जीवन को उन्नत बनाने में सहायक होता है।

अगर आप लोग ज्ञान का सच्चा महत्त्व समझते हैं। तो अर्हन्त भगवान् के ज्ञान का प्रचार कीजिए। आप स्वयं ऐसे काम कीजिए जिससे ज्ञान का प्रचार हो। अर्हन्त के ज्ञान का प्रचार अक्षरज्ञान के बिना नहीं हो सकता। यह विचार कर ही भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी को लिपिज्ञान दिया था। भगवान् के आशय को आप समझिए और अपनी सन्तति को मूर्ख मत रहने दीजिए। ज्ञान का प्रचार करने का उद्योग कीजिए। ज्ञान की वृद्धि उन्नति का मूल मन्त्र है। आपके पास जो भी शक्ति हो, ज्ञान के प्रचार में लगाइए। इतना भी न कर सकें तो कम से कम ज्ञान और ज्ञान-प्रचार का विरोध तो मत कीजिए। ज्ञान की, शिक्षा की निन्दा करना, उसमें रोड़े अटकाना और जो लोग ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं उनका विरोध करना बुरी बात है। ज्ञान प्रचार शासन की प्रभावना का प्रधान अङ्ग है। सच्चे ज्ञान का प्रचार होने पर ही चरित्र के विकास की संभावना की जा सकती है। आप लोग ज्ञान और चरित्र की आराधना करके आत्म-कल्याण में लगें, यही मेरी आंतरिक कामना है।

२८ : राजा और चोर

शेखपुर में एक चालाक चोर रहता था। वह इस चालाकी से लोगों के घर चोरी करता था कि यह पता लगाना तक कठिन हो जाता था कि चोरी कब और किस प्रकार हुई है? चोरी के कारण प्रजा परेशान हो गई। प्रजा ने प्रयत्न किया मगर चोर का पता नहीं लगा। किसी के घर का ताला टूटा नहीं, दीवार में सेंध लगी नहीं, फिर भी घर में चोरी होगई। इस चतुर चोर की चालाकी से प्रजा थक गई। आखिरकार प्रजा इकट्ठी होकर राजा के पास पहुंची। शेखपुर की प्रजा छोटी-छोटी बातों के लिए राजा के पास नहीं पहुंचती थी। अतएव राजा समझ गया कि आज प्रजा पर कोई मुसीबत आई है। इसी कारण लोग मेरे पास आये हैं।

राजा ने प्रजाजनों से पूछा—तुम्हें, क्या कष्ट है, स्पष्ट कहो।

प्रजा ने चोर द्वारा चारों ओर फैलाये हुए हाहाकार का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया। राजा चोर की चालाकी की बात सुनकर आश्चर्यचकित हो कहने लगा—यह चोर वास्तव में कोई महान् चोर है। खोज करके जल्दी ही उसे पकड़ना चाहिए। चोर को पकड़कर मैं प्रजा का दुःख दूर करने का यथा-सम्भव प्रयत्न करूंगा। सच्चा राजा हूँ तो अपने प्राणों को होम करके भी सात ही दिन में चोर को पकड़ लूंगा। इस प्रकार कह-कर राजा ने प्रजा को आश्वासन दिया।

आज ऐसे प्रजाप्रेमी नरेश बहुत कम नजर आते हैं जो प्रजा के दुःख को अपना दुःख समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। प्रजाप्रिय राजा, प्रजा की रक्षा के लिए अपने प्राण को न्योछावर कर देता है।

राजा ने चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की है, यह बात चारों ओर नगर भर में फैल गई। मंडूक ने भी राजा की प्रतिज्ञा की बात सुनी। वह विचार करने लगा—राजा ने प्राण का भोग देकर भी मुझे पकड़ने की प्रतिज्ञा की है। अब मेरा बचना कठिन है। फिर भी मुझे तो राजा के पंजे से बचने का ही प्रयत्न करना चाहिए। वीर पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह पराजित भले ही हो जाय मगर पुरुषार्थ न छोड़े। पुरुषार्थ छोड़कर बैठ रहना कायरता है।

चोर का पता लगाने के लिए राजा भेष बदलकर शहर में निकला। इधर चोर भी अपना भेष बदलकर यह देखने के लिए निकला कि देखें, राजा क्या करता है? चोर पैर में पट्टी बांधकर, हाथ में लाठी लेकर, बीमार दरिद्र की तरह शहर में घूमने निकला। राजा ने मंडूक चोर को इस भेष में देखा। मंडूक चोर की आंख देखते ही राजा मन में समझ गया कि चोर यही है। परन्तु जब तक प्रमाण द्वारा अपराध साबित न हो जाय तब तक उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। दोनों एक-दूसरे के सामने आये और आपस में पूछने लगे—'तुम कौन हो?' किसी ने अपना परिचय नहीं दिया। अन्त में चोर ने कहा—मैं कौन हूँ, यह जानने की तुम्हें क्या आवश्यकता है? तुम अपना काम करो, मैं अपना काम करता हूं। चोर के इस कथन का आशय राजा ने यह समझा कि चोर ठीक ही कह रहा है कि 'मैं चोर हूं। चोरी करने जाता हूं। तुम राजा हो तो मुझे पकड़ लो।'

इस प्रकार विचार कर राजा वहां से चलता बना। जाते-जाते राजा ने यह भी निश्चय कर लिया कि चोर सामने के पहाड़ में रहता है और इस रास्ते से शहर में आता है।

दूसरे दिन राजा ने भिखारी का भेष बनाया। वह उसी रास्ते पर चुपचाप बैठ गया, जिस रास्ते से चोर आया-जाया करता था।

चोर भी भेष बदल कर शहर में आया। रात अन्धेरी थी। भिखारी के भेष में पड़े हुए राजा पर उसकी निगाह न पड़ी। अतः चोर के पैर में राजा की ठोकर लग गई। ठोकर लगते ही वह चिल्ला उठा। चोर ने पूछा—तू कौन है?

राजा ने कहा—मैं गरीब भिखारी हूं। रहने को कहीं जगह नहीं। इसलिए यहां पड़ा हूं।

चोर बड़ा ही चालाक था। समझ गया, यही राजा है। उसने सोचा—किसी भी उपाय से राजा को नष्ट किया जा सके तो फिर कोई आफत ही न रहे।

चोर बोला—क्या इस तरह रास्ते में पड़े रहने से तेरा दुःख दूर हो जायगा?

राजा—इस तरह पड़े रहने से दुःख दूर नहीं होगा। दुःख तो तुम्हारे जैसे की संगति से दूर हो सकता है।

चोर- तू मेरे साथ चल। मैं तेरा दुःख दूर करूंगा।

राजा ने चोर के साथ जाना कबूल किया। राजा साथ हो लिया। दोनों एक दूसरे को मार डालने की घात में थे, इस कारण दोनों ही सावधान थे।

चोर ने चोरी की। धन आदि की दो पेटियां भरीं। राजा से कहा—एक पेटी तू उठा ले। पर देखना, भाग मत जाना।

राजा—नहीं मैं भागूंगा क्यों?

चोर—तो ठीक। चल, आगे चल। मैं तेरे पीछे-पीछे चलता हूं।

राजा—'तुम्हें कहाँ जाना है, सो मुझे मालूम नहीं। अतएव आगे तुम चलो। मैं पीछे-पीछे चलूंगा।

चोर--ठीक है, तू पीछे ही चलना। मगर तू कहीं भाग न जाय, इसलिए तुझे रस्सी से बांध लेता हूं।

चोर ने राजा को रस्सी से बाँध लिया। चोर आगे-आगे

चलने लगा। राजा चोर नहीं था। फिर भी मंडूक चोर ने राजा को चोर की तरह बांध लिया।

राजा को साथ लेकर चोर घर आया। मंडूक चोर ने अपनी लड़की को पास बुला कर कहा— मैं एक आदमी को साथ लाया हूँ। वह मेरे व्यवसाय में विघ्न डालता है। किसी उपाय से उसे मार डालना है।

पुत्री ने कहा— आपकी आज्ञा के अनुसार सब काम हो जायगा।

लड़की तब राजा के पास पहुंची। बोली—भोजन तैयार है। जीमने चलो।

राजा ने मन ही मन कहा—भोजन करने तो जाना चाहिए, मगर भोजन करते समय सावधान रहना होगा। इस समय मैं चोर के घर में हूं।

राजा ने लड़की से कहा—पहले तुम जीमलो। तुम्हारे जीमने के बाद मैं भोजन करूंगा। मैं भिखारी हूँ, फिर भी इतनी सभ्यता जानता हूं। जब तक घर वाले न जीम लें, मैं कैसे जीम सकता हूँ?

राजा की बात सुनकर लड़की समझ गई—यह भिखारी नहीं है। दरअसल भिखारी होता तो ऐसा न कहता, वरन् खाने बैठ जाता।

चोर की कन्या ने राजा से कहा—अगर तुम सभ्य हो तो भोजन से पहले स्नान करना चाहिए।

राजा—अगर यह नियम है तो इसका पालन करना मेरा कर्त्तव्य है।

चोर-कन्या राजा को स्नान कराने के लिए कुए पर ले गई। चोरकन्या का यह नियम था कि वह जिसे स्नान कराने कुए पर ले जाती, उसके पैर पकड़ कर कुए में फैंक देती थी। राजा को कुए में डालने के लिए उसने राजा के पैर पकड़े। पर राजा के

सुलक्षण युक्त पैर देखकर वह सोचने लगी– यह तो कोई महापुरुष है ! पैर के चिह्नों से मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर का हाल मालूम हो जाता है । इस कथन के अनुसार चोरकन्या ने राजा के लक्षणयुक्त पैर देखकर विचार किया— यह कोई महान् पुरुष है । ऐसे महान् पुरुष को पिताजी मार डालना चाहते हैं, यह उचित नहीं है।

चोरकन्या कहने लगी—मेरे पिता अत्यन्त क्रूर हैं । वे तुम्हें मार डालना चाहते हैं । मैं तुम्हारे लक्षणयुक्त पैर देखकर समझ गई हूँ कि तुम राजा हो । मैं तुमसे यही कहना चाहती हूँ कि अगर अपने प्राण बचाना चाहते हो तो इस रास्ते से जल्दी भाग जाओ । वर्ना तुम्हारे प्राणों की खैर नहीं ।

राजा ने चोरकन्या की बात मानली । वह उसके बताये मार्ग से भाग निकला । राजा जब दूर जा पहुँचा तो चोरकन्या ने मंडूक को आवाज दी । कहा—वह भिखारी तो भाग गया ।

भिखारी के भागने का समाचार पाते ही मंडूक की आँखें लाल हो गईं । कंक नामक पत्थर से बनाई गई तीखी तलवार लेकर वह राजा के पीछे दौड़ा । तलवार इतनी तीखी थी कि जिस चीज पर उसका प्रहार हुआ, तत्काल उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे ।

चोर ने दूर से ही राजा पर तलवार का प्रहार किया । मगर वह प्रहार पत्थर के खम्भे पर जा लगा । खम्भा टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा । राजा बड़ी कठिनाई से बच सका । चोर समझ गया—राजा बच गया है और खम्भा टुकड़े-टुकड़े हो गया है ।

चोर निराश होकर घर लौट आया । उसने अपनी कन्या से कहा—राजा धोखा देकर भाग गया । वह अपने घर की छिपी बातें जान गया है । अब हमें बहुत होशियारी के साथ रहना चाहिए ।

चोरकन्या ने कहा—पिताजी ! जान पड़ता है, अब आपके

पापों का घड़ा भर गया है।

मंडूक ने क्रुद्ध होकर कहा—क्यों अपशकुन की बात मुंह से निकालती है ?

चोरकन्या—पाप का अन्त होने में बुराई क्या है, पिताजी !

लड़की की बात मंडूक को बहुत बुरी लगी। फिर भी वह मौन रहा।

दूसरे दिन चोर व्यापारी बनकर शंखपुर के बाजार में क्रय-विक्रय करने आया। इधर राजा भी वेष बदल कर चोर की फिराक में शहर में घूमने लगा। घूमता-घूमता राजा उसी दुकान पर आ पहुँचा, जहाँ चोर व्यापारी के रूप में क्रय-विक्रय कर रहा था। राजा, चोर व्यापारी को देखते ही पहचान गया। राजा ने पूछा—'तुम क्या-बेचने आये हो ? तुम्हारे पास क्या है ?

चोर—हमारे पास सभी कुछ है। तुम्हें क्या चाहिए ?

राजा—भाई, मुझे और कुछ नहीं चाहिए। सिर्फ तुम्हारी आवश्यकता है।

चोर—मेरा क्या काम है ?

राजा—तुम चोर हो, इसीलिए तुम्हारी जरूरत है ?

चोर—मैं साहूकार हूं। कौन मुझे चोर कहता है ?

राजा—तुम्हारे चोर या साहूकार होने का निर्णय अभी हो जायगा। तुम्हारे चोर होने की खातिरी मैंने तो पहले से ही कर रखी है।

आखिर राजा ने चोर को पकड़ लिया। चोर विचार करने लगा—मुझे पकड़ने वाला कोई मामूली आदमी नहीं है। राजा ने मुझे पकड़ा है। मुझे सख्त सजा मिलेगी।

राजा बोला—अब तुम पकड़े जा चुके हो। कहो अब तुम्हें क्या करना है ?

चोर बोला—जो आप कहें, वही करने को तैयार हूं।

राजा—सब से पहले तुम अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह कर दो।

चोर—ठीक है। यह कह कर उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या राजा को ब्याह दी।

राजा ने चोरकन्या से कहा—तुमने मेरे शरीर की रक्षा की थी। अब यह शरीर मैं तुम्हारे सिपुर्द करता हूँ।

चोरकन्या बोली—नाथ, आप उदार हैं, इसी से ऐसा कहते हैं। मैं तो वास्तव में चोर की कन्या हूँ। मैं आपके सन्मान के योग्य नहीं। आपने मेरा सन्मान करके मुझ पर उपकार किया है।

राजा—अब तुम्हें किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए। तुम्हारे पिता अब मेरे सुसर हैं। मैं उनका भी सन्मान करूगा और गौरव बढ़ाऊँगा।

राजा ने मंडूक चोर को प्रधान मंत्री बना दिया। जब यह बात नगर में फैली तो सभी लोग राजा को धिक्कारने लगे। राजा इसके लिए तैयार था। वह जानता था कि पहले पहल लोग मेरे कार्य से अप्रसन्न होंगे। मगर जब इसका नतीजा सुनेंगे तो प्रसन्न हुए बिना नहीं रहेंगे।

राजा चोर-प्रधान को धमकाकर या समझा-बुझाकर चोरी के रत्न निकलवाता रहता था। उसके पास अभी कितने रत्न हैं, यह बात राजा चोरकन्या अर्थात् अपनी पत्नी से मालूम कर लेता और फिर उन्हें किसी उपाय से निकलवा लेता। इस प्रकार कभी धमकी देकर और कभी फुसलाकर राजा ने चोर-प्रधान के पास से सभी रत्न निकलवा लिए। जब उसके पास कुछ भी शेष न रहा तब राजा ने नगरजनों को बुलाया और कहा—यह प्रधान नहीं, चोर है। चोर से सब रत्न निकलवाने के उद्देश्य से ही मैंने इसे प्रधान बनाया था। अब इसके पास कुछ बाकी नहीं रहा। अतएव चोरी करने के अपराध मे इसे फांसी की सजा दी जाती है।

चोरी गये सब रत्न राजा ने वापिस कर दिए। प्रजाजन राजा की बुद्धिमत्ता और चतुराई की प्रशंसा करने लगे। राजा-प्रजा में प्रेम की वृद्धि हुई। राज्य का अच्छी तरह संचालन होने लगा।

यह एक दृष्टान्त है। साधुजीवन पर यह दृष्टान्त दिया गया है। इस दृष्टान्त में क्या सार ग्रहण करना चाहिए, यह विचारणीय है।

साधु के लिए कहा गया है कि यह शरीर मंडूक चोर के समान है। बुद्धि शरीररूपी चोर की कन्या है। शरीर यद्यपि चोर के समान है, फिर भी अनेक रत्न इसके कब्जे में हैं। इस शरीर के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। हे मुनियो! तुम्हारे शरीर में रहा हुआ आत्मा राजा है। शरीर चोर है और बुद्धि चोरकन्या है। मनुष्य में जैसी बुद्धि है वैसी प्राणियों में नहीं है। आत्मारूपी राजा शरीररूपी चोर के घर में आया है। आत्मारूपी राजा खान-पान के प्रलोभन में न पड़कर बुद्धिरूपी चोरकन्या को पहले खिलाकर ही आप खाता है। अर्थात् शास्त्र में खान-पान सम्बन्धी जो विधी बतलाई गई है, बुद्धि द्वारा उसका निर्णय करने के बाद ही खाता है। इस प्रकार बुद्धि द्वारा निर्णय करके जो खाता है, वही आत्मारूपी राजा है। बुद्धिरूपी चोरकन्या आत्मा-राजा को पैर पकड़कर कुए में डाल देना चाहती है, पर आत्मा-राजा के लक्षण-युक्त चरण देखते ही वह उसे महान् समझकर बचा देती है। चरण का अर्थ पैर भी है और आचरण भी है। जब बुद्धि के हाथ चरण आता है और वह उसके अच्छे लक्षण देखती है, तब कहती है—ऐसे पुण्यात्मा को कूप में पटकना ठीक नहीं। इस प्रकार बुद्धिरूपी चोरकन्या आत्माराजा को मुक्त होने का मार्ग बतलाती है और आत्माराजा उस मार्ग पर चलकर मुक्त हो जाता है। जब आत्मा-राजा संसार के पदार्थों का ममत्व तजकर भाग

जाता है तो काम, क्रोध, मान, लोभ रूपी चोर वासनावृत्ती की तलवार हाथ में ले आत्मा के पीछे दौड़ता है। वासनावृत्ती रूपी तलवार बहुत तीखी है। यह तलवार जिस पर पड़ती है उसका जीवन नष्ट हो जाता है।

आत्मा-राजा सावधान होने के कारण वासनावृत्ति रूपी तलवार के प्रहार से कुशलतापूर्वक बच गया और राजमहल में आकर चोर को पकड़ने का उपाय सोचने लगा। गहरा विचार करने के बाद राजा, चोर को भर बाजार में से पकड़ लाता है। चोर के पास से रत्न निकलवाने के लिए वह युक्ति से काम लेता है। वह सब से पहले बुद्धिरूपी चोरकन्या के साथ लग्न-सम्बन्ध जोड़ता है और चोर को प्रधान बनाता है। तत्पश्चात् विविध उपायों द्वारा चोर के कब्जे में जो रत्न निकलवाने के लिए ही उसे प्रधान बनाता है। चोर को प्रधान बनाने से, प्रजा राजा की निन्दा करने लगी थी, उसी प्रकार कुछ लोग यह कह कर साधुओं की निन्दा करते हैं कि साधु हो जाने पर भी इन्हें खाने और कपड़ा पहनने की क्या आवश्यकता है? परन्तु साधुआत्मा लोगों की निन्दा की परवाह न करके शरीर-चोर के कब्जे में से ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्न लेने के लिए शरीर-चोर को आदर देते हैं। जब आत्मा को बुद्धि द्वारा मालूम होता है कि अब शरीर चोर के पास एक भी रत्न शेष नहीं रहा तब साधु-आत्मा शरीर रूपी चोर को संथारारूपी शूली पर चढ़ा देता है और आप स्वावलम्बी बन जाता है। स्वावलम्बी आत्मा रूपी राजा ही प्रजा को स्वावलम्बी बना सकता है। जब तक नायक स्वयं स्वावलम्बी नहीं बन जाता तब तक वह जनसमाज को कैसे स्वावलम्बी बना सकता है?

इस कथा का सार यह है कि महावीर भगवान् ने भक्त (भोजन) के त्याग के विषय में जो कुछ कहा है, वह निर्दयता से नहीं वरन् आत्मा के कल्याण के लिए कहा है। पर संथारा

और कराने में विवेक की खास आवश्यकता है। अगर संथारा करने-कराने में विवेक से काम न लिया जाय तो जैनधर्म का उद्योत नहीं होता। जब संसार के पदार्थों पर ममता नहीं रहती और सांसारिक पदार्थों की जरा भी सहायता नहीं ली जाती, तभी भोजन का त्याग करके संथारा लिया जा सकता है। आत्मा की पूर्व तैयारी के बिना संथारा लिया जाय तो मृत्यु पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। यही नहीं, वरन् आत्मा का घात होता है। संथारा तो मृत्यु को जीतने का एक श्रेष्ठ साधन है। मृत्यु को आह्वान करना साधारण आत्मा का काम नहीं। जो आत्मा ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र का बल पाकर बलिष्ठ और निर्भय बनचुका है, वही बलवान आत्मा भोजन का त्याग करके मृत्यु का आह्वान कर सकता है। वही मृत्यु को जीत सकता है। शरीर का प्रत्याख्यान करने के साथ ही भोजन का प्रत्याख्यान किया जा सकता है।

२१ : वक्रता

जिसके भाव में सरलता होगी उसकी भाषा में भी सरलता होगी और काया में भी सरलता होगी। इसके विपरित जिसके कार्यों में और जिसकी भाषा में वक्रता होगी, उसके भावों में सरलता नहीं हो सकती। जो वृक्ष ऊपर से हराभरा दिखाई देता है, उसकी जड़ भी मजबूत और हरीभरी है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु जो वृक्ष ऊपर से सूखा हुआ नजर आता है, उसकी जड़ हरी है, यह कैसे कहा जा सकता है? इसी प्रकार जब काया और भाषा

में वक्रता होती है, तब कैसे कहा जा सकता है कि भाव में सरलता है? जब काय में वक्रता होती है तो भाव में भी वक्रता होती है, यह बात एक ऐतिहासिक उदाहरण देकर समझाता हूँ—

बादशाह अकबर का प्रधान हिन्दू था। यह हिन्दू प्रधान मुसलमानों को शल्य की भांति चुभता था। उनकी मान्यता थी कि मुसलमान राज्य में हिन्दू प्रधान कदापि नहीं होना चाहिये। अतएव वे हिन्दू प्रधान के बदले किसी मुसलमान को प्रधान बनाने का प्रयत्न करते थे। जब उनका कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो उन्होंने बेगम को भरमा कर अपनी मनोकामना पूरी करनी चाही। कुछ मुसलमान बेगम के पास पहुंचे और बोले—'आपका भाई शेखहुसेन हर तरह से काबिल है, फिर भी उसे दीवान न बनाकर एक हिन्दू काफिर को सल्तनत का दीवान बनाया गया है! क्या यह ठीक कहा जा सकता है?

बेगम मुसलमानों के भ्रम-जाल में फंस गई।' जब बादशाह महल में गए तो बेगम ने तिरिया-चरित्त द्वारा उन्हें वचन में बांध लिया। बादशाह ने बेगम से कहा—'तुम चाहती क्या हो? जो चाहती हो, बताओ! मैं वही देने को तैयार हूं।' बेगम बोली— तुम मेरे भाई की कई बार तारीफ किया करते हो। अगर दरअसल वह होशियार है तो उसे दीवान न बनाकर एक हिन्दू काफिर को क्यों दीवान बनाया है? बादशाह बेगम का अर्थ समझ गया। उसने मन-ही-मन विचार किया—बेगम को इस बात का यकीन करा देना चाहिये कि दरअसल उसका भाई कितना काबिल है! इस प्रकार विचार कर बादशाह ने कहा—तुम्हारा कहना सही है। मुझ से भूल हुई कि अपने ही घर में शेखहुसेन जैसे काबिल शख्स के होते हुए भी मैंने एक हिन्दू को सल्तनत का वजीर बना दिया! मैं कल शेखहुसेन को बड़ा वजीर बना देने का इन्तजाम करूंगा।

जब बादशाह राजमहल में से चले गये तो वे धूर्त मुसलमान

फिर बेगम के पास आये । पूछने लगे—'क्या हुआ ?' बेगम ने उत्तर दिया—'सब काम हो गया है । कल मेरा भाई शेखहुसेन प्रधान बना दिया जायगा ।' यह सुनकर वे मुसलमान प्रसन्न हुए और कहने लगे—चलो, हिन्दू प्रधान का एक कांटा तो दूर हुआ !

दूसरे दिन बादशाह ने प्रधान से कहा—'तुमने बहुत दिनों तक प्रधान-प्रद भोगा । अब थोड़े दिनों के लिए शेखहुसेन को यह पद दे दो ।

हिन्दू वजीर ने कहा—'जैसी जहांपनाह की मर्जी ।'

बादशाह ने प्रधान-पद शेखहुसेन को सौंपा और हिन्दू प्रधान को पृथक् कर दिया । बादशाह के इस कार्य से मुसलमान बहुत प्रसन्न हुए । मगर उन्हें पता नहीं था कि शेखहुसेन इस कार्य के लिए योग्य है या नहीं ? बादशाह को भली-भांति मालूम था कि शेखहुसेन इस पद को सुशोभित नहीं कर सकता । उन्होंने सोचा—शेखहुसेन को मैंने प्रधान पद सौंप तो दिया है परन्तु वह किसी दिन राज्य को भयंकर हानि पहुंचाएगा । अतएव ऐसा कोई उपाय करना ठीक होगा कि वह स्वयं ही प्रधान-पद छोड़कर भाग जाय । इस प्रकार विचार कर बादशाह ने शेख से कहा—रोम के बादशाह से कुछ काम है । तुम वहां जाओ और काम को इस प्रकार कर आओ जिससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़े । शेखहुसेन ने बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य की और रोम जाने की तैयारी शुरु कर दी ।

शेखहुसेन रोम गया । उसने वहां ऐसा व्यवहार किया कि उसका अपमान हुआ । अपमानित होकर वह वापिस लौटा । वह अपने मन में कहने लगा—मैं इस झंझट में कहां से पड़ गया । पहले मैं मौज में था । प्रधान बन कर मुसीबत गले लगा ली । इस प्रकार सोचता-विचारता वह बादशाह के सामने आया । बादशाह ने पूछा—रोम सकुशल जा आये ? शेखहुसेन ने उत्तर में कहा—आपने खूब झंझट में डाल दिया । वहां मेरा अपमान हुआ और

जिस काम के लिये आपने भेजा था वह भी न हुआ। मुझ से यह वजीरत न होगी। मेहरबानी करके यह पद वापिस ले लीजिये। बादशाह ने जबाव दिया—यह सब बात तुम अपनी बहिन से कहो।

बादशाह चाहते थे कि बेगम इन सब बातों से परिचित हो जाय और फिर कभी ऐसा प्रपंच न करे। इसी कारण बादशाह ने सब बातें बेगम से कहने के लिये कहा। शेखहुसेन अपनी बहिन के पास गया और कहने लगा—'बहिन! प्रधान-पद की यह मुसीबत तुमने क्यों मेरे सिर मढ़ी! पहले मैं मजे से रहता था, अब चिन्ता ही चिन्ता में दिन बीतता है।'

बेगम—तुम प्रधान बनाये गये तो बुरा क्या हुआ? प्रधान का हुक्म तो बादशाह से भी ऊंचा समझा जाता है।

शेख—बहिन! तुम्हारा कहना सही है। प्रधान का पद बड़ा है यह ठीक है मगर उसे टिकाये रखने के लिये मुझमें काबलियत भी तो होनी चाहिये। मुझमें यह काबलियत नहीं है। इस लिए किसी तरह कोशिश करके मुझे इस मुसीबत से बचाओ।

बेगम—फलां मुल्लाजी और फलां मुसलमानों ने तुम्हें वजीर बनाने के लिये मुझ से कहा था, बल्कि जोर दिया था। उन्होंने ही मुझे ऐसा करने के लिए भड़काया था। लिहाजा उन्हें बुलवाकर पूछ लेती हूं।

जिन मुल्लाओं और मुसलमानों ने बेगम को भरमाया था, उन सबको बेगम ने अपने सामने बुलवा कर पूछा—तुम लोग मेरे भाई को वजीर बनाने के लिए कहते थे। उसे वजीर बना भी दिया गया है। लेकिन वह वजीर बने रहने के लिए तैयार नहीं है। अब क्या करना चाहिए?

उन्होंने कहा—हमारी ख्वाहिश तो यही थी कि मुसलमान सल्तनत का वजीर भी मुसलमान ही होना चाहिए। इसी वजह से हमने आपके भाई का नाम पेश किया था। अब अगर वह

वजीर होना या रहना नहीं चाहते तो जाने दीजिये।

आखिर बादशाह ने फिर हिन्दू प्रधान को प्रधान के पद नियुक्त किया। बादशाह ने हिन्दू प्रधान से कहा—शेखहुसेन जो काम बिगाड़ आया है उसे तुम सुधार आओ। बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य करके हिन्दू प्रधान दलबल के साथ रोम गया। रोम के बादशाह को मालूम हुआ कि भारत का प्रधान आया है। रोम के बादशाह ने कहा—भारत के प्रधान का व्यक्तित्व ही क्या है? एक प्रधान तो पहले आया था। अब यह दूसरा आया है। मिलना तो चाहिए ही।

रोम के बादशाह ने भारत के प्रधान की परीक्षा करने के लिए एक युक्ति रची। उसने अपने ग्यारह गुलामों को भी अपनी ही जैसी पोशाक पहना दी। बारहों आदमी एक समान बैठ गये, जिससे पता न लग सके कि वास्तव में बादशाह कौन है? भारतीय प्रधान रोबदार पोशाक पहन कर रोम की राजसभा में गया। राजसभा में पहुंचकर प्रधान ने एक ही नजर में असली बादशाह को पहचान लिया और उसको सलामी दी। बादशाह ने पूछा कि तुम मुझे बादशाह समझते हो तो ये दूसरे लोग कौन है? भारत के प्रधान ने उत्तर में कहा—हमारे यहाँ भारत में होली के अवसर पर ऐसे अनेक बादशाह बनाये जाते हैं। यह लोग भी ऐसे ही बादशाह हैं। बादशाह ने फिर पूछा – यह बात तुमने कैसे जानी कि ये लोग असली बादशाह नहीं हैं और मैं असली बादशाह हूँ। भारत प्रधान ने कहा—जिस समय मैं राजसभा में दाखिल हुआ। उस समय यह मेरी पोशाक की ओर वक्र दृष्टि से देखने लगे। अकेले आप ही गम्भीर होकर बैठे रहे। आपकी गम्भीरता देखकर मैं जान सका कि वास्तव में आप ही बादशाह हैं। यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। प्रधान के साथ उसने हाथ मिलाया और उसकी पीठ ठोक कर योग्यता का प्रमाण-पत्र दिया। रोम

के बादशाह ने भारतीय प्रधान शेखहुसेन के आने का जिक्र करते हुए कहा—तुमसे पहले जो प्रधान आया था, वह तो बिल्कुल अयोग्य था। भारतीय प्रधान ने रोम के बादशाह के मुख से शेखहुसेन की निन्दा सुनकर कहा—जहाँपनाह ! शेखहुसेन को तो आपकी परीक्षा के करने भेजा था। वास्तव में वह अयोग्य नहीं था। इस प्रकार भारतीय प्रधान ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के साथ शेखहुसेन की अप्रतिष्ठा भी दूर की।

प्रधान रोम से लौटकर बादशाह अकबर के समक्ष आया। उसने रोम का सारा वृत्तांत कह सुनाया। बादशाह सारी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मुसलमानों को बुलाकर कहा—'वजीर तो ऐसा होना चाहिये!' बादशाह का कथन सुनकर मुसलमानों ने कहा—'अब हमारी समझ में आया कि आप जो कुछ करते हैं, योग्य ही करते हैं।'

इस कथा से यह सार निकलता है कि जब भाव में सरलता आती है तब काया में भी सरलता आती है और जब भाव में सरलता नहीं होती तो काया में भी सरलता नहीं होती। भाव में वक्रता आने से काया में भी वक्रता आ जाती है। उपर्युक्त उदाहरण में हम देख चुके हैं कि नकली बादशाहों ने भी पोशाक तो असली बादशाह सरीखा ही पहना था, परन्तु उनके भाव वक्र होने के कारण उनकी काया में भी वक्रता आ गई थी। इसके विपरीत बादशाह के भाव में वक्रता न थी अतएव उसकी काया में भी वक्रता न आई। भाव की वक्रता या सरलता का असर काया की वक्रता और सरलता से सहज ही लग जाता है। अतएव भाव में सरलता रखने के साथ काया में और वचन में भी सरलता रखना आवश्यक है। अगर कोई मनुष्य काया में वक्रता रखकर अपने भाव सरल बतलाता है तो उसका कथन मिथ्या है।

३० : कषाय-विजय

कषाय की तीव्रता के कारण ही नरक आदि नीच गतियों में जाना पड़ता है। नरक कहीं बाहर से नहीं आता। वह तो अपने ही परिणामों में है। कितने ही लोग दुःख माथे पर आ जाने के समय हाय-तोबा मचाने लगते हैं। वे यह नहीं सोचते कि दुःख कहाँ से और कैसे आया है? दुःख न बाहर से आते हैं और न आये ही हैं। वे तो अपने ही मलिन परिणामों की उपज हैं। मलिन परिणामों का त्याग करना संसार पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है। साथ ही मलीन परिणामों के अधीन होना संसार के अधीन होने के समान है। अतएव जल्दी-से-जल्दी कषाय का त्याग करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को अपने हृदय में यह बात अंकित कर रखना चाहिए कि—'कषाय की बदौलत ही हमारा स्वाधीन आत्मा पराधीनता में पड़ा है। आत्मा को स्वाधीन बनाने के कषायशत्रु पर विजय प्राप्त करना चाहिये।

जो स्थान और कारण कषाय उत्पन्न करने वाला है वही स्थान और कारण कषाय को जीतने वाला भी है। यह बात स्पष्ट करने के लिये श्री उत्तराध्ययनसूत्र में आया हुआ एक उदाहरण तुम्हें सुनाता हूं।

एक बार एक क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रिय को जान से मार डाला। मृत क्षत्रिय की पत्नी उस समय गर्भवती थी। वह क्षत्रिय-पत्नी विचार करने लगी—मेरे पति में थोड़ी बहुत कायरता थी, तभी तो उनकी अकालमृत्यु हुई। वे वीर होते तो अकाल में मृत्यु न होती। क्षत्रियपत्नी की इस वीर-भावना का प्रभाव उसके गर्भस्थ पुत्र पर पड़ा। आगे चलकर वह पुत्र वीर क्षत्रिय बना।

माता अपने बालक को जैसा चाहे वैसा बना सकती है। माता चाहे तो अपने पुत्र को वीर भी बना सकती है और चाहे तो कायर भी बना सकती है। साधारणतया सिंह का बालक सिंह ही बन सकता है और सूअर का बालक सूअर ही बनता है। उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता परन्तु मनुष्य को इच्छानुसार वीर या कायर बनाया जा सकता है।

क्षत्रियपत्नी ने अपने बालक को वीरोचित शिक्षा देकर वीर क्षत्रिय बनाया। क्षत्रियपुत्र वीर होने के कारण राजा का कृपापात्र बन गया।

एक दिन राजा ने क्षत्रियपुत्र की वीरता की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए क्षत्रियपुत्र को भेजने से एक पंथ दो काज होंगे। एक तो शत्रु वश में आ जायगा, दूसरे क्षत्रियपुत्र की वीरता की परीक्षा भी हो जायगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रियपुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रियपुत्र वीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिए रवाना हुआ। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित ही कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रियपुत्र का पराक्रम देख बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गाँव में क्षत्रियपुत्र की वीरता की प्रशंसा होने लगी। जनता ने भी उसका सन्मान किया। क्षत्रियपुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर जाने के लिए निकला। रास्ते में वह विचार करने लगा—आज मेरी माता मेरी पराक्रमगाथा सुनकर अवश्य प्रसन्न होगी। घर पहुंचते ही वह सीधा माता को प्रणाम करने और उसका आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुंचा तो उसने देखा

माता रुष्ट है और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट और क्रुद्ध देखकर पुत्र विचार करने लगा—मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध बन गया है कि माता रुष्ट और क्रुद्ध हुई है ?

आजकल का पुत्र होता तो माता को मनचाहा सुना देता। परन्तु उस क्षत्रियपुत्र को तो पहले से ही वीरोचित शिक्षा दी गई थी की—

मातृदेवो। पितृदेवो। आचार्यदेवो भव।

अर्थात्—माता देवतुल्य है, पिता देवतुल्य है और आचार्य देवतुल्य है। अतएव माता, पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रियपुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—माँ, मुझ से ऐसा क्या अपराध बन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं ? मेरा अपराध मुझे बताइए, जिससे मैं उसके लिए आपसे क्षमायाचना कर सकूं ?

माता बोली—जिसका पितृहन्ता शत्रु मौजूद है उसने यदि दूसरे शत्रु को जीता भी तो क्या हुआ ?

क्षत्रियपुत्र ने चकित होकर पूछा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला शत्रु अभी तक जीवित है ?

माता—हाँ, वह अभी तक जीवित है ?

क्षत्रियपुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यों नहीं ?

माता—मैं तुम्हारे पराक्रम की जाँच कर रही थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीरपुत्र है। जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य परास्त कर सकेगा। तेरा सामर्थ्य देखे बिना शत्रु के साथ भिड़ जाने की बात मैं कैसे कहती ?

क्षत्रियपुत्र माता का कथन सुन और उत्तेजित हो कहने लगा—माताजी ! मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हूं।

अपने पिता के बैर का बदला लिये बिना मैं हर्गिज नहीं लौटूंगा। इतना कहकर वह चल दिया।

दूसरी ओर क्षत्रियपुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना—जिसे मैंने मार डाला था, उसका वीर क्षत्रियपुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भंजाने के लिए, मेरे साथ लड़ाई करने आ रहा है। यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह वीर बड़ा वीर है और उसके शरण में चला जाना ही हितकर है। इसी में मेरा कल्याण है। इस तरह विचार करके वह क्षत्रिय-पुत्र के सामने गया और उसके अधीन हो गया। क्षत्रियपुत्र उस पितृ-घातक शत्रु को लेकर अपनी माता के पास आया। उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है। इसे पकड़ कर तुम्हारे पास ले आया हूँ। अब जो तुम कहो वही दंड इसको दिया जाय।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दंड मिलना चाहिए?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो अपने पिता के वैर का तुमसे किस प्रकार बदला लिया जाय?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण में आये हुए मनुष्य से लिया जाता है।

क्षत्रियपुत्र की माता सच्ची क्षत्रियाणी थी। उसका हृदय तुच्छ नहीं, विशाल था। माता ने पुत्र से कहा—बेटा, अब इसे शत्रु नहीं, भाई समझ।

जब वह शरण में आ गया है तो शरणागत से बदला लेना सर्वथा अनुचित है। शरण में आया हुआ कितना ही बड़ा अपराधी क्यों न हो, फिर भी भाई के समान ही है। अतएव यह तेरा शत्रु नहीं, भाई के समान ही है। मैं अभी भोजन बनाती हूँ।

तुम दोनों भाई साथ बैठकर आनन्दपूर्वक जीमो। तुम सगे भाइयों की तरह साथ-साथ जीमो और प्रेमपूर्वक रहो। मैं यही देखना चाहती हूं।

माता का कथन सुनकर पुत्र ने कहा—माताजी! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, सो ठीक है, परन्तु मेरे हृदय में जो क्रोधाग्नि जल रही है, उसे मैं किस प्रकार शान्त करूं?

माता ने उत्तर दिया—पुत्र! किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शान्त करने में कोई वीरता नहीं है। क्रोध पर ही क्रोध उतार कर क्रोध शान्त करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है। भगवान महावीर ने तो कहा है—'उवसमेण हणे कोहं' अर्थात् उपशम-शान्ति से क्रोध को जीतना चाहिये। इसी प्रकार बौद्धशास्त्र में कहा है—

न हि वेरेण वेराणि समन्तीध कुदाचन।
अवेरेण वेराणि एस धम्मो सनन्तनो॥

अर्थात्—इस संसार में वैर से वैर कदापि शान्त नहीं होता। अवैर-प्रेम से ही वैर शान्त होता है। प्रेम से वैर शान्त करना ही सनातन धर्म है।

असली खूबी तो शान्ति-क्षमा से क्रोध को शान्त करने में ही है। क्रोध भयंकर शत्रु है। इस शत्रु को क्षमा से जीतना ही सच्ची वीरता है। नमीराज ने भी इन्द्र से कहा था।

जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस सो परमो जयो॥

—उत्तराध्ययन, ९

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रोध को अक्रोध से जीतता है वही सच्चा वीर है। इसी प्रकार जो कषाय पर विजय प्राप्त करता है वही सच्चा वीर है। कषायों पर विजय प्राप्त करने में

ही वीरता है ।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृ-हन्ता शत्रु को गले लगाया। दोनों ने सगे भाइयों की तरह साथ-साथ भोजन किया ।

कहने का आशय यह है कि जो स्थान कषाय उत्पन्न करने का है, वही स्थान कषाय जीतने का भी है । वे वास्तव में वीर पुरुष हैं जो अपने शत्रुओं को भी मित्र बना लेते हैं । सच्ची वीरता तो इसी में है कि क्रोध को अक्रोध-शान्ति-क्षमा से जीता जाय और पशुओं को भी मित्र बना लिया जाय। शत्रुता जब मित्रता के रूप में परिणत हो जाती होगी तब कैसा अनिर्वचनीय आनन्द आता होगा ।

यह तो शास्त्र की बात हुई। इतिहास में भी ऐसे उल्लेख देखने-जानने को मिलते हैं। उदयपुर के पृथ्वीराज जी और उनके काका सूरजमल्ल जी दिन भर एक दूसरे के साथ युद्ध करते थे और शाम के समय दोनों एक साथ बैठकर भोजन करते थे और फिर युद्ध में लगे हुए एक दूसरे के घावों पर पट्टी बांधते थे । परन्तु आजकल तो लोगों के मन इतने अधिक संकुचित तथा मलीन हो गये हैं कि साधारण-सी बात में भी क्लेश करने लगते हैं ।

कषाय को जीतने का सरल मार्ग यह है कि वैरी को भी अपना हितैषी समझ लिया जाय । शत्रु भी मित्र की भाँति हमारा उपकार करता है, ऐसा समझकर उसके प्रति सद्भाव प्रकट करने चाहिए । पैर में चुभे हुए कांटे को निकालने के लिये सुई चुभोनी पड़ती है या डाक्टर आपरेशन करता है तो क्या उन पर नाराजगी प्रकट करना चाहिये ? नहीं। लोग यही मानते हैं कि डाक्टर हमारा हित करता है। जिस प्रकार डाक्टर पीड़ा पहुंचाने पर भी हितैषी माना जाता है उसी प्रकार तुम्हारा वैरी भी तुम्हारा हित करता है । ऐसा मानो और उसके प्रति वैरभाव न रखो तो तुम

अवश्य ही कषाय को जीत सकोगे। कषाय को जीतने से आत्म-कल्याण होगा।

३१ : ईमानदार श्रावक

एक गरीब श्रावक था। उसने सोचा—मेरी नियत साफ है, फिर भी मुझे कोई उधार नहीं देता। ऐसी दशा में काम चलाने के लिये कोई उपाय करना चाहिये। पड़ोस में रहने वाला सेठ धार्मिक है। जब वह सामायिक में बैठे तो गले में पहना हुआ उनका कण्ठा क्यों न उतार लिया जाय? ऐसा विचार कर वह श्रावक, सामायिक में बैठे हुए सेठजी के पास गया। बोला— सेठ जी! आपने सामायिक की ही है। संसार की समस्त वस्तुओं से सामायिक श्रेष्ठ है। अतएव आप अपनी सामायिक में स्थिर रहें—विचलित न हों। इतना कहकर श्रावक ने सेठ के गले में से कंठा निकाल लिया। सेठ सामायिक में स्थिर बैठे रहे। वह न कुछ भी बोले और न उन्होंने अपना चित्त ही चचल होने दिया।

सामायिक पालकर सेठ घर पहुंचा। मुनीम आदि ने पूछा—आज आपके गले में कंठा क्यों नजर नहीं आता? सेठ ने सोचा—सच कह दूँगा तो लोग गरीब श्रावक को हैरान करेंगे और उसने कह दिया—गड़ गया होगा कहीं। तुम कंठा की इतनी ज्यादा चिन्ता क्यों करते हो? इस विषय में किसी को कुछ भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। जब यह शरीर ही मेरा नहीं तो कंठा मेरा कैसे हो सकता है!

कंठा ले जाने वाले श्रावक की नीयत साफ थी । जब उसका काम निकल गया तो वह श्रावक कंठा वापिस ले आया। सेठ ने कहा—कंठा मेरा नहीं है । जब यह शरीर ही मेरा नहीं तो कण्ठा मेरा कैसे हो सकता है ? उस श्रावक ने कहा—कंठा तुम्हारा नहीं तो मेरा भी नहीं है । मैं इसे अपने पास कैसे रख सकता हूँ ? इतना कहकर श्रावक ने सेठ के सामने कण्ठा रख दिया और वह चलता बना ।

३२ : दोष-स्वीकृति

वैर भूलकर किस प्रकार अपने अपराध की आलोचना करनी चाहिये, यह जानने के लिये एक उदाहरण लीजिये ।

भारत के प्राचीन राजाओं में राजा भोज बहुत प्रसिद्ध है । बहुत कम भारतवासी ऐसे मिलेंगे जो भोज के नाम से अपरिचित हों । राजा भोज के समय में अनेक अच्छी बातें होती थीं । भोज स्वयं अच्छे कामों में भाग लेता था और किसी को दुःख नहीं देता था । भोजराज की मृत्यु होने पर एक विद्वान ने कहा है—

अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते ॥

अर्थात्—आज भोजराज का स्वर्गवास होने पर धारा नगरी निराधारा हो गई, सरस्वती का सहारा न रहा और सब पंडित खण्डित हो गये ।

इस कथन से स्पष्ट है कि राजा भोज अपनी प्रजा का प्रेम

से पालन करता था और विद्या का बड़ा ही अनुरागी था। वह विद्वानों का खूब आदर-सत्कार करता था। भोज स्वयं विद्वान था अतः विद्या और विद्वानों की कद्र करना उसके लिये स्वाभाविक बात थी। राजा भोज दयालु और गुणवान् था।

भोज के राज्य में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण निर्धन होने पर भी स्वमान का धनी था। जो कुछ मिलता उसी से वह अपना निर्वाह कर लेता था। संचय के उद्देश्य से वह कभी किसी से कुछ न मांगता और न अपना अपमान कराता। वह भिक्षा पर अपना निर्वाह कर लेता था। 'ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा।' उसके घर में तीन प्राणी थे—वह, उसकी माता और पत्नी। पर्याप्त भिक्षा न मिलने पर कभी उन्हें भूखा रहना पड़ता था।

एक दिन की बात है कि ब्राह्मण बहुत घूमा परन्तु उसे भिक्षा न मिली। घूमते-घूमते वह थक गया और भूख उसे सता रही थी। अन्त में उसने विचार किया—संभव है स्त्री ने कुछ बचा रखा हो तो इस समय तो वह खिलाएगी ही। फिर देखा जायगा। इस प्रकार विचार कर घर लौट आया। उसकी माता और पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं और सोच रही थीं वह कुछ लावें तो बनायें, खायें और खिलायें। मगर ब्राह्मण को खाली हाथ आया देखा तो बड़ी निराशा हुई। वह ब्राह्मण से कुछ भी नहीं बोली। उसने अपनी पत्नी से कहा—लाओ, कुछ हो तो खाने को दो।

पत्नी—कुछ लाए हो तो बना दूं। घर में तो कुछ भी नहीं है।

ब्राह्मण—रोज लाता हूँ। आज नहीं मिला तो स्त्री होकर एक दिन का भोजन भी नहीं दे सकती?

ब्राह्मण बहुत भूखा था। उसे क्रोध आ गया। उधर ब्राह्मणी भी लाल हो गई। ब्राह्मणी ने कहा—कभी एक दिन से ज्यादा का भोजन लाए हो तो मुझ से कहो कि संभाल कर क्यों रखा?

लाकर देना नहीं और फिर ऊपर से मांगना तथा तकरार करना यह भी भला कोई बात है। अगर खिलाने की हिम्मत नहीं थी तो विवाह किये बिना ही कौन सा काम अटकता था।

ब्राह्मण तपा हुआ आया था। उसने क्रोध से तमतमाते हुये कहा—शंखिनी ! मेरे घर तेरी जैसी स्त्री आई तो अब खाने को कैसे मिल सकता है ? कोई सुलक्षणा स्त्री आती तो मैं कमा लाता। मगर तू ऐसी अभागिनी मिली है कि मैं भटकते-भटकते हैरान हो गया पर चार दाने अन्न भी न मिल सका। तू अर्द्धाङ्गिनी है। तुझे भी कुछ तो करना चाहिये था। मिहनत मजूरी करके भी कुछ रखना चाहिये था। स्त्री को यह तो सोचना चाहिये था कि कदाचित् कोई अतिथि आ जाय तो कैसी बीतेगी !

ब्राह्मणी और गरम हो गई। वह कहने लगी—बस बहुत हो गया। अब जीभ बंद कर लो। धिक्कार है उन सासू जी को, जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया है। मैं अभागिनी ही सही, तुम्हारी माता तो भाग्यशालिनी हैं। उनके भाग्य से ही कुछ मिला होता। दरअसल अभागिन मैं नहीं तुम्हारी माता हैं, जिन्होंने तुम सरीखा सपूत पैदा किया जिसके पीछे मैं भी कष्ट पा रही हूं।

ब्राह्मण ने कहा—तेरे मां-बाप ने तुझे तो खूब पैदा किया है, जो अपनी सासू के लिये ऐसे शब्द बोलती है ! निर्लज्जा को लज्जा छू भी नहीं गई !

यह कहकर ब्राह्मण अपनी पत्नी को पीटने लगा। ब्राह्मणी चिल्लाई–हाय, बचाओ, दौड़ो कोई ! उसके सिर से खून बहने लगा। स्त्री की पुकार सुनकर वहाँ पुलिस आ गई। पुलिस ने पूछताछ की। ब्राह्मणी कहने लग—देखो मुझे इतना मारा है कि सिर से खून बहने लगा है। लड़ाई का कारण यही है कि घर में कुछ नहीं और खाने को मांगते हैं ! इस राज्य में ऐसे भी आदमी रहते हैं ! घर में दाना नहीं और विवाह करके स्त्री को पकड़ लाते हैं

और उसकी मिट्टी पलीद करते हैं। उन्हीं से पूछ लो, लड़ाई का और कोई कारण हो तो।

ब्राह्मण सोचने लगा—बुरा हुआ। मैंने वृथा ही क्रोध में आकर इसे मारा। इज्जत जाने का मौका आ गया।

पुलिस ने कहा—इसमें स्त्री का कोई दोष नहीं। यह पुरुष का ही दोष है। ब्राह्मण! तुमने स्त्री पर अत्याचार किया है। तुम गिरफ्तार किये जाते हो।

ब्राह्मण गिरफ्तार होकर कोतवाल के पास पहुंचाया गया। ब्राह्मण सोचने लगा—क्रोध में आकर ब्राह्मणी को मार तो दिया, मगर अब कहूंगा क्या? पुलिस के सामने अपनी कष्टकथा कहने से लाभ ही क्या? सिर्फ़ लज्जित होने के और क्या होगा? चाहे जो हो, राजा के सिवाय और किसी को कुछ भी उत्तर न दूंगा।

कोतवाल ने कहा—तुम अपना बयान लिखाओ। तुमने क्या किया है और किस अपराध में गिरफ्तार किये गये हो।

ब्राह्मण बोला—मैं महाराज भोज को छोड़कर और किसी के सामने बयान न दूंगा। कोतवाल ने बहुत डाँट-फटकार बतलाई, मगर ब्राह्मण टस से मस नहीं हुआ। उसने बयान नहीं दिया। कोतवाल ने सोचा ब्राह्मण बड़े जिद्दी होते हैं। इससे जिद्द न करके महाराज के सामने पेश कर देना ही ठीक होगा। उसने ब्राह्मण के कथनानुसार राजा के सामने ही ब्राह्मण को पेश करने का निश्चय किया।

पहले जमाने में आजकल की तरह मुकदमे की तारीखों पर तारीखें नहीं पड़ती थीं। मामला मौखिक सुनकर चटपट फ़ैसला दे दिया जाता था। आजकल का न्याय बड़ा मंहगा और विचित्र है। उस समय का न्याय सस्ता और सीधा था।

दूसरे दिन राजा भोज अपनी राज-सभा में आये। सिंहास

पर आसीन हुए। क्रम से सब अपराधी उनके सामने पेश किये गये। संयोगवश उस दिन पहला नंबर उस ब्राह्मण का ही था। राजा भोज ने ब्राह्मण के विषय में पूछा—यह कौन है? इसने क्या अपराध किया है? सरकारी आदमी ने कहा—यह ब्राह्मण है। इसने अपनी स्त्री को इतनी निर्दयता से पीटा है कि उसके सिर से खून आ गया। अगर स्त्री को दरबार में पेश किया जाता तो न जाने क्या-क्या कहती। परन्तु स्त्री को दरबार में लाने की आज्ञा नहीं है। इसलिये उसे पेश नहीं किया गया। वह कहती थी—यह ब्राह्मण कुछ लाकर तो देता नहीं है और खाने को मांगता है! खाना न मिलने पर इसने स्त्री को बुरी तरह पीटा है।

राजा—ब्राह्मण! क्या यह ठीक है?

ब्राह्मण—महाराज! और सब बात ठीक है, एक बात गलत है। यह मुझे ब्राह्मण बता रहे हैं। पर मैं ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल हूं।

कोतवाल—हुजुर! यह आपके सामने ही झूठ बोलता है। यह ब्राह्मण है और अपने को चाण्डाल प्रकट करता है।

ब्राह्मण—महाराज! यह लोग ऊपर की बातें देखकर मुझे ब्राह्मण कहते हैं। भीतर की बात का इन्हें पता नहीं। मैं असली भीतरी बात कह रहा हूँ।

सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्तीन्द्रियविनिग्रहः।
सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल-लक्षणम्॥
सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म, ब्रह्म इन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया ब्रह्म, ह्येतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥

महाराज! सत्य का अभाव, तप का अभाव, इन्द्रिय-निग्रह का अभाव और भूतदया का अभाव 'चाण्डाल का लक्षण है। जिसमें सत्य हो, तप हो, इन्द्रियनिग्रह हो, प्राणियों की दया हो वह ब्राह्मण कहलाता है।

जो ब्राह्मण होगा वह आपके सामने अभियुक्त बनकर नहीं आयगा। मुझ में चाण्डाल के लक्षण मौजूद हैं, अतएव मैंने अपने आपको चाण्डाल प्रगट किया है।

मित्रो! आप दूसरों पर ही यह लक्षण घटाने का प्रयत्न मत करो। शास्त्र में श्रावक को भी ब्राह्मण कहा है। आप श्रावक होने का दावा करते हैं तो यह यह लक्षण अपने ही ऊपर घटाने का प्रयत्न करना।

ब्राह्मण ने कहा—जिसमें ब्राह्मण के ये लक्षण मौजूद हैं, वह ऊपर से चांडाल होने पर भी वास्तव में ब्राह्मण है। जिसमें चांडाल के ये लक्षण पाये जाते हैं, वह ऊपर से ब्राह्मण होने पर भीतर से चांडाल ही है।

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा दंग रह गया। उसने सोचा—यह ब्राह्मण कितना स्पष्टवक्ता और आत्मबली है! मगर राजा को इस मामले की जड़ देखनी थी। अतः राजा ने कहा—'तुम चाहे ब्राह्मण होओ, चाहे चांडाल होओ। जो अपराध करेगा, उसे दण्ड मिलेगा ही। अब यह बतलाओ कि तुमने अपनी स्त्री को क्यों मारा?'

ब्राह्मण पढ़ा-लिखा था। उसने राजा से कहा—'राजन्! मेरी बात सुन लीजिए और फिर जिसका अपराध हो, उसे दण्ड दीजिए।'

राजा—हाँ, सुनाओ, क्या कहना चाहते हो?

ब्राह्मण—

अम्बा तुष्यति न मया न तया, साऽपि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद राजन्! कस्य दोषोऽयम्॥

महाराज! आप निर्णय कीजिए कि वास्तव में अपराध किसका है? और जिसका अपराध सिद्ध हो, उसे दण्ड दीजिए। हम

भी हो, मगर माता का धर्म उससे प्रेम करना और उसकी रक्षा करना है। कहावत है—'पूत कपूत हो जाता है, मगर माता कुमाता नहीं होती।' मगर मेरी माता, मेरी रक्षा तो दूर रही, मीठे शब्द भी नहीं बोलती। कभी मुझे बेटा कह कर सम्बोधन भी नहीं करती, वरन् स्नेह के बदले गालियाँ देती है। किसी-किसी घर में माँ-बेटा में स्नेह नहीं होता, तो सास-बहू में ही प्रेम होता है, मगर मेरे घर यह भी नहीं है। माँ, मेरी पत्नी को गालियाँ तो देती है, पर कभी मधुर वचन नहीं कहती। यह सुनकर आप सोचेंगे कि यह माता का अपराध है, मगर बात यहीं खत्म नहीं होती। अनेक स्त्रियाँ ऐसी होती हैं कि सास की जली-कटी बातें सह लेती हैं-शान्ति के साथ सुन लेती हैं लेकिन मेरी स्त्री, माता की आधी बात भी नहीं सुन सकती। वह एक के बदले चार सुनाती है। अपनी बातों से उसे शान्त तो करती नहीं, उल्टी जला देती है। कई जगह सास-बहू में प्रेम नहीं होता। मगर पति-पत्नी में प्रेम होता है। लेकिन मेरे घर यह भी नहीं है। मुझमें और मेरी पत्नी में कितना प्रेम है, यह बात तो इसी मामले से जानी जा सकती है। अनेक माताएं कैकेयी के समान होती हैं, मगर उनके पुत्र रामचन्द्र सरीखे होते हैं। मगर मैं ऐसा अभागा हूँ कि अपनी माता को जननी तक नहीं कहता। सदा अवज्ञा ही करता रहता हूँ। अपशब्दों की कभी-कभी बौछार कर देता हूँ। राजन! आप ही निर्णय कीजिए, यह सब किसका अपराध है? जिसका अपराध हो, उसे दण्ड दीजिए।

राजा भोज बड़ा बुद्धिमान् था। उसने कहा—'मैं सब समझ गया।' और राजा ने भंडारी को आज्ञा दी—'इस ब्राह्मण को एक हजार मुहरें दे दो।' राजा की आज्ञा सुनकर भंडारी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सोचने लगा—बात क्या हुई? ब्राह्मण ने अपराध किया है—अपनी स्त्री का खून बहाया है और महाराज

उसे यह इनाम दे रहे हैं। अपराध की सजा एक हजार मुहर इनाम !

भंडारी की मुखमुद्रा पर विस्मय का जो भाव उदित हुआ, उसे पहचान कर राजा ने कहा—तुम्हें क्या शंका है ? क्यों आश्चर्य हो रहा है ? स्पष्ट कहो न !

भंडारी बोला—स्त्री को पीटने के बदले इस ब्राह्मण को एक हजार मुहर मिलने की बात नगर में फैल जायगी तो बेचारी स्त्रियों पर घोर संकट आ पड़ेगा और राज्य का खजाना खाली होने का अवसर उपस्थित हो जायगा। सभी लोग अपनी-अपनी स्त्री को पीट कर इनाम लेने के लिए आ खड़े होंगे।

राजा ने कहा—भंडारी, बात तुम्हारी समझ में नहीं आई। जो आदमी खाता-पीता सुखी है, वह अपनी स्त्री को मारेगा, तो उसे दण्ड देने में जरा भी रियायत नहीं की जायगी, चाहे वह मेरा पुत्र ही क्यों न हो ! ऐसे अत्याचारी का पक्ष मैं कदापि नहीं लूंगा। मैं स्त्री को मारने के बदले इसे मुहर नहीं दिला रहा हूं, किन्तु इसे दूसरा दुःख है। उस दुःख को दूर करने के लिए ही मुहर दिलाता हूं। दण्ड और कानून, अन्याय और अत्याचार रोकने के लिए हैं, बढ़ाने के लिए नहीं। अगर इस ब्राह्मण को कैद कर लिया जाय तो इसकी इज्जत जायगी, यह निर्लज्ज बन जायगा और अपराध का जो मूल कारण है वह दूर नहीं होगा। अभी मां, बेटा और स्त्री लड़ते-झगड़ते भी एक साथ रहते हैं। इसे कारागार में डाल देने से सब तितर-बितर हो जाएंगे। अभी तक किसी ने किसी को त्यागा नहीं है, मगर कैद की हालत में एक दूसरे को छोड़ कर भाग जायेंगे। इसके अतिरिक्त, इसे सजा देने का अर्थ इसकी वृद्धा माता और गरीब पत्नी को सजा देना होगा। ऐसा करने से अनेक प्रकार की बुराइयां फैल जायेंगी।

भंडारी ! तुम इस ब्राह्मण की बुद्धि पर विचार करो। इसने कहीं बयान नहीं दिया और यहां आया है। यह जानता था

कि कानून के शब्दों को ही सभी कुछ समझ कर उन्हीं से चिपटे रहने वाले लोग मेरा दुःख नहीं मिटा सकते। वे न्याय की आत्मा को नहीं देख सकते। फिर उनके सामने दुखड़ा रोकर क्यों अपनी इज्जत गँवाऊं ? असल में इसके अपराध का कारण दरिद्रता है। मैंने मुहरें देकर उस दरिद्रता को दण्डित किया है। मेरी समझ में राजा का यही धर्म है। राजा को अपराध के मूल कारणों पर विचार करना चाहिए। रोग की ऊपरी औषध करना ही पर्याप्त नहीं है, मगर रोग के कारणों को दूर करना ही महत्वपूर्ण बात है।

आजकल दरिद्रता का दुःख बेहद बढ़ गया है। बी० ए० और एम० ए० पास करने वालों को इस दुःख के मारे फाँसी खाकर मरना पड़ता है। उन्हें नौकरी नहीं मिलती और दूषित शिक्षापद्धति के कारण वह मिहनत-मजूरी करना मरने से भी अधिक कष्टकर समझते हैं ! भारत का राज्य अंगरेजों के आधीन है। वह सात समुद्र पार बैठ कर शासन करते हैं। प्रजा के प्रति उन्हें अनुराग नहीं, आत्मीयता नहीं, सहानुभूति नहीं। प्रजा को कंगाल बनाने वाली नयी-नयी योजनायें और कानून गढ़े जाते हैं और बुरी तरह देश को चूसा जा रहा है ! किसी समय जो देश सब भाँति से समृद्ध था, धन-धान्य से परिपूर्ण था, आज उसकी इतनी गयी-गुजरी हालत हो गई है कि थोड़े से पैसों के लिए माता अपने पुत्र को बेच देने के लिए उद्यत है ! दरिद्रता के इस घोर अभिशाप ने भारतवासियों का जीवन कितना हीन, दीन, जघन्य और कलुषित बना दिया है ! यह देख कर किसे मनस्ताप न होगा ! कहाँ हैं आज राजा भोज सरीखे प्रजावत्सल नृपति, जिन्हें प्रजा के कष्टों का सदा ध्यान रहता था और जो प्रजा की भलाई में ही अपने राज-पद की सार्थकता मानते थे ! प्राचीन काल के भारतीय राजा, प्रजा के संरक्षक थे। सम्पूर्ण राज्य एक बड़ा परिवार था और राजा उसका मुखिया था। इसी कारण भारतीय प्रजा राजा को अपने पिता के तुल्य मानती

थी। राजा और प्रजा में कितना मधुर सम्बन्ध था उस समय! आज यह सब भूतकाल का सपना बन गया है। प्रथम तो आजकल संसार से राजयंत्र ही उठता जा रहा है और प्रजा अपने हाथों में शासनसूत्र ग्रहण करती जा रही है, जहाँ कहीं राजतन्त्र शेष है, वहाँ राजा और प्रजा में भयंकर संघर्ष ही दिखाई देता है। इसका प्रधान कारण यही है कि राजा अपने उत्तरदायित्व से गिर गये। उन्होंने अपने को प्रजा का सेवक न समझ कर ईश्वर द्वारा नियुक्त स्वच्छन्द भोग का पुतला समझा। प्रजा को चूसना और विलास करना ही अपना ध्येय बना लिया। फल यह हुआ कि राजा और प्रजा विरोधी बन गये। जहाँ स्वार्थ-साधन करने की प्रवृत्ति होती है वहाँ संघर्ष अवश्यम्भावी है। यही राजा प्रजा के संघर्ष का कारण है। अर्वाचीन इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि विजय प्रजा-पक्ष के भाग्य में है। आखिर प्रजा की ही विजय होगी। इस सत्य को समझ कर राजा लोग समय रहते सावचेत हो जाएं तो इसमें उन्हीं की भलाई है।

राजा भोज प्रजा-रंजन करने के कारण सच्चा राजा था। प्रजा के दुःख-दर्द को समझना और उसे दूर करना ही उसका मुख्य कर्त्तव्य था। यही उसका राजधर्म था। प्रजा उसे पुत्र के समान प्रिय थी, इसलिए वह पिता के समान प्रजा का आदरणीय था। उसने ब्राह्मण के कष्टों पर सहृदयता से विचार किया और उन्हें मिटा दिया।

भंडारी का भ्रम भंग हो गया। वह मन ही मन भोज की प्रशंसा करने लगा। उसने एक हजार मुहरें लाकर ब्राह्मण के सामने रख दीं।

राजा ने ब्राह्मण से कहा—जिसका अपराध था, उसे दण्ड दिया गया है। लेकिन इस कांड की पुनरावृत्ति हुई तो भारी दण्ड दिया जायगा।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज ! आपके उचित निर्णय की प्रशंसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। अब अपराध हो तो मेरे तन के टुकड़े-टुकड़े करवा दीजिएगा।

मुहरों की थैली लेकर ब्राह्मण अपने घर चला। घर में सास-बहू के बीच कलह मचा हुआ था। सास कहती थी—'तूने उससे ऐसा क्यों कहा ? उसकी बात सुन क्यों नहीं ली ?' बहू कहती थी—'उन्होंने मुझसे ऐसा कहा क्यों ? बस, इन्हीं मूल सूत्रों पर भाष्य और टीकायें रची जा रही थीं।

उसी समय थैली लिए ब्राह्मण आता दिखाई दिया। उसे देख दोनों शान्त हो गईं। थैली देखकर उन्हें कुछ तसल्ली हुई। आज तक इतना नाज भी कभी घर में नहीं आया था। अतएव भीतर की मुहरें न दिखाई देने पर भी उनकी प्रसन्नता का पार नहीं था। ब्राह्मण जब निकट आ गया और थैली में गोल-गोल चीजें मालूम हुईं तो कहना ही क्या था ! उन्होंने सोचा—अगर इतने पैसे हों तब भी बहुत हैं।

दोनों की लड़ाई बन्द हो गई। उनकी विचारधारा बदल गई। सास बोली—'बेटे को वजन लग रहा होगा, मैं थैली ले लूं।' बहू ने कहा—'तुम बूढ़ी हो, तुमसे क्या बनेगा ! लाओ मैं ही लिये लेती हूं।' सास ने उत्तर दिया—'तुझे चोट लगी है न ! तुझ से कैसे बनेगा !' बहू मुस्करा कर बोली—'इस मार में क्या रखा है ! पति की मार और घी की नाल बराबर होती है।'

आखिर दोनों थैली लेने दौड़ीं। सास कहती थी—बहू को चोट लगी है, इसे बोझ मत देना। बहू कहती थी—सास बूढ़ी है, इन्हें तकलीफ मत देना। ब्राह्मण ने कहा—तुम दोनों ही कष्ट मत करो। यह बोज मेरे ही सिर रहने दो। अपने अपराध का भार मुझे ही उठाने दो।

थैली लिये ब्राह्मण घर पहुँचा। थैली खोली तो उसमें पीली-

पीली मुहरें देखकर सास-बहू दोनों चकित रह गईं। प्रसन्नता का पारावार न रहा। भूखे घर में अनाज के इतने दाने आते तो क्या कम थे। फिर यह तो मुहरें ठहरीं।

माँ कहने लगी—बेटा! मेरी जैसी कठोरहृदया माता नहीं और तुझ-सा सपूत बेटा नहीं। मैं सदा सांपिनी ही रही। कभी तुझे शान्ति न पहुंचाई। माता का कर्त्तव्य बेटे पर करुणा रखना है, मगर मैंने कभी सीधी बात भी न की। तू धन्य है बेटा, जो मुझे छोड़ कर कहीं चला न गया, नहीं तो ऐसी कर्कशा माता का पालन करने के लिए कौन रहता है! अब तू मुझे क्षमा कर देना।

बहू ने कहा—यह सब मेरा ही कसूर था! मैं घर में आई तभी से सबको कष्ट में पड़ना पड़ा। मैंने पति और सास की सदैव अवज्ञा ही की थी! मेरी जैसी स्त्री जिस घर में हो, वहाँ पाप न बढ़े तो क्या हो! सीता इतने-इतने कष्ट सहन करके भी पति के साथ रही। पर मुझ दुष्टा ने आप दोनों को कभी प्रिय वचन भी न कहा! इतने पर भी आप दोनों ने मुझे त्यागा नहीं, यह बड़ी कृपा की। अब आप मेरे सब अपराध भूल जाय।

ब्राह्मण बोला—माँ और प्रिये! तुम मुझे क्षमा करना। मेरा कर्त्तव्य तुम्हारा पालन करना था। सपूत बेटा माता की वृद्धावस्था में सेवा करता है और सच्चा पति अपनी पत्नी की सदैव रक्षा करता है। मैंने दोनों में से एक भी कर्त्तव्य नहीं पाला। मैं तुम्हें भरपेट भोजन भी तो न दे सका! जो पुरुष अपनी जननी और पत्नी का पेट भी नहीं भर सकता, वह धिक्कार का पात्र है। मैंने भोजन नहीं दिया, इतना ही नहीं, वरन् भोजन मांगा और उसके लिए झगड़ा भी किया। माता की सेवा करना दरकिनार, उससे कभी मीठे शब्द तक न कहे। मेरे इस व्यवहार के लिए तुम दोनों मुझे क्षमा करना।

इस प्रकार तीनों ने अपनी-अपनी आलोचना की। ब्राह्मण ने कहा—अब भूतकाल की बात भूल जाओ। हम लोग दरिद्रता से

पीड़ित थे, इसीलिये घड़ी भर पहले क्या थे और अब दरिद्रता दूर होते ही क्या हो गये ! गुण गाओ राजा भोज का, जिसने अपना यह दुःख जान लिया और मिटा दिया।

इस प्रकार ब्राह्मण का यह छोटा-सा कुटुम्ब शीघ्र ही सुधर गया। तीनों बड़े प्रेम से रहने लगे। दरिद्रता के साथ ही साथ कलह भी दूर हो गया।

ब्राह्मण अपना दुःख राजा के पास ले गया था। इसी प्रकार परमेश्वर के दरबार में हम भी यह फरियाद लेकर उपस्थित होते हैं। लेकिन जिस प्रकार ब्राह्मण ने निखालिस हृदय से अपना अपराध स्वीकार किया था, उसी प्रकार हम लोगों को भी अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए। अपने अपराध को दबाने की चेष्टा करने से ईश्वर भी कुछ नहीं कर सकेगा। अतएव कृत पापों के लिए पश्चात्ताप करो। परमात्मा के प्रति विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थी बनो। आगे अपराध न करने का दृढ़ संकल्प करो। ऐसा करने से कल्याण होगा।

३३ : पोथी के बैंगन

लोग धर्म-धर्म चिल्लाते हैं, मगर धर्म के मर्म का अनुभव नहीं करते। पण्डित कहलाने वाले और धर्म की बातें प्रसिद्ध करने वाले और श्रोताओं को आकृष्ट करने [illegible] में कथा बाँचने वाले लोग भी उस कथा को—उसके [illegible] को—अपने हृदय के साथ नहीं जोड़ते हैं !

एक कथावाचक भट्टजी [illegible] । एक दिन [illegible]

लड़की भी कथा सुनने चली गई। उस दिन कथा में बैंगन का प्रसंग चल पड़ा। कथावाचक ने कहा—बैंगन खाना बुरा है। उसमें बीज बहुत होते हैं और वह वायु करता है। कथावाचक ने बहुत विस्तार से यह बात कही। लड़की बैठी हुई यह सब सुन रही थी। उसने सोचा—पिताजी को यह बात शायद आज मालूम हुई है। अब तक तो इनका यह हाल रहा कि बैंगन के शाक के बिना रोटी नहीं खाते थे। वह कहा करते थेः—

नीली टोपी श्याम घटा, सब शाकों में शाक भटा।

मगर आज उसकी इतनी निन्दा कर रहे हैं। इससे जानती हूं कि आज ही इन्हें बैंगन की बुराई मालूम हुई है। कहीं ऐसा न हो कि आज घर पर बैंगन का ही शाक बन जाय और पिताजी भर पेट भोजन भी न कर पाएँ।

यह सोच कर लड़की कथा सुनना छोड़ कर घर आई और माता से बोली—'माँ, आज काहे का शाक बनाया है?' माँ ने कहा—'बिटिया, बैंगन तो है ही। साथ में एक और बना लूँगी' माता की बात से लड़की को कुछ तसल्ली हुई। उसने पूछा—'अभी बैंगन बनाये तो नहीं है?' माता के नाहीं करने पर लड़की ने कहा—'तो अब बैंगन मत बनाना। मैं अभी कथा सुनकर आई हूं। पिताजी ने आज बैंगन की खूब निन्दा की हैं, उन्होंने सब कथा सुनने वालों को बैंगन नहीं खाने का उपदेश दिया है। सब ने उन की बात की सराहना की है। अब पिताजी भी बैंगन न खायेंगे। कोई दूसरी तरकारी बना लेना।'

लड़की की बात सुन कर माँ ने बैंगन का शाक नहीं बनाया। कथाभट्ट कथा समाप्त कर घर आये। भोजन करने बैठे। थाली में और तरकारियाँ परोसी गईं मगर, बैंगन नजर नहीं आये। बैंगन न देखकर भट्टजी ने पूछा—'क्यों! आज बैंगन की तरकारी नहीं बनी?'

ब्राह्मणी ने कहा—घर में बैंगन तो थे, मगर जान बूझकर ही आज नहीं बनाये हैं।

भट्ट—ऐसा क्यों ?

ब्राह्मणी ने लड़की को बुलाकर कहा—अब इन्हें बता, तूने बैंगन का शाक क्यों नहीं बनाने दिया ?

लड़की बोली—पिताजी, आज आपने कथा में बैंगन की बहुत निंदा की थी। आपने कहा था कि—बैंगन शारीरिक दृष्टि से भी हानिकारक है, आध्यात्मिक दृष्टि से भी बुरा है और ठाकुरजी को बैंगन का भोग भी नहीं चढ़ता। इसी से मैंने सोचा कि आप इतनी निंदा कर रहे हैं तो आप स्वयं कैसे खायेंगे ?

भट्ट—मूर्ख लड़की ! तुझे इतना ज्ञान कहाँ कि—कथा के बैंगन अलग होते हैं और रसोई-घर के अलग होते हैं। कथा में जो बात आई थी सो कहनी पड़ी। ऐसा न कहें तो आजीविका कैसे चले ? अगर कथा के अनुसार ही चलने लगें तो जीना कठिन हो जायगा।

बाप की बात सुनकर लड़की के दिल का ठीक तरह समाधान तो नहीं हुआ, मगर वह कुछ बोल भी न सकी। उसने मन ही मन सोचा—इससे तो हम जैसी मूर्खा ही भली कि आजीविका के लिए ढोंग तो नहीं करतीं। हाथी के दाँत दिखाने के अलग और खाने के अलग होते हैं।

इस प्रकार कथा में जो भट्टजी पण्डित रहे और कर्म में वह लड़की पण्डित रही। जो केवल कथा में ही पण्डित हैं—कर्म में पण्डित नहीं हैं, वे क्या तो अपना कल्याण करेंगे और क्या दूसरों की भलाई करेंगे ! स्वयं आचरण करने वाला ही अपने वचनों की छाप दूसरों पर डाल सकता है। जो स्वयं आचरण नहीं करता, उसका दूसरे पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता।

भक्त कहते हैं—इस प्रकार की कथा बाँचने वाले मानो [illegible]

लेकर गवाह देने वाले हैं। वे चाहे मान-प्रतिष्ठा के लोभ से या आजीविका के लोभ से गवाही दें, पर है वह रिश्वत लेकर गवाही देने के समान ही। ऐसे लोग सत्य-अर्थ को, परमार्थ को नहीं जानते।

३४ : झूठी साक्षी

दो मित्र व्यापार के निमित्त विदेश गये। दोनों ने धनोपार्जन के लिए यथाशक्य उद्योग किया। पर उनमें से एक को अच्छा लाभ हुआ और दूसरे को लाभ नहीं हुआ। जिसे लाभ नहीं हुआ था, उसने सोचा—उद्योग करते-करते थक गया, फिर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अब देश को लौट जाना ही श्रेयस्कर है। उसने अपना यह विचार अपने मित्र के सामने प्रकट किया। मित्र ने सोचा—मुझे यहाँ काफी आमद हुई है और व्यापार में इतना उलझा हूँ कि देश नहीं जा सकता। लेकिन कुछ रकम अपने मित्र के साथ क्यों न भेज दूँ जिससे स्त्री को सन्तोष हो जाय। लेकिन यह रुपया कहाँ बाँधे फिरेगा? यह सोचकर उसने एक लाल खरीदा और अपने मित्र को देकर कहा—भाई, जाते हो तो जाओ और यह लाल अपनी भाभी को दे देना। कह देना कि यह लाल कीमती है। इसे सम्भाल कर रक्खे। कुछ दिनों बाद व्यापार समेट कर मैं भी आ जाऊँगा। लाल पहुँचने से तुम्हारी भाभी को सन्तोष होगा।

मित्र का दिया लाल लेकर दूसरा मित्र स्वदेश की ओर रवाना हुआ। रास्ते में उसके मन में बेईमानी आ गई। मनुष्य दुर्बलताओं का पुतला है। कब कौन-सी दुर्बलता उसे विवश कर देती है, कहा नहीं जा सकता। उसे विचार आया—लाल कीमती है और मित्र

ने अकेले में ही मुझे दिया है। देते-लेते किसी ने देखा नहीं है—कोई गवाह-साख नहीं है। धन बेईमानी किये बिना आता नहीं, यह मैंने प्रयत्न करके देख लिया है। ईमानदारी स्वयं इतनी बेईमान है कि ईमानदार को भूखों मरना पड़ता है ऐसी मुँहजली ईमानदारी को क्या लेकर चाटूँ ? बेहतर यही है कि हाथ में आये इस लाल को हजम कर लिया जाय। थोड़ासा झूठ बोलना पड़ेगा। कह दूँगा—मैंने लाल देदिया है।

लोग सोचते हैं—पाप केवल जीव-हिंसा करने में ही है। झूठ-कपट में कौन-सा महा-आरम्भ-समारम्भ करना पड़ता है! लाल के लिए ललचाने वाले उस व्यक्ति ने भी यही सोचा होगा। धनोपार्जन करने में अधिक आरम्भ-समारम्भ करना पड़ेगा और थोड़ी-सी जीभ हिलाने में आरम्भ-समारम्भ के बिना ही धन मिल रहा है! फिर ऐसे सस्ते धर्म का पालन क्यों न किया जाय ? कौन पाप में पड़ कर—आरम्भ करके धन कमाने का झंझट करे!

ऐसा ही कुछ सोच कर वह अपने घर पहुंचा। उसने लाल अपने ही पास रख लिया, मित्र की स्त्री को नहीं दिया।

मित्र की पत्नी को लौट आने का समाचार मिला। उसने सोचा– वह तो अपने मित्र का कुशल-समाचार कहने आये नहीं, मगर मुझे जाकर पूछ आने में में क्या हानि है? वह पति के मित्र के घर पहुंची। पूछा—आप अकेले ही क्यों आ गये ? अपने मित्र को साथ नहीं लाए ?

उसने कहा—वह बड़ा लोभी है। उससे कमाई का लोभ छूटता ही नहीं है। खूब धन कमाया है, फिर भी नहीं आया।

स्त्री ने पूछा—खूब कमाया तो भेजा नहीं ?

वह—अजी, वह लोभी क्या भेजेगा। कुछ भी नहीं भेजा उसने।

मनुष्य जब पाप करता है तो उसे छिपाने के लिए कई पाप

करने पड़ते हैं। कहावत है—'जिसका पैर खिसक जाता है, वह लुढकता ही जाता है।'

स्त्री सन्तोष करके बैठ गई। उसने सोचा—कुछ नहीं दिया तो न सही, कुशल-पूर्वक तो हैं और कमाई कर रहे हैं तो आखिर ले कहां जायेंगे? अन्त में तो घर यही है।

कुछ समय व्यतीत होने पर वह भी अपना धन्धा समेट घर लौटा। स्त्री ने कहा—सकुशल तो रहे? आप मुझे तो एकदम ही भूल गये! अपने मित्र के साथ कुछ भी न भेजा?

पति ने कहा—भूल कैसे गया? भूल जाता तो तुम्हारे लिए लाल क्यों भेजता?

पत्नी—कौन-सा लाल?

पति—क्यों, मित्र के साथ भेजा न था? तुम्हें मिला नहीं वह?

पत्नी—नहीं, लाल तो मुझे नहीं दिया। वह तो आपके समाचार कहने के लिए भी नही आये। मैं खुद उनके घर गई। कुशल-समाचार पूछे। उन्होंने यही कहा कि आपने उनके साथ कुछ भी नहीं भेजा।

पत्नी की बात सुनकर वह समझ गया कि मित्र के मन में बेईमानी आ गई। लाल उसी ने हजम कर लिया है। प्रातःकाल होते ही वह उसके घर गया। उसे आया देख पहले मित्र के चेहरे का रंग उड़ गया लेकिन अपने को सम्भाल कर उसने पूछा—अच्छा आप आगये?

'जी हाँ' कह कर बैठ गया। कुशल वृत्तान्त के पश्चात् उसने पूछा—मैंने तुम्हें जो लाल दिया था, वह कहाँ है?

उसने कहा—वह तो आते ही मैंने तुम्हारी पत्नी को दे दिया।

दूसरे ने कहा—वह तो कहती है, मुझे दिया ही नहीं।

प्रथम मित्र—झूठी है। स्त्रियों का क्या भरोसा! न जाने

किसी को दे दिया होगा और मुझे चोर बनाती है !

इस प्रकार कह कर वह गरजने लगा—अपनी स्त्री को तो देखते नहीं और मुझे चोर, बेईमान बनाते हो ! ऐसा जानता तो मैं लाता ही क्यों ? खबरदार, जो मुझसे अब लाल के विषय में कभी कुछ पूछा।

झूठा आदमी चिल्लाता बहुत है। उसका रंग-ढंग देखकर लाल वाले मित्र ने सोचा—यह लाल भी हजम कर गया और ऊपर से मेरी पत्नी को दुराचारिणी प्रकट करना चाहता है और मुझे धमकी दे रहा है।

आखिर वह हाकिम के पास गया और सारा किस्सा सुनाया। हाकिम ने पूछा—तुमने किसके सामने लाल दिया था ? उसने कहा—मैंने केवल विश्वास पर ही दिया था। किसी को गवाह नहीं बनाया। उसकी इस स्पष्टोक्ति से हाकिम को उसके कथन पर विश्वास हो गया। हाकिम ने सान्त्वना देते हुए कहा मैं समझ गया हूं। तुम सच्चे हो। मैं तुम्हारा लाल दिलाने का प्रयत्न करूंगा। कदाचित् लाल न मिला तो तुम्हारी इज्जत अवश्य वापिस आयगी। तुम अपने घर जाओ।

हाकिम ने उस लाल रख लेने वाले को बुलाकर कहा—तुम्हारे विषय में अमुक व्यक्ति ने इस प्रकार की फरियाद की है। अपना भला चाहो तो लाल दे दो।

उसने उत्तर दिया—आप मुझे व्यर्थ ही धमका रहे हैं। मैंने आते ही उसकी स्त्री को लाल सौंप दिया है। लाल दे देने के गवाह भी मेरे पास मौजूद हैं।

हाकिम ने उसके गवाह बुलवाये। चार बनावटी गवाह थे। थोड़े से पैसों के लालच में आकर झूठी साक्षी देने को तैयार हो गये थे। हाकिम के पूछने पर चारों ने गवाही दी कि हमारे सामने लाल दिया गया है। हम ईमान, धर्म और परमेश्वर की

खाकर कहते हैं कि इसने हमारे सामने लाल दिया है। हाकिम ने चारों गवाहों को अलग-अलग करके कहा—लाल कितना बड़ा था, उसके आकार का एक-एक पत्थर उठा लाओ। अब झूठे गवाह चक्कर में पड़े। उन्होंने कभी लाल देखा नहीं था। उसकी बराबरी का पत्थर लाएँ तो कैसे? फिर सोचा—लाल कीमती चीज है तो कुछ तो बड़ा होगा ही। चारों यही सोचकर अलग-अलग आकार के बड़े-बड़े पत्थर उठा लाए, जो एक दूसरे से काफी बड़े-छोटे थे। हाकिम ने चारों पत्थर अपने पास रख लिए। फिर पूछा—इन चारों में से लाल किस पत्थर के बराबर था? यह प्रश्न सुन कर उनकी अकल गुम होने लगी। चारों बुरी तरह चकराये।

आखिरकार हाकिम ने चारों गवाहों के कोड़े लगाने की आज्ञा दी। थोड़े से पैसों के लिए झूठ बोलना आसान था, मगर कोड़े खाना मुश्किल हो गया। चारों ने गिड़गिड़ा कर कहा—हुजूर, कोड़े क्यों लगवाते हैं? हम लोगों ने तो क्या, हमारे बाप ने भी कभी लाल नहीं देखा। हम तो इसके मुलाहिजे और कुछ लोभ-लालच में फंस कर गवाही देने आये हैं।

असत्य कितना बलहीन होता है! सत्य के सामने असत्य के पैर उखड़ते देर नहीं लगती। असत्य में धैर्य नहीं, साहस नहीं, शक्ति नहीं।

झूठे गवाहों की कलई खुल गई। हाकिम ने पूछा—कहो सेठ, इतना बड़ा लाल तुमने उसकी स्त्री को दिया था? सेठ लज्जित था। लोकनिन्दा और राजदण्ड के भय से तथा शर्म से वह धरती में गड़ा जा रहा था। वह बोलता क्या? उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। हाकिम ने कहा—तुमने लाल भी चुराया और झूठे गवाह भी तैयार किये। तुम्हारे ऊपर दुहरे अपराध हैं। अब सच बताओ, लाल कहाँ है? नहीं तो गवाहों के बदले कोड़ों से तुम्हारी पूजा की जायगी।

मार के आगे भूत भागता है, यह लोकोक्ति है। सेठ ने फौरन लाल दे दिया।

लाल के गवाह झूठे थे और वह प्रकट हो गये। मगर धर्म के विषय में झूठी गवाही देने वालों पर कौन प्रतिबन्ध लगाए?

जैसे लाल का आकार भिन्न-भिन्न बताया गया था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्ल भी भिन्न-भिन्न प्रकार की बतलाई जाती है। एक कहता है—ईश्वर ऐसा है तो दूसरा कहता है—ऐसा नहीं वैसा है। इस प्रकार कहने वालों से पूछो—तुम दोनों ईश्वर की जो दो शक्लें बतला रहे हो, उनमें से ईश्वर वास्तव में किस शक्ल का है? तो वे क्या उत्तर देंगे? जैसे उन गवाहों ने लाल नहीं देखा था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्लें बतलाने वालों ने कभी ईश्वर का अनुभव नहीं किया है। झूठे गवाहों ने जो बात बिना समझे-बूझे सीख ली थी और सीखी बात तोते की तरह कहदी थी, इसी प्रकार बहुत लोग भी बिना अनुभव किये ही सीखी-सिखाई बातें तोते की तरह उच्चारण कर देते हैं। उन्हें वास्तविक अनुभव नहीं है।

प्रश्न होता है—ऐसी अवस्था में करना क्या चाहिए? इसका उत्तर यह है कि घबराने की आवश्यकता नहीं। अन्त में तो सत्य और शील ही विजयी होता है।

ईश्वर के विषय में अगर सुदृढ़ विश्वास हो गया तो वह सभी जगह मिलेगा। विश्वास न हुआ तो कहीं न मिलेगा। ईश्वर के शरीर नहीं है, उसका कोई वर्ण नहीं है, वह केवल [illegible] हृदय से किये गये अनुभव से ही जाना जा सकता है।

३५ : अक्षय तृष्णा

माया के पीछे भागने से तृष्णा कभी नहीं मिटती। इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध महात्मा के पास पहुँचा। महात्मा ने कहा—'मनुष्य शरीर सुलभ नहीं है। धर्म का आचरण न किया तो शरीर किस काम का? आगत मनुष्य ने कहा—'महाराज! घर में तो बाल-बच्चे हैं। उनका पालन-पोषण करना पड़ता है। संसार की स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है। सारे दिन दौड़-धूप करने के बाद भर पेट खाना मिल पाता है। कहीं कुछ आजीविका का प्रबन्ध हो जाय—घर का काम चलने लगे तो धर्मध्यान करूं।

महात्मा ने पूछा—'तुझे प्रतिदिन एक रुपया मिल जाय तब तो तू भगवान् का भजन किया करेगा?

आगत मनुष्य ने प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा हो जाय तो कहना ही क्या है? फिर तो मैं ऐसा भजन करूँ कि ईश्वर और मैं एकमेक हो जाऊँ!'

महात्मा ने उसका हाथ ले एक का अंक उस पर लिख दिया। उसे किसी भी प्रकार प्रतिदिन एक रुपया मिल जाता था। एक रुपया रोज में वह खाता-पीता और अपनी सन्तान का पालन-पोषण करता। मगर उससे अब पहले जितना भी भजन नहीं होता था।

एक दिन वह फिर उन्हीं महात्मा से मिला। महात्मा ने उससे कहा—'आजकल तू क्या करता है अब भी भजन नहीं करता?' वह बोला—हां, महाराज, अच्छी याद दिलाई आपने। आपने एक रुपया रोज का प्रबन्ध कर दिया है, मगर आप ही सोच देखें कि एक रुपया रोज में खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, स्त्री के गहने आदि का

खर्च किस प्रकार निभ सकता है ?

महात्मा ने पूछा—फिर चाहता क्या है ?'

उसने कहा—'महाराज और कुछ नहीं, दस रुपया रोज मिल जाय तो खर्च बखूबी चल सकता है।'

महात्मा—'दस रुपया रोज मिलने पर तो भगवान् का भजन किया करेगा ? फिर गड़बड़ तो नहीं करेगा ?

उसने उत्तर दिया—'नहीं महाराज ! फिर काहे की गड़-बड़ ? इतने में तो मजे से काम चल जायगा।'

महात्मा ने उसके हाथ पर एक का जो अङ्क बना दिया था, उसके आगे एक शून्य और बढ़ा दिया। अब उसे प्रतिदिन दस रुपये अर्थात् तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगे। उसने अपना काम खूब बढ़ा लिया। कहीं कोई दुकान, कहीं कोई कारखाना चलने लगा। नतीजा यह हुआ कि उसे तनिक भी फुर्सत न मिलती। स्त्री कहने लगी—घर में अच्छे दिन आये हैं तो मेरी भी कुछ सुध लोगे या नहीं ? स्त्री के ऐसे आग्रह से उसके लिए भी आभूषण बनने लगे। उसके रहन-सहन का पैमाना (Standard) भी ऊंचा हो गया। विवाह-सगाई भी ऊँची हैसियत के अनुसार ही होने लगी।

कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले। बोले—आज कल तुझे दस रुपया रोज मिलते हैं, अब क्या करता है ? अब भी तू भजन नहीं करता !

उसने उत्तर दिया—'दीनदयाल ! खूब स्मरण दिलाया। आपने मुझे दस रुपया रोज पाने की जो शक्ति दी है मैं उसका दुरुपयोग नहीं करता। आप हिसाब देख लीजिए, इतने से तो कुछ होता ही नहीं ! संसार में बैठे हैं। गृहस्थी का भार सिर पर है। इज्जत के माफिक ही सब काम करने पड़ते हैं।'

महात्मा बोले—'मैंने दस रुपये रोज प्रपंच बढ़ाने के लिए

दिये थे या घटाने के लिए ?'

उसने कहा—'करुणानिधान ! गृहस्थी में प्रपंच के सिवाय और क्या चारा है ? प्रपंच न करें तो काम कैसे चले ?'

महात्मा—'फिर तू क्या चाहता है ?'

वह बोला—'आपकी दया। आपकी दया हो जाय और कुछ आमदनी बढ़ जाय तो जीवन सफल हो।'

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बढ़ा कर सौ रुपया रोज कर दिये। अब उसे प्रतिदिन सौ, महीने में तीन हजार और वर्ष भर में छत्तीस हजार रुपये मिलने लगे। इतनी आमदनी होते ही उसका धन्धा और बढ़ गया। मोटर, बग्घी और तांगे दौड़ने लगे। पहले अवकाश मिलने की जो सम्भावना थी वह भी अब जाती रही। वह इतनी उलझनों में फंस गया कि उसे महात्मा को मुंह दिखलाना भी कठिन हो गया।

आज के श्रीमन्त भी आत्मकल्याण में कितना समय व्यतीत करते हैं ? वह समझते हैं मानों हमारी सृष्टि ही अलग है। गरीबों और अमीरों की दो भिन्न-भिन्न सृष्टियां हैं !

३६ : माया

आत्मा में ईश्वर का प्रकाश तो मौजूद है, लेकिन थोड़ी भूल हो रही है। भूल यही कि जिस ओर मुंह करना चाहिए, उस ओर मुंह न करके विपरीत दिशा में कर रक्खा है।

सूर्य पूर्व दिशा में उदित हुआ है। एक व्यक्ति पश्चिम की ओर मुंह करके खड़ा है। उसकी परछाईं पश्चिम में पड़ रही है।

अपनी परछाई देखकर वह व्यक्ति उसे पकड़ने दौड़ता है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है, परछाई भी आगे बढ़ती है। वह खीजकर परछाई पकड़ने दौड़ता है तो परछाई भी उसी तेजी के साथ आगे-आगे दौड़ती जाती है। किसी तरह भी परछाई हाथ नहीं आती।

इस व्यक्ति की परेशानी किसी ज्ञानी ने देखी। उसने दयालुता से प्रेरित होकर कहा—'भाई, तू करता क्या है ? क्यों इस प्रकार भाग रहा है ?'

भागने वाला बोला—'मैं अपनी छाया पकड़ने के लिए दौड़ रहा हूं, मगर वह हाथ नहीं आती। मैं जितना दौड़ता हूँ, छाया भी उतनी ही दौड़ लगा देती है।

ज्ञानी ने कहा—'छाया को पकड़ने का उपाय यह नहीं है। तू पूर्व की ओर मुंह करके आगे बढ़। तेरी छाया भी तेरे पीछे-पीछे हो लेगी। तू अपना मुंह बदल लेगा तो तुझे छाया के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं रहेगी, बल्कि छाया तेरे पीछे भागेगी।'

भागने वाले ने अपना मुंह फेरा और पूर्व की ओर भागने लगा परछाई भी उसके पीछे-पीछे भागने लगी। इस प्रकार पहले वह छाया के पीछे दौड़ कर परेशान हो रहा था, फिर भी छाया हाथ नहीं आती थी, अब छाया ही उसके पीछे दौड़ने लगी।

अगर तुम आत्मा और परमात्मा की ओर दृष्टि न लगा कर माया के पीछे दौड़कर उसे पकड़ना चाहोगे तो माया तुम से दूर रहेगी। माया के दूर रहने का अर्थ यह है कि तृष्णा कभी नहीं मिटेगी। परन्तु आत्मा एवं परमात्मा पर दृष्टि दोगे तो माया तुम्हारे पीछे उसी प्रकार दौड़ेगी, जिस प्रकार सूर्य की ओर दौड़ने से परछाई पीछे-पीछे दौड़ती है।

३७ : पुण्य का प्रताप

एक सेठ थे। गाड़ी, वाड़ी और लाड़ी (पत्नी) ही उन्हें प्यारी लगती थी। मतलब यह कि वह सांसारिक कामों में ही रचा-पचा रहता था। धर्म की ओर उसकी रुचि नहीं थी।

सेठ ने एक बछेरा पाला। बछेरा बहुत खूबसूरत और चपल था। सेठ उसे बहुत प्यार करता था। खूब खिलाने-पिलाने और सार-संभाल करने के कारण वह अच्छा तगड़ा हो गया। धीरे-धीरे वह सवारी करने के योग्य हुआ।

एक दिन सेठ पहले-पहले सवारी करने के लिए उसे गांव से बाहर ले गया। सेठ उस पर सवार हुआ। सवार होते ही सेठ की आशा पर पानी फिर गया। सेठ उसे पूरब की ओर ले जाना चाहता तो वह पश्चिम की तरफ चलता। चलते-चलते अड़ भी जाता। उसने सेठ की इच्छा के अनुकूल काम नहीं किया, बल्कि इच्छा के प्रतिकूल किया, सेठ ने उसे खूब पुचकारा, खूब थपथपाया-प्यार किया, मगर उसने अपनी चाल नहीं छोड़ी।

दोपहर का समय हो गया। सेठ को भूख लग आई। वह थक गया और परेशान हो उठा। गहरी चिन्ता के साथ वह सोचने लगा—इसे मैंने अपने लड़के के समान पाला और समय आने पर धोखा दे गया! इस पर सवारी करके नगर में जाऊँगा और कहीं अड़ जायगा तो लोग खिल्ली उड़ाएंगे। इस तरह सोचता-विचारता वह पास के एक पेड़ की छाया में विश्राम करने के लिए बैठ गया। पास में बछेरा बाँध दिया और मन ही मन हिसाब लगाने लगा कि अब तक इस पर इतना खर्च किया और वह सब वृथा हो गया!

सेठ इस प्रकार पछता ही रहा था कि उसी समय उधर से एक मुनि निकले। मुनि आहार-पानी लेकर जंगल की ओर जा रहे थे। वे भी वृक्ष की छाया में थोड़ी देर विश्राम लेने वहीं जा पहुंचे।

मुनि ने सेठ को देखकर सोचा—यह किसी गहरी चिन्ता में डूबा है। पेड़ भी शीतल छाया देकर दूसरों का दुःख दूर करता है तो मुझे भी इसकी चिन्ता दूर करने का उपाय करना चाहिए। इस तरह सोचकर मुनि ने सेठ से पूछा—'किस बात की चिन्ता में पड़े हो?'

सेठ ने मुनि के इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया। वह बोला नहीं और चिन्ता में ही डूबा रहा।

मुनि ने अपना प्रश्न फिर दोहराया। तब उसने कहा—'आप पूछकर करेंगे क्या? आपके सामने अपना दुखड़ा रोने से लाभ क्या होगा?'

मुनि—'अगर मुझसे कहने से कुछ लाभ न होगा तो इस तरह चिन्ता करने से भी कुछ न होगा।'

मुनि के कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि सेठ उनकी ओर आकर्षित हुआ। उसने कहा—'मेरी भूल हो गई। जानता हूं, आप में बड़ी करामात है। मैं अपना दुःख आपसे नहीं कहूंगा तो किससे कहूंगा? महाराज! यह जो घोड़ा बंधा है, इसने मेरा बहुत माल खाया है। देखिए न, कितना तगड़ा हो रहा है! मगर यह इतना दुष्ट है कि मेरी इच्छा के अनुसार नहीं चलता है। मेरा अनुमान है कि बहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट होने के कारण इसे किसी की नजर लग गई है या किसी ने जादू-टोना कर दिया है। आप मुझ पर दया करें और झाड़-फूंक दें तो बड़ा उपकार होगा।'

सेठ की बात सुन कर मुनि स्वयं सिर पर हाथ रखकर चिन्तित हुए। तब सेठ ने पूछा—'मेरी बात सुनकर इतने उदास

क्यों हो गये ?'

मुनि—'तू घोड़े की चिन्ता कर रहा है और मैं तेरी चिन्त
कर रहा हूँ। जिस तरह घोड़े ने तेरा खाकर नहीं बजाया, उस
प्रकार तू ने मेरा खाकर नहीं बजाया।

सेठ—'अनोखी बात है ! मेरा और आपका क्या लेन-देन
मैंने आपसे कब क्या लिया है, जो नहीं बजाया ?

मुनि—सुनो, हिसाब बतलाता हूं। पहले यह बताओ, तुम
जन्म किसने दिया ?

सेठ—मेरे माँ-बाप ने।

मुनि—तुम कितने भाई थे ?

सेठ—पाँच।

मुनि—बाकी चार कहाँ हैं ?

सेठ—वे छोटी उम्र में ही मर गये।

मुनि—क्या उन चार भाइयों के माँ-बाप नहीं थे ? या उन
माँ-बाप ने मारना चाहा था ? फिर भी तुम जीते रहे और वे म
गये ! इसका कारण क्या है ?

सेठ—वे पुण्य लेकर नहीं आये थे इस कारण मर गये।

मुनि—तुम पढ़े-लिखे हो ?

सेठ—हाँ।

मुनि—तुम्हारे साथ और लोग भी पढ़ते होंगे ?

सेठ—हाँ।

मुनि—तो वे सब तुम्हारे बराबर ही पढ़े हैं ?

सेठ—नहीं, उनमें से कई तो मूर्ख ही रह गये।

मुनि—ऐसा क्यों !

सेठ—वे पुण्य लेकर नहीं आये थे।

मुनि ने इसी तरह स्त्री, धन, दौलत आदि के सम्बन्ध में भी
प्रश्न किये। अन्त में कहा—यह सब वैभव तुम्हें पुण्य से मिला है।

यह बात तुम स्वयं स्वीकार करते हो। मगर यह बताओ कि जिस पुण्य से तुमने मनुष्य शरीर पाया, उम्र लम्बी पाई, विद्या पाई, धन-सम्पदा पाई और कुटुम्ब पाया, वह पुण्य तुमने कहाँ से पाया ? हम साधुओं से ही तो तुमने पुण्य पाया होगा ! फिर आज तुम हमें देखते ही प्रसन्न नहीं होते हो। क्या यह खाकर बिगाड़ना नहीं है ? घोड़े को तुमने मोटा-ताजा बनाया और हमने तुम्हें मोटा-ताजा बनाया है। तुम घोड़े से जैसी आशा रखते थे, हम भी तुमसे वैसी ही आशा रखते थे। हमें भी क्या मालूम था कि तुम पूर्व के बदले पश्चिम की तरफ जाओगे ? आज तुम दुनियादारी के कामों में दौड़ते हो और धर्म के कार्यों में रुकते हो—अड़ते हो। तुम्हारी यह दशा क्या घोड़े के समान नहीं है ?

मुनि की बात सेठ की समझ में आ गई। वह प्रसन्न होकर बोला—आपने ठीक कहा है। मैं घोड़े के लिए रोता था, मगर अपना विचार ही नहीं करता था ! जिस धर्म के प्रताप से मैं सम्पन्न बना हुआ हूँ, उस धर्म को मैंने कब माना ? मैंने किस दुखिया के दुःख दूर किये ? सचमुच, पहले के पुण्य को मैं नरक का सामान बना रहा हूं। इसे पाकर मैंने तनिक भी सुकृत नहीं किया ! न सद्-गुरु की संगति की, न परमात्मा की वाणी सुनी। मैं तो इस घोड़े से भी गया-बीता हूँ !

अपनी असली हालत का विचार कर सेठ की आंखों में पश्चाताप के आंसू आ गये। वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा। बोला—दयामय ! आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगा ! आपने घोड़े के साथ ही मेरी नजर झाड़ दी। यह घोड़ा बुरा नहीं, भला है जो अड़ गया और आप मिल गये। यह अड़ा न होता तो मैं आपके सामने भी न देखता। अब कृपा कर मुझे धर्म का मार्ग बतलाइए।

मुनि ने कहा—बस, 'दया' इन दो अक्षरों में ही धर्म है। तुम्हारे दिल में दया का वास हो गया तो फिर किसी पाप का

की ओर तुम्हारी प्रवृत्ति ही नहीं होगी। इसलिए हृदय में दया को बसा लो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

इतना कहकर मुनि रवाना हो गये। अब की बार सेठ घोड़े पर सवार हुआ तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि घोड़ा बिना अड़े, सीधी और सरपट चाल चल रहा है!

३८ : खरा-खोटा

देहली जैसे किसी शहर में एक प्रतिष्ठित जौहरी रहता था। यद्यपि वह होशियार था, मगर कभी-कभी होशियार भी चूक जाते हैं। मनुष्यमात्र भूल का पात्र है। इस जौहरी से भी एक बार भूल हो गई। उसने एक खोटे हीरे को खरा और कीमती समझ कर खरीद लिया और इस खरीद में उसने अपनी सारी पूँजी लगा दी।

जौहरी को खरीद करने के बाद पता तो चल गया कि हीरा बिलकुल खोटा है, मगर अब करता क्या? बेचने वाला रफू-चक्कर हो चुका था। उसने सोचा—अब इस सम्बन्ध में हल्ला-गुल्ला करना वृथा है। ऐसा करने से आबरू जायगी! मगर मैंने इस हीरे के पीछे घर की सारी पूँजी खरच दी है। अगर मेरी मृत्यु जल्दी हो जाय तो कुटुम्बी-जन क्या खाएंगे? कुछ भी हो, जो संकट माथे पर आ पड़ा है, उसे भुगते बिना कोई उपाय नहीं है। हाँ, मेरे एक मित्र हैं जो आपत्ति के समय अवश्य सहायक होंगे। हीरा भले खोटा निकल गया, मगर मेरा मित्र खोटा नहीं निकल सकता।

ग्रन्थों में सन्मित्र की बड़ी प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि सौभाग्य से ही सन्मित्र की प्राप्ति होती है। सुख के समय

साथ देने वाले तो अनेक मित्र मिल जाते है, किन्तु दुःख के समय साथ देने वाले कोई बिरले ही होते हैं। वह विरले मित्र ही सन्मित्र कहलाते हैं।

जौहरी सोचने लगा—मेरा मित्र सच्चा मित्र है। लेकिन मित्र के प्रति माँगने की नहीं वरन् देने की बुद्धि रखनी चाहिए। अतः जब तक मैं जीवित हूं तब तक तो कोई प्रश्न ही नहीं है। मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरा मित्र मेरे घर की सार-संभाल कर ही लेगा।

जौहरी बीमार तो था ही, थोड़े दिनों बाद उसकी मौत का समय निकट आ पहुंचा। तब उसने विचार किया—'मेरी पत्नी समझती है कि मैं एक बड़े जौहरी की पत्नी हूँ अगर मैं उसे सच्ची परिस्थिति बतला दूंगा तो उसे गहरा आघात लगेगा। अतएव कोई ऐसा मार्ग खोजना चाहिए कि पत्नी को आघात न लगे और पुत्र का अहित न हो।' और उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया।

जौहरी ने अपनी पत्नी को पास बुलाकर कहा—मेरा अन्तिम समय नजदीक आ गया है। देखना, अपने घर की सम्पत्ति का सार हीरा है। इस हीरे को सम्भाल कर रखना। खयाल रखना, हीरा किसी और के हाथ में न चला जाय। अगर कोई आर्थिक कठिनाई आ पड़े तो इस हीरे को लड़के के साथ मेरे मित्र के पास भेज देना। फिर वह जैसा कहें वैसा करना।

जौहरी चल बसा। उसकी पत्नी ने जैसे-तैसे कुछ महिने निकाले। इसके बाद उसके सामने आर्थिक कठिनाई आ खड़ी हुई। उसने सोचा—पुत्र जब तक बड़ा नहीं हुआ है, तभी तक कठिनाई है। जब तक पुत्र काम में नहीं लगता तब तक के लिए हीरा काम आ सकता है। हालां कि हीरा बहुत कीमती है, फिर भी कष्ट के समय काम न आया तो फिर इसका उपयोग ही क्या है? लड़का बड़ा हो जायगा और कमाने लगेगा तो न जाने कितने हीरे फिर हो

जाएंगे !

इस प्रकार विचार कर उसने लड़के को नहलाया-धुलाया, अच्छे कपड़े पहनाए, और फिर कहा—बेटा, इस हीरे को अपने पिता के मित्र के पास ले जा। उन्हें पिता के समान समझ कर, नमस्कार करके विनयपूर्वक कहना—'पिताजी कह गये हैं कि यह हीरा घर की सम्पत्ति है। इसे आप चाहें तो बेच दें या गिरवी रख दें, घर का खर्च चलाने के लिए पैसे की आवश्यकता है, उसकी आप व्यवस्था कर दें'

लड़का हीरा लेकर पिता के मित्र के पास गया। माता का सन्देश उसने अक्षरशः कह सुनाया। हीरा, हाथ पर रख दिया। हाथ में लेते ही उसे पता लग गया कि हीरा खोटा है। परन्तु उसने विचार किया—अगर मैं साफ कह दूंगा कि हीरा खोटा है तो मित्र की पत्नी को असह्य आघात लगेगा। अगर मैं इसे अपने पास रखता हूं कि तो मेरी साख जोखिम में पड़ती है। अतएव हीरे के सम्बन्ध में अभी कोई स्पष्टीकरण न करना ही योग्य है।

जौहरी-मित्र ने लड़के से कहा—तुम्हारे पिता की मृत्यु हो जाना बड़े दुःख की बात है, पर तुझे देखकर मुझे सन्तोष है। मेरे इस घर को तू अपना ही घर समझना। खर्च की तंगी मत भोगना। जितनी जरूरत हो, यहाँ से ले जाना। पर यह हीरा बहुत कीमती है। अभी इसकी पूरी कीमत नहीं उपजेगी। इसलिए इसे वापिस घर लेते जाओ और माता से कह देना—हीरे को सम्भाल कर रखना। मैं इसे सम्भाल नहीं सकूंगा। रुपया यों न ले जाना चाहे तो नाम लिखा कर ले जाओ। हीरा बिके तब लौटा देना। पर मेरी एक बात मान ले। तू मेरी दुकान पर आया कर। इसे अपनी ही दुकान समझ।

लड़का अपनी माँ के पास लौट गया। सब बातें सुनकर वह सन्तुष्ट हुई और सोचने लगी— मेरे पास दो हीरे हैं—एक यह और दूसरा मेरा पुत्र ! फिर किस बात की चिन्ता है ! वह पति के मित्र से रुपया मंगवा कर खर्च चलाने लगी। पुत्र को दुकान पर

भेजना आरम्भ कर दिया ।

लड़का सुसंस्कारी और होशियार था। दुकान पर जाकर वह रत्नों की परीक्षा करने लगा। धीरे-धीरे वह अच्छा पारखी बन गया। एक बार तो उसने ऐसे रत्न की ठीक परख की जिसे जौहरी भी नहीं परख सके थे। सभी जौहरी उस पर प्रसन्न हुए। सब ने कहा— आज इसने हम लोगों की इज्जत रख ली।

पहले के लोग कृतज्ञ होते थे और गुणों का आदर करते थे। जब से ईर्ष्या ने कृतज्ञता को कुतरा है तभी से गुणों की कद्र कम हो गई है।

जौहरी ने लड़के से कहा—'तू अब रत्नों का परीक्षक बन गया है। अब तेरे घर में जो रत्न है उसकी परीक्षा कर देख। मैंने तो अनुमान से ही उसे बहुत कीमती कह दिया था अब तू उसकी अच्छी तरह परीक्षा करके देख।

लड़का घर गया। उसने माँ से कहा—माँ, जरा वह हीरा निकालो। माँ ने पूछा— कोई ग्राहक आया? लड़के ने कहा—नहीं, ग्राहक तो नहीं आया। जरा परीक्षा कर देखूं कि कितनी कीमत है, कैसा है?

माँ प्रसन्न होती हुई बोली—अब तो तू रत्नों का परीक्षक हो गया है न? लड़के ने उत्तर दिया— यह तुम्हारी ही कृपा का फल है माँ। यदि मोहवश होकर तुम दुकान न जाने देती तो मैं परीक्षक कैसे बनता?

माता ने खोटा हीरा पुत्र को पकड़ा दिया। उसने हाथ में लेते ही परख लिया कि यह हीरा खोटा है और जमीन पर पटक दिया। माता ने कहा—क्यों बेटा फेंक क्यों दिया? पुत्र बोला— माँ, यह हीरा नहीं है। तेरे लिए तो मैं हीरा हूं। यह तो काच है। इसके सहारे संकट का इतना समय कट गया, यही बहुत है।

लड़का इतने दिनों तक जिसे हीरा समझता था, उसी

को इतने दिन जौहरी की दुकान पर बैठने से काच समझने लगा। इसके लिए वह जौहरी की प्रशंसा करेगा या निन्दा ? वह जौहरी की प्रशंसा ही करेगा कि इसने मुझे रत्न-परीक्षक बना कर बहुमूल्य सम्पत्ति प्रदान की है। जो खरे-खोटे का ज्ञान कराता है, उसके समान और कोई उपकारी नहीं हो सकता।

लड़के ने परीक्षक बनकर खोटे हीरे को फेंक दिया, इसमें दुःख मानने की कोई बात नहीं है। सत्य असत्य के विषय में हमारी यही मनोवृत्ति होनी चाहिए।

३९ : तत्त्व-ज्ञान और धन

तत्त्व ज्ञान की महिमा क्या है और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इस विषय में उपनिषद् में एक कथा है। उसका सारांश इस प्रकार है—

एक बड़ा राजा था। दान के प्रभाव से उस राजा की कीर्ति चारों ओर फैल गई थी। सर्वत्र अपनी कीर्ति फैली देख कर राजा को अपने दान पर अभिमान होने लगा। वह सोचता— मैं बड़ा दानी हूं। मेरे जैसा दानी दूसरा नहीं हो सकता।

एक रात्रि में राजा महल की छत पर सो रहा था। वहाँ होकर हंस का रूप धारण किये दो गंधर्व निकले। एक ने राजा को देखकर दूसरे से कहा—'यह राजा बहुत धीर-वीर और बड़ा दानी तथा दयालु है। इसके बराबर दानी और दयालु दूसरा नहीं है।'

यह सुनकर दूसरे गन्धर्व ने कहा—यह राजा कैसा ही क्यों

न हो, पर उस तत्त्वज्ञानी का सौवां हिस्सा भी नहीं हो सकता। यह राजा उस तत्त्वज्ञानी की बराबरी किसी भी प्रकार नहीं कर सकता।

पहला गन्धर्व—तुम किस तत्त्वज्ञानी की बात कह रहे हो?

दूसरे ने उस तत्त्वज्ञानी का परिचय दिया।

पहला— वह तो गरीब है। वह गरीब इस राजा की बराबरी कैसे कर सकता है?

दूसरा—जान पड़ता है, तुम संसार के वैभव को ही बड़ा मानते हो। ऐसा न होता तो इस प्रकार न कहते। परन्तु मैं तत्त्वज्ञान के सामने संसार के वैभव को तुच्छ समझता हूं। तत्त्वज्ञान के सामने संसार का वैभव सौ गुना क्या करोड़गुना हीन है। अतएव मेरे सामने उस वैभव की प्रशंसा मत करो। जो लोग संसार के वैभव से युक्त हैं उन्हें मैं बड़ा नहीं मानता। मैं तत्त्वज्ञानी को ही महान् मानता हूं। जैनशास्त्रों में भी यही कहा है—

देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।

अर्थात्—जिनमें धर्म है, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं।

सांसारिक वैभव की दृष्टि से मनुष्य, देव की बराबरी नहीं कर सकता। मनुष्यों की अपेक्षा देवों का वैभव असंख्य गुना अधिक होता है। फिर भी देवों की अपेक्षा मनुष्य महान् हैं। देवों का राजा इन्द्र भी मनुष्यों के पैरों में अपना मस्तक झुकाता है। इसका कारण क्या है? यही कि भोग-विलास की सामग्री देवों के पास अधिक होने पर भी धर्म का पालन और आचरण मनुष्य ही कर सकता है। देव भोग-विलास का सेवन कर सकता है, मगर मनुष्य के समान धर्म का सेवन नहीं कर सकता। अतएव देवों की अपेक्षा मनुष्य की महिमा महान् है।

तो दोनों गंधर्वों में होने वाली बात-चीत राजा ने सुनी। राजा विचार करने लगा—किसी भी उपाय से उस तत्त्वज्ञा

को गिराना चाहिए। सांसारिक वैभव के प्रलोभन में फांस कर उसे तत्त्वज्ञान से पतित करना चाहिए और यह साबित करना चाहिए कि तत्वज्ञान महान् नहीं, वरन् सांसारिक वैभव ही महान् है।

इस प्रकार विचार करके प्रातःकाल होते ही राजा दस हजार गायें और एक मूल्यवान् हार लेकर, रथ में बैठ कर उस तत्वज्ञानी के पास गया। तत्वज्ञानी के पास पहुँचकर राजा ने कहा—'महानुभाव ! मैं आपको दस हजार गायें, यह हार और यह रथ भेंट में देता हूँ। मुझे आप तत्वज्ञान सुनाइए।'

तत्वज्ञानी बोला—हे शूद्र ! तू जिस प्रकार आया है उसी प्रकार यहाँ से लौट जा। तू तत्वज्ञान श्रवण करने का अधिकारी नहीं है।

राजा क्षत्रिय था, फिर भी ज्ञानी ने उसे शूद्र क्यों कहा ? इस प्रश्न का उत्तर शांकर-भाष्य में दिया गया है। कहा है—जिसके हृदय में कुछ और होता है तथा बाहर-वचन में कुछ और होता है तथा जो संसार के वैभव के संताप से व्याकुल रहता है वह भी शूद्र है।

तत्वज्ञानी की फटकार सुनकर राजा चौंक उठा। उसने सोचा—वास्तव में हंस ने ठीक ही कहा था। यह तत्वज्ञानी तो मेरे वैभव को तुच्छ समझता है और मुझे शूद्र कहता है ! इतनी दरिद्रता और फिर भी वैभव के प्रति इतनी उपेक्षा ! इसकी दृष्टि में तो स्वर्ग भी तुच्छ है ! यह नहीं सोचता कि तत्वज्ञानी होते हुए भी मैं इतना निर्धन हूँ ! वास्तव में यह सच्चा तत्वज्ञानी है और तत्वज्ञानी के सामने संसार की विभूति तुच्छ ही होती है।

इस प्रकार विचार कर राजा ने उस ज्ञानी से कहा—आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए। यह गायें और यह हार आदि देकर मैं आपको तत्वज्ञान से पतित करके सिद्ध करना चाहता था कि तत्वज्ञान की अपेक्षा सांसारिक वैभव ही महान् है। मेरा यह अप-

राव क्षमा कीजिए और मुझे तत्वज्ञान सुनाइए।

राजा के इस प्रकार कहने पर तत्वज्ञानी ने कहा—अगर तत्वज्ञान सुनना चाहते हो तो अपने वैभव को त्याग करके मेरे यहाँ बैठो। मैं तुम्हें तत्वज्ञान सुनाऊंगा।

तत्वज्ञान की महिमा जितनी बड़ी है, उसे प्राप्त करने के लिए त्याग भी उतना ही बड़ा करना पड़ता है। तत्वज्ञान संसार की सम्पत्ति या विभूति से नहीं खरीदा जा सकता।

४० : परिग्रह

वैसे तो परिग्रह से सर्वथा मुक्त होना ही श्रेयस्कर है, भगवान् महावीर का उपदेश भी यही है, लेकिन जो लोग परिग्रह का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते, फिर भी भगवान् के उपदेश पर विश्वास रख कर कुछ भी त्याग करते हैं, उनको भी लाभ ही होता है। भगवान् के कथन पर विश्वास रख कर कुछ भी त्याग करने से किस प्रकार लाभ होता है, यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझाई जाती है।

एक राजा और उसके मन्त्री के यहाँ पुत्र न था। राजा सोचा करता था, कि मेरे पश्चात् प्रजा की रक्षा का भार कौन उठावेगा? इसी प्रकार मन्त्री के भी कोई पुत्र नहीं है, अतः मन्त्री के बाद मन्त्रित्व भी कौन करेगा? राजा और मन्त्री, इसी प्रकार के विचारों से पुत्र के लिए चिन्तित रहा करते थे। उन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए प्रयत्न भी किये, परन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुए।

राजा और मन्त्री ने सुना कि नगर के बाहर एक सिद्ध

पुरुष आये हैं, जो बहुत करामाती हैं। वे शायद हमारी अभिलाषा पूर्ण होने का उपाय बता सकें, यह सोचकर राजा और मन्त्री उस सिद्ध के पास गये। उचित अभिवादन और कुशल-प्रश्न के पश्चात् राजा उस सिद्ध से कहने लगा कि महाराज, मेरे पुत्र नहीं है। मुझे इस बात की सदा चिन्ता रहा करती है कि मेरे पश्चात् राजधर्म का पालन कौन करेगा? और मैं प्रजा की रक्षा का भार किस को सौंपूँगा! इसी प्रकार मेरे इस मन्त्री के भी पुत्र नहीं है। कृपा करके आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे हमारी यह चिन्ता दूर हो और हमारे पश्चात् प्रजा की समुचित प्रकारेण रक्षा हो।

राजा की बात सुनकर सिद्ध समझ गया कि इन दोनों को अपने-अपने उत्तराधिकारी की चिन्ता है। उसने राजा से कहा– तुम दोनों योग्य उत्तराधिकारी ही चाहते हो न?

राजा—हाँ।

सिद्ध—यदि पुत्र हुए बिना किसी दूसरे उपाय से योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त हो जावे तो?

राजा—हमें कोई आपत्ति नहीं है।

सिद्ध—इसके लिए, मैं उपाय बताता हूँ। उसके अनुसार कार्य करने से तुम दोनों को योग्य उत्तराधिकारी मिल जावेंगे। यदि तुम दोनों के यहाँ पुत्र हुए भी, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे योग्य ही होंगे। लेकिन मैं जो उपाय बताता हूँ। उसके द्वारा तुम्हें योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त होंगे।

राजा—यह तो प्रसन्नता की बात है।

सिद्ध—तुम लोग अपने नगर में किसी दिन भिखमंगों को खूब टुकड़े बँटवाना! फिर सब भिखमंगों को एकत्रित करना और उनमें से एक एक को निकाल कर उन से कहते जाना कि तुम अपने पास के टुकड़े फेंक दो, तो हम तुमको राज्य देंगे। जो भिखमंगा तुम्हारे इस कथन पर विश्वास न करे, उसको जाने देना। जो

विश्वास तो करे, लेकिन भविष्य के लिए कुछ टुकड़े रहने देकर शेष फेंक दे, और जो पूरी तरह विश्वास करके सब टुकड़े फेंक दे, उन दोनों में से जिसने सब टुकड़े फेंक दिये हों, उसको राजा बना देना और जिसने कुछ रख कर शेष फेंक दिये हों, उसे मन्त्री बना देना। वे दोनों, तुम दोनों के योग्य उत्तराधिकारी होंगे और उनके द्वारा प्रजा की भी पूरी तरह रक्षा होगी।

राजा और मन्त्री को सिद्ध पर विश्वास था। इसलिए उन्होंने सिद्ध का कथन स्वीकार किया। सिद्ध को अभिवादन करके राजा और मन्त्री, नगर को लौट आये। कुछ दिनों बाद राजा ने नगर में यह घोषित करा दिया कि आज अमुक समय से अमुक समय तक भिखमगों को खूब रोटी के टुकड़े बांटे जावें। राजा और मंत्री ने, अपनी ओर से भी भिखमंगों को खाने की बहुत-सी चीजे बटवाईं। फिर सब भिखमङ्गों को एक बाड़े में एकत्रित किया गया। राजा और मंत्री उस बाड़े के द्वार पर बैठ गये, तथा हुक्म दिया कि एक एक भिखारी को बाहर आने दिया जावे। राजा की आज्ञानुसार एक-एक भिखारी बाड़े से बाहर आने लगा। जो भिखारी बाहर आता उससे राजा कहता—तू अपने पास के टुकड़े फेंक दे तो मैं तुझ को मेरा राज्य दूंगा। राजा प्रत्येक भिखारी से ऐसा कहता, लेकिन उन लोगों को कथन पर विश्वास ही न होता। वे सोचते कि बहुत दिनों के बाद तो हमें इतना खाने को मिला है! राजा का क्या भरोसा! यह अभी तो राज्य देने को कहता है, लेकिन यदि इसने राज्य न दिया, तो हम इसका क्या कर लेंगे! पास के टुकड़े फेंक कर और भूखों मरेंगे!

इस प्रकार विचार कर भिखमंगे लोग राजा के कथन के उत्तर में कहते—'हें हुजूर, मेरे भाग्य में राज्य कहाँ? मेरे भाग्य में तो टुकड़ा मांग कर खाना है।' कोई भिखारी इस तरह कहता और कोई दूसरी तरह कहता, लेकिन राजा के कथन पर विश्वा

करके किसी ने भी टुकड़े नहीं फैंके । राजा, इस तरह के भिखारी को जाने देता और दूसरे को बुलाता । होते होते एक भिखारी आया। राजा ने उससे भी टुकड़े फैंक देने के लिए कहा । राजा का कथन सुन कर उस भिखारी ने सोचा—कि यह राजा झूठ बात कह कर मेरे पास के टुकड़े फैंकवाने से इसको क्या लाभ हो सकता है! लेकिन दूसरी ओर मैंने अभी कुछ भी नहीं खाया है । यदि इसने टुकड़े फिकवाने के बाद राज्य न दिया तो मुझे अभी ही भूखों मरना पड़ेगा । इसलिए सब टुकड़े फैंकना ठीक नहीं ।

इस प्रकार सोच कर उस भिखारी ने, कुछ अच्छे-अच्छे टुकड़े रख लिये और बाकी के टुकड़े फैंक दिये । राजा ने उस भिखारी को बैठा लिया ।

अनेक भिखमंगों के बाद एक भिखमंगा फिर ऐसा ही आया राजा ने उससे भी ऐसा ही कहा । उस भिखारी ने सोचा कि यह राजा टुकड़े फैंक देने पर राज्य देने को कहता है, फिर भी यदि टुकड़े फैंकने पर राज्य न देगा, तो जितने टुकड़े फिकवाता है उतने टुकड़े तो देगा ! ओर कदाचित् उतने टुकड़े भी न देगा, तो जाने तो देगा । मैं और टुकड़े माँग लूंगा । इस प्रकार विचार कर, उसने अपने पास के सब टुकड़े फैंक दिये । राजा उस भिखारी को तथा पहले वाले भिखारी को साथ लेकर महल को चल दिया, और शेष सब भिखरियों को भी चला जाने दिया । दोनों भिखारियों को महल में लाकर राजा ने सब टुकड़े फैंक देने वाले भिखारी को अपना उत्तराधिकारी बनाया और थोड़े टुकड़े रख लेने वाले भिखारी को मन्त्री का उत्तराधिकारी बनाया । आगे जाकर दोनों भिखारी, योग्य राजा तथा मन्त्री हुए और प्रजा का पालन करने लगे ।

यह दृष्टान्त है । इस दृष्टान्त के अनुसार, भगवान् महावीर राजा हैं और संसार के जीव सांसारिक-पदार्थ रूपी टुकड़ों के भिखारी

हैं। भगवान् महावीर संसार के जीवों से कहते हैं—जो कोई इन सांसारिक-पदार्थ रूपी टुकड़ों को फैंक देगा, उसे मेरा पद प्राप्त होगा। भगवान् महावीर के इस कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, फिर भी जो लोग भगवान् के कथन पर विश्वास नहीं करते, तथा सांसारिक-पदार्थों को नहीं त्यागते, वे भिखारी के भिखारी ही बने रहते हैं। और जो सांसारिक पदार्थों को सर्वथा त्याग देते हैं—परिग्रह से निवृत्त हो जाते हैं—वे सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग सांसारिक पदार्थ रूपी टुकड़ों को सर्वथा नहीं त्याग सकते, उनको उचित है कि वे भिखारियों में तो न रहें! महा-परिग्रह रूप खराब-खराब टुकड़े फैंक कर, श्रावक-पद रूप भगवान् के पद का मन्त्रित्व प्राप्त करें।

४१ : जाट-जाटिनी

संसार का ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो कभी न छूटे। छोड़ने की इच्छा न रहने पर भी, संसार के पदार्थ तो छूटते ही हैं। लेकिन यदि संसार के पदार्थों को इच्छा-पूर्वक छोड़ा जावेगा, तो दुःख भी न होगा, तथा प्रशंसा भी होगी। और इच्छा-पूर्वक न छोड़ने पर, संसार के पदार्थ छूटेंगे तो अवश्य ही, परन्तु उस दशा में हृदय को अत्यन्त खेद होगा, तथा लोगों में निन्दा भी होगी। इस विषय में एक कहानी है, जो इस स्थान के लिए उपयुक्त होने से वर्णन की जाती है।

एक जाट की स्त्री, अपने पति से प्रायः सदा ही यह कहा करती थी कि मैं चली जाऊंगी। जरा भी कोई बात होती, तो वह

कहने लगती कि—मैं जाती हूं ! जाट ने सोचा, कि यह चंचला मेरे यहाँ से किसी दिन अवश्य ही चली जावेगी, लेकिन यदि यह स्वयं मुझको छोड़ जाएगी, तो मेरे हृदय को दुःख भी होगा और लोगों में मेरी निन्दा भी होगी। लोग यही कहेंगे, कि जाट में कोई दोष होगा, इसी से उसकी स्त्री उसे छोड़ कर चली गई। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मुझे इसके जाने का दुःख भी न हो और लोगों में मेरी निन्दा भी न हो।

एक दिन पति-पत्नी में फिर कुछ खटपट हुई। उस समय भी जाटिनी ने यही कहा, कि मैं तुम्हें छोड़ कर चली जाऊंगी ! जाट ने जाटिनी से कहा—तू बार-बार जाने का भय दिखाया करती है, यह अच्छा नहीं। तेरे को जाना ही है, तो तू खुशी से जा। मैं तेरे को जाने की स्वीकृति देता हूं। तू मेरी रकम-माल मुझे सौंप दे, और फिर भले ही चली जा। जाट का यह कथन सुनकर, जाटिनी प्रसन्न हुई। उसने, अपने शरीर के आभूषणादि उतार कर जाट को दे दिये। जाट ने उससे कहा—अब तू मजे से जा, लेकिन एक काम तो और कर दे ! घर में पानी नहीं है। मैं अभी ही घड़ा लेकर पानी भरने जाऊंगा, तो लोग मेरे लिए भी न मालूम क्या-क्या कहेंगे और तेरे लिए भी कहेंगे, कि घर में पानी तक नहीं रख गई ! इसलिए एक घड़ा पानी ला दे, और फिर जहाँ जाने की तेरी इच्छा हो, वहाँ मजे से चली जा।

जाटिनी ने सोचा—जब यह एक घड़ा पानी ला देने से ही मुझे छुटकारा देता है और मैं इससे सदा के लिए छुटकारा पा जाती हूं, तब इसका कहना मान लेने में क्या हर्ज है ! इस प्रकार सोचकर जाटिनी, घड़ा लेकर पानी भरने गई। जाटिनी के जाने के पश्चात् जाट भी घर से डंडा लेकर निकला और उसी मार्ग पर जा बैठा, जिस मार्ग से जाटिनी पानी लेकर आने वाली थी। जाट ने, दो चार आदमियों को बुलाकर अपने पास बैठा लिया। जैसे ही सिर

पर पानी भरा घड़ा लिये हुए जाटिनी जाट के सामने आई, वैसे ही जाट कटु-शब्द कहता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसने अपने डण्डे से जाटिनी के सिर पर का घड़ा फोड़ कर उससे कहा—कुलटा, मेरे यहाँ से चली जा! तेरे लाए हुए पानी की मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं अपने घर में तुझे नहीं रहने दे सकता इसलिए तेरी इच्छा हो वहाँ जा!

सिर पर का घड़ा फूट जाने से, जाटिनी भीग गई। वह जाट से कहने लगी, कि—दुष्ट, मैं तेरे यहाँ रहना ही कब चाहती हूँ? मैं तो तेरे जेवर आदि फैंक कर जाती ही थी, केवल तेरे कहने से पानी भरने गई थी। इस प्रकार जाटिनी भी चिल्लाई, परन्तु उसके कथन पर किसी ने भी विश्वास नहीं किया। सब लोगों ने यही समझा और यही कहने लगे कि जाट ने जाटिनी को निकाल दिया।

तात्पर्य यह, कि संसार का कोई पदार्थ ऐसा नहीं है, जो आत्मा का साथ दे। सभी पदार्थ एक न एक दिन अवश्य छूटने वाले हैं। लेकिन यदि उन पदार्थों को स्वयं छोड़ देंगे, तो हृदय को दुःख भी न होगा और लोगों में निन्दा भी न होगी। किन्तु जैसे जाटिनी के विषय में लोग कहने लगे, कि जाट ने जाटिनी को त्याग दिया, उसी प्रकार सांसारिक पदार्थ त्यागने वाले के विषय में भी लोग यही कहेंगे, कि अमुक ने सांसारिक पदार्थ—धन सम्पद् आदि को त्याग दिया।

४२ : लज्जा

आजकल की बहुत सी स्त्रियाँ घूँघट पर्दा आदि से ही लज्जा

की रक्षा समझती हैं, किन्तु वास्तव में लज्जा कुछ और ही है। लज्जावती अपने अंग-अंग को इस प्रकार से छिपाती है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। लज्जावती कैसी होती है यह बात एक उदाहरण से समझ लीजिये—

एक लज्जावती बाई पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिताती थी उसने यह निश्चय कर रक्खा था कि मेरे साथ जो भी कोई रहेगी, उसे भी मैं यही शिक्षा दूंगी। उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियाँ सदाचारिणी बन गईं।

उसी मुहल्ले में एक और औरत थी, जिसका स्वभाव इससे एकदम विपरीत था। यह पूर्व को तो वह पश्चिम को जाती थी। वह अपना दल बढ़ाने के लिए स्त्रियों को भरमाया करती। उस पतिव्रता की निन्दा करती, उसकी संगति को बुरा बतलाती और कहती—'अरि, उसकी संगत करोगी तो जोगिन बन जाओगी। खाना-पीना और मौज करना ही तो जीवन का सब से बड़ा लाभ है।

कुछ स्त्रियाँ उस निर्लज्जा और धूर्ता स्त्री की बातें सुनतीं, पर ऐसी थीं बहुत कम ही। सदाचारिणी की बातें सुनने वाली बहुत थीं। यह देखकर उसे बड़ी ईर्ष्या होती और उसने उस सदाचारिणी की जड़ खोद फैंकने का निश्चय कर लिया।

वह सदाचारिणी बाई बड़ी लज्जावती थी, मगर ऐसी नहीं कि घर में ही बन्द रहे और बाहर न निकलें। वह अपने काम करने के लिए बाहर भी जाती थी। जब वह बाहर निकलती तो निर्लज्जा उससे कहती—'मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूं कि तू कैसी है। बड़ी बगुला-भगत बनी फिरती हैं, लेकिन तेरी जैसी दूसरी कहीं शायद ही मिले।'

निर्लज्जा ने दो-चार बार लज्जावती से ऐसा कहा। लज्जावती ने सोचा—क्षमा रखना तो उचित है, पर ऐसा करने से—चुपचाप सुन लेने से तो लोगों को शंका होने लगेगी। एक बार ऐसा

ही प्रसंग उपस्थित होने पर उसने रुक कर कहा— 'तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग है। मेरा-तेरा कोई लेन-देन नहीं, फिर बिना मतलब अपनी जबान क्यों बिगाड़ती है?

लज्जावती का इतना कहना था कि निर्लज्जा भड़क उठी। वह कहने लगी—'तू मीठी-मीठी बातें बनाकर अपने ऐब छिपाती है और जाल रचती है। मगर मैं तेरे सारे ऐब संसार के सामने खोल कर रख दूंगी।'

यह सुनकर लज्जावती को भी कुछ तेजी आ गई। उसने उस कुलटा से कहा—'तुझे मेरे चरित्र को प्रकट करने का अधिकार है, मगर जो यद्वा-तद्वा ऊल-जलूल कहा तो तेरा भला न होगा।'

पतिव्रता की यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर लोगों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। लोगों ने उससे कहा—'बहिन, तुम अपने घर जाओ। यह कैसी है, यह बात सभी जानते हैं।' लोगों की बात सुनकर पतिव्रता अपने घर चली गई। यह देखकर कुलटा ने सोचा—'हाय! वह भली और मैं बुरी कहलाई। अब इसकी पूछ और बढ़ जायगी और मेरी बदनामी बढ़ जायगी। ऐसे जीवन से तो मरना ही भला! मगर इस प्रकार मरने से भी क्या लाभ है? अगर उसे कोई कलंक लगाकर उसके प्राण ले सकूं तो मेरे रास्ते का कांटा दूर हो जाए। मगर कलंक क्या लगाऊं? और कोई कलंक लगाने पर तो उसका साबित करना कठिन हो जायगा। क्यों न मैं अपने लड़के को ही मार डालूं और दोष उसके माथे मढ़ दूं। लोगों को विश्वास हो जायगा और उसका खात्मा हो जायगा।

इस प्रकार का क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लड़के के प्राण ले लिए। लड़के का मृत शरीर उस [illegible] के मकान के पास कुएं में फेंक आई। इसके बाद रोती-पीटती, बिलख-बिलख कर अपने लड़के को खोजने लगी। हाय! मेरा लड़का न जाने कहां गायब हो गया है। दूसरे लोग भी उसके लड़के को [illegible]

लगे। आखिर वह लोगों को उसी कुएं के पास लाई, जिसमें उसने लड़के का शव फैंका था। लोगों ने कुएं को ढूंढ़ा तो उसमें से बच्चे की लाश निकल आई। लाश निकलते ही बुराचारिणी उस सदाचारिणी का का नाम ले-लेकर कहने लगी—'हाय ! उस भगतन की करतूत देखो। उस पापिनी ने मुझसे वैर भंजाने के लिए मेरे लड़के को मार डाला ! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया। हाय ! मेरे लड़के को गला घोंटकर मार डाला।'

आखिर न्यायालय में मुकद्दमा पेश हुआ। दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लड़के को मार डालने का अभियोग लगाया। सदाचारिणी को भी न्यायालय में उपस्थित होना पड़ा। उसने सोचा—बड़ी विचित्र घटना है। मैं उस लड़के के विषय में कुछ नहीं जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है। खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पड़ेगा।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन में कुछ गवाह भी पेश किये। सदाचारिणी से पूछा गया—'क्या तुमने इस लड़के की हत्या की है ?'

सदाचारिणी—नहीं, मैंने लड़के को नहीं मारा, किसने मारा है, यह भी मैं नहीं जानती और न मुझे किसी पर शक ही है।

मामला बादशाह के पास पहुंचाया गया। बादशाह बड़ा बुद्धिमान् और चतुर था। उसने सदाचारिणी को भली-भांति देखा और सोचा—कोई कुछ भी कहे, सबूत कुछ भी हो पर यह निश्चित मालूम होता है कि इसने लडके की हत्या नहीं की।

बादशाह का वजीर भी बड़ा बुद्धिमान् था। उसने कहा—इस मामले में कानून की किताबें मददगार नहीं होंगी यह मेरे सुपुर्द कीजिये। मैं इसकी जांच करूंगा।

बादशाह ने वजीर को मामला सौंप दिया। वजीर दोनों स्त्रियों को साथ लेकर अपने घर गया। वह उस सदाचारिणी को

साथ लेकर एक ओर जाने लगा। सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकान्त में कदापि नहीं जा सकती। आप जो पूछना चाहें, यहीं पूछ सकते हैं। अकेले पुरुष के साथ एकान्त में जाना धर्म नहीं है, फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यों न हो।

वजीर ने धीमे स्वर में कहा—तुम एक बात मेरी मानो तो मैं तुम्हें बरी कर दूंगा।

सदाचारिणी— आपकी बात सुने विना मैं नहीं कह सकती कि मैं उसे मान ही लूंगी। अगर धर्मविरुद्ध बात नहीं हुई तो मान लूंगी, अन्यथा जान देना मंजूर है।

वजीर—मैं तुम्हारा धर्म नहीं जाने दूंगा। तब तो मानोगी।

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यों नहीं कहते ?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लड़के को मारा है। न मारने की बात केवल तुम्ही कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? अपनी बात पर विश्वास करना है तो नंगी होकर मेरे सामने आ जाओ। इससे मैं समझ लूंगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नहीं रक्खा, उसी प्रकार बात कहने में भी पर्दा न रक्खोगी।

सदाचारिणी—जिसे मैं प्राणों से भी अधिक समझती हूँ, उस लज्जा को नहीं छोड़ सकती और आपका यह कर्त्तव्य नहीं है। आप चाहें तो शूली पर चढ़ा सकते हैं—फांसी पर लटकाने का अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा।

इतना कह कर वह वहाँ से चल दी। वजीर ने कहा—'देखो, समझ लो। न मानोगी तो मारी जाओगी सदाचारिणी ने कहा—'आपकी मरजी। यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है। आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है।'

लगे। आखिर वह लोगों को उसी कुएं के पास लाई, जिसमें उसने लड़के का शव फेंका था। लोगों ने कुएं को ढूंढ़ा तो उसमें से बच्चे की लाश निकल आई। लाश निकलते ही दुराचारिणी उस सदाचारिणी का का नाम ले-लेकर कहने लगी—'हाय! उस भगतन की करतूत देखो। उस पापिनी ने मुझसे वैर भंजाने के लिए मेरे लड़के को मार डाला! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया। हाय! मेरे लड़के को गला घोंटकर मार डाला।'

आखिर न्यायालय में मुकद्दमा पेश हुआ। दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लड़के को मार डालने का अभियोग लगाया। सदाचारिणी को भी न्यायालय में उपस्थित होना पड़ा। उसने सोचा—बड़ी विचित्र घटना है। मैं उस लड़के के विषय में कुछ नहीं जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है। खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पड़ेगा।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन में कुछ गवाह भी पेश किये। सदाचारिणी से पूछा गया—'क्या तुमने इस लड़के की हत्या की है?'

सदाचारिणी—नहीं, मैंने लड़के को नहीं मारा, किसने मारा है, यह भी मैं नहीं जानती और न मुझे किसी पर शक ही है।

मामला बादशाह के पास पहुंचाया गया। बादशाह बड़ा बुद्धिमान् और चतुर था। उसने सदाचारिणी को भली-भाँति देखा और सोचा—कोई कुछ भी कहे, सबूत कुछ भी हो पर यह निश्चित मालूम होता है कि इसने लडके की हत्या नहीं की।

बादशाह का वजीर भी बड़ा बुद्धिमान् था। उसने कहा—इस मामले में कानून की किताबें मददगार नहीं होंगी यह मेरे सुपुर्द कीजिये। मैं इसकी जाँच करूंगा।

बादशाह ने वजीर को मामला सोंप दिया। वजीर दोनों स्त्रियों को साथ लेकर अपने घर गया। वह उस सदाचारिणी को

साथ लेकर एक ओर जाने लगा। सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकान्त में कदापि नहीं जा सकती। आप जो पूछना चाहें, यहीं पूछ सकते हैं। अकेले पुरुष के साथ एकान्त में जाना धर्म नहीं है, फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यों न हो।

वजीर ने धीमे स्वर में कहा—तुम एक बात मेरी मानो तो मैं तुम्हें बरी कर दूंगा।

सदाचारिणी— आपकी बात सुने विना मैं नहीं कह सकती कि मैं उसे मान ही लूंगी। अगर धर्मविरुद्ध बात नहीं हुई तो मान लूंगी, अन्यथा जान देना मंजूर है।

वजीर—मैं तुम्हारा धर्म नहीं जाने दूंगा। तब तो मानोगी?

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यों नहीं कहते ?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लड़के को मारा है। न मारने की बात केवल तुम्ही कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? अपनी बात पर विश्वास करना है तो नंगी होकर मेरे सामने आ जाओ। इससे मैं समझ लूंगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नहीं रक्खा, उसी प्रकार बात कहने में भी पर्दा न रक्खोगी।

सदाचारिणी—जिसे मैं प्राणों से भी अधिक समझती हूँ, उस लज्जा को नहीं छोड़ सकती और आपका यह कर्त्तव्य नहीं है। आप चाहें तो शूली पर चढ़ा सकते हैं—फांसी पर लटकाने का अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा।

इतना कह कर वह वहाँ से चल दी। वजीर ने कहा—'देखो, समझ लो। न मानोगी तो मारी जाओगी' सदाचारिणी ने कहा—'आपकी मरजी। यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है। आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है।'

वजीर ने सोच लिया—'यह स्त्री सच्ची और सती है।'

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—'तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी।'

कुलटा—मैं तो जीती हुई हूँ ही। मेरे पास बहुत से सबूत हैं।

वजीर—नहीं, अभी संदेह है। वह बाई हत्यारिणी नहीं है।

कुलटा—आप इसके जाल में तो नहीं फँस गये? वह बड़ी धूर्त्ता है।

वजीर—यह सन्देह करना व्यर्थ है।

कुलटा—फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलाते हैं?

वजीर—अच्छा मेरी बात मानो।

कुलटा—क्या?

वजीर—तुम मेरे सामने कपड़े खोल दो तो मैं समझूँगा कि तुम सच्ची हो।

कुलटा अपने कपड़े खोलने लगी। वजीर ने उसे रोक दिया और जल्लाद को बुला कर कहा—'इसे ले जाकर बेंत लगाओ।'

जल्लाद उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चिल्लाई—ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो। जल्लाद ने पूछा—'तो बता, लड़के को किसने मारा है?' कुलटा ने सच्ची बात स्वीकार कर ली। मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है।

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया। कहा—लड़के की हत्या उसकी माँ ने ही की है।

बादशाह ने कहा—यह बात कौन मान सकता है कि माता अपने पुत्र को मार डाले! लोग अन्याय का सन्देह करेंगे।

वजीर ने कहा—यह कोई अनोखी बात नहीं है। धर्मशास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है। जहां लज्जा है। वहीं दया है

मैंने दोनों की लज्जा की परीक्षा की । पहली बाई ने मरना स्वीकार किया, पर लाज़ तजना स्वीकार न किया । वह धर्मशीला है ! इस दूसरी ने मुझे भी कलंक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई । यह देखकर इसे पिटवाया तो लड़के की हत्या करना स्वीकार कर लिया ।

सारा मामला बदल गया । सच्चरित्रा बाई के सिर मढ़ा हुआ कलंक मिट गया । बादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा—'आज से तुम मेरी बहिन हो ।'

लज्जा के प्रताप से उस बाई की रक्षा हुई । वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न बचते । बादशाह ने कुलटा को फांसी की सजा सुनाई और सदाचारिणी से कहा—'बहिन ! तुम जो चाहो, मुझसे मांग सकती हो ।'

सदाचारिणी बाई ने उठकर कहा—'आपके अनुग्रह के लिए आभारी हूं । मैं आपके आदेशानुसार यही मांगती हूँ कि यह बाई मेरे निमित्त से न मारी जाय । इस पर दया की जाय ।'

बादशाह ने वजीर से कहा—'तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है । जिसमें लज्जा होगी, उसमें दया भी होगी । इस बाई को देखो । अपने साथ बुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है !'

बादशाह ने सदाचारिणी बाई की बात मान कर कुलटा का क्षमा-दान दे दिया । कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका जीवन एकदम बदल गया ।

सारांश यह है कि लज्जा एक बड़ा गुण है । जिसमें लज्जा होगी, वह धर्म का पालन करेगा ।

४३ : खान-पान की शुद्धि और सामायिक

खान-पान और रहन-सहन की छोटी-सी अशुद्धि भी चित्त को किस प्रकार अस्थिर बना देती है, और चतुर श्रावक उस अशुद्धि को किस प्रकार मिटाता है यह बताने के लिये एक कथित घटना इस प्रकार है:—

एक धर्मनिष्ठ श्रावक था। वह नियमित रूप से सामायिक किया करता था और इसके लिए उन सब नियमोपनियमों का भली-भाँति पालन करता था, जिनका पालन करने पर शुद्ध रीति से सामायिक होती है, अथवा सामायिक करने का उद्देश्य पूरा होता है।

एक दिन वह श्रावक, नित्य की तरह सामायिक करने के लिए बैठा। नित्य तो उसका चित्त सामायिक में लगता था परन्तु उस दिन उसके चित्त की चंचलता न मिटी। उसने अपने चित्त को स्थिर करने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन सब व्यर्थ। वह सोचने लगा, कि आज ऐसा कौन-सा कारण हुआ है, जिससे मेरा चित्त सामायिक में नहीं लगता है, किन्तु इधर-उधर भागा ही फिरता है! इस तरह सोच कर, उसने अपने सब कार्यों की आलोचना की, अपने खान-पान की आलोचना की, किन्तु उसे ऐसा कोई कारण न जान पड़ा, जो सामायिक में चित्त को स्थिर न रहने दे! अन्त में उसने विचार किया, कि मैं अपनी पत्नी से तो पूछ देखूँ कि उसने तो कोई ऐसा कार्य नहीं किया है, जिसके कारण मेरा चित्त सामायिक में नहीं लगता है! इस तरह विचार कर, उसने अपनी पत्नी को बुला कर कहा कि आज सामायिक में मेरा चित्त अस्थिर रहा,

स्थिर नहीं हुआ। मैंने अपने कार्य एवं खान-पान की आलोचना की, फिर भी ऐसा कोई कारण न जान पड़ा, जिससे चित्त में अस्थिरता आवे। क्या तुमसे कोई ऐसा कार्य हुआ है, जिसका प्रभाव मेरे खान-पान पर पड़ा हो और मेरा चित्त सामायिक में अस्थिर रहा हो।

श्रावक की पत्नी भी धर्मपरायणा श्राविका थी। पति का कथन सुनकर उसने भी अपने सब कार्यों की आलोचना की। पश्चात् वह अपने पति से कहने लगी कि मुझसे दूसरी तो कोई ऐसी त्रुटि नहीं हुई है, जिसके कारण आपके खान-पान में दूषण आवे और आपका चित्त सामायिक में न लगे, लेकिन एक त्रुटि अवश्य हुई है। हो सकता है कि मेरी उस त्रुटि का ही यह परिणाम हो, कि आपका चित्त सामायिक में न लगा हो। घर में आज आग नहीं रही थी। मैं भोजन बनाने के लिए चूल्हा सुलगाने के वास्ते पड़ोसिन के यहाँ आग लेने गई। जब मैं पड़ौसिन के घर के द्वार पर पहुंची, तब मुझे याद आया कि मैं आग ले जाने के लिए तो कुछ लाई नहीं, फिर आग किसमें ले जाऊँगी! मैं आग लाने के लिए कंडा ले जाना भूल गई थी। पड़ौसिन के द्वार पर कुछ कंडे पड़े हुए थे। मैंने सहज भाव से उन कंडों में से एक कंडा उठा लिया, और पड़ौसिन के यहाँ से उस कंडे पर आग लेकर अपने घर आई। मैंने, आग जलाकर भोजन बनाया। पड़ौसिन की स्वीकृति बिना ही मैं जो कण्डा उठा कर लाई थी, उस कण्डे को भी, मैंने भोजन बनाते समय चूल्हे में जला दिया। पड़ौसिन के घर से मैं बिना पूछे जो कण्डा लाई थी, वह कण्डा चोरी का था। बेहक का था। इस-लिए हो सकता है कि मेरे इस कार्य के कारण ही आपका चित्त सामा-यिक में न लगा हो। क्योंकि उस कण्डे को जलाकर बनाया गया भोजन आपने भी किया था।

पत्नी का कथन सुनकर श्रावक ने कहा कि बस ठीक है!

उस कण्डे के कारण ही आज मेरा चित्त सामायिक में नहीं लगा। क्योंकि वह कण्डा अन्यायोपार्जित था। अन्यायोपार्जित वस्तु या उसके द्वारा बनाया गया भोजन जब पेट में हो, तब चित्त स्थिर कैसे रह सकता है! अब तुम पड़ौसिन को एक के बदले दो कण्डे वापस करो, उससे क्षमा माँगो और इस पाप का प्रायश्चित्त करो। श्राविका ने ऐसा ही किया। यह कथानक या घटना ऐसी ही घटी हो या रूपक मात्र हो, इसका मतलब तो यह है कि जो शुद्ध सामायिक करना चाहता है, उसे अपना खान-पान और रहन-सहन शुद्ध रखना चाहिए। जब सामायिक में मन न लगे तो खान-पान और रहन-सहन की आलोचना करके अशुद्धि मिटानी चाहिए।

४४ : भार

एक सेठ के लड़के का विवाह दूसरे सेठ के यहाँ हुआ था। उसकी स्त्री बहुत ओछे स्वभाव की थी। एक दिन सेठ का लड़का भोजन कर रहा था और उसकी माता तथा पत्नी सामने बैठी थी। सासू ने कहा—बहू, जरा शिला तो उठा लाओ, मसाला पीसना है। बहू तड़क कर बोली—मैं क्या पत्थर उठाने यहाँ आई हूं! मैंने अपने बाप के घर कभी पत्थर नहीं उठाए। सासू गम्भीर और समझदार थी। उसने बहू से सिर्फ इतना कहा—मुझ से भूल हुई कि मैंने तुम्हें यह काम करने को कह दिया। मैं स्वयं उठा लूंगी। यह कहकर उसने स्वयं शिला उठा ली और मसाला पीस लिया।

लड़का यह सब देख-सुन रहा था। पत्नी के इस दुर्व्यवहार से उसके हृदय को बड़ी चोट लगी। वह सोचने लगा—'मेरी माता

के प्रति इसका ऐसा व्यवहार है।' लड़का कुलीन था। उस समय तो वह चुप रह गया पर उसने निश्चय कर लिया कि किसी तरकीब से इसकी अक्ल ठिकाने लानी होगी। ऐसा निश्चय करके वह चला गया।

लड़का सराफी की दुकान करता था। एक दिन उसकी दुकान पर एक हार बिकने आया। उसने वह हार खरीद लिया और सुनार को बुलाकर कहा—इस हार में पान की जगह लोहे की ढाई सेरी सोने में मढ़कर जड़ दो। ऊपर से कुछ जवाहर जड़ दो, जिससे भीतर लोहा होने का किसी को खयाल भी न आवे। सुनार ने ऐसा ही किया। लड़का वह हार घर ले गया। उसने अपनी पत्नी से कहा—आज एक बहुत बढ़िया हार बिकने आया था। मैंने उसे खरीद लिया है। बात इतनी ही है कि वह भारी बहुत है और तुम्हारा शरीर बहुत नाजुक है, वर्ना तुम्हारे लायक था। तुम उसका बोझ नहीं सँभाल सकोगी।

पत्नी के दिल में गुदगुदी पैदा हो गई। बोली—दिखाओ तो सही कितना भारी है वह हार। मैंने अपने पिता के घर बहुत भारी-भारी गहने पहने हैं।

पति ने कहा—हाँ, देख लो। मगर तुम से वह उठेगा नहीं।

पत्नी ने हार देखा तो खुश हो गई। कहने लगी—मैंने अपने पिताजी के घर पर तो इससे भी भारी हार पहने हैं। उनके सामने यह क्या चीज है।

पति बोला—हाँ पहने होंगे। वह बड़ा घर है। अपनी शक्ति देख लो। पहन सको तो पहन लो!

पत्नी—पहन तो मैं लूँगी! इसकी कीमत क्या है?

पति—कीमत की चिन्ता मत करो! वह मैंने चुका दी है।

स्त्री ने हार पहन लिया। हार पहनने की खुशी में वह फूली नहीं समाई। घर का काम दौड़-दौड़ कर करने लगी! हार

बार-बार उसकी छाती से टकराता और छाती की हड्डियाँ चूरचूर होने को हो गई, फिर भी वह हार का लोभ नहीं छोड़ सकी। हार पहन कर उसकी प्रसन्नता बहुत बढ़ गई।

लड़के ने सोचा -- हार के लोभ में यह अन्धी हो गई है! इसे हार का भार मालूम ही नहीं होता! अगर ढ़ाई-सेरी की चोटें खाते-खाते छाती का खून जम गया तो नया बवाल उठ खड़ा होगा! दवाई-दारू की झंझट तो मुझे ही करनी पड़ेगी।

एक रात, जब स्त्री सो रही थी, उसके पति ने किसी औजार से ढाई-सेरी का सोना हटा दिया! ढ़ाई-सेरी आधी नजर आने लगी! सुबह स्त्री ने उठ कर देखा—अरे! हार तो लोहे का है! लोहा पहना कर मुझे बोझों क्यों मारा? वैर भंजाना ही था तो और तरह भंजा लेते!

सेठ के लड़के ने कहा—मैं तुम्हारी सुकुमारता की परीक्षा करना चाहता था। एक दिन माँ ने शिला लाने को कहा था, तब तुम इतनी सुकुमार थी कि तुमसे शिला नहीं उठी। फिर तुम शिला से भी भारी बोझ गले में लटकाये रही और कष्ट का अनुभव नही किया। आज, जब तुमने देखा कि यह सोना नहीं लोहा है, तो फिर तुम्हें बोझ लगने लगा। बोझ क्या लोहे में ही होता है, सोने में नहीं? तुम्हें सीख देने के लिए ही मैंने यह उपाय किया था। तुम मेरी माता को देव-गुरु की तरह ही पूजनीय समझना! मैं माता से द्रोह करके स्त्री का गुलाम होकर रहने वाले कपूतों में नहीं हूं।

अब आप अपने विषय में सोचिए। आप पाप का बड़े से बड़ा बोझा उठा लेते हैं मगर धर्म का थोड़ा-सा भार भी नहीं उठा सकते! सोने का बोझ प्रसन्नतापूर्वक सह सकते हैं पर लोहे का बोझ नहीं सहा जाता! मगर ज्ञानी की दृष्टि में सोने का बोझ और लोहे का बोझ समान है।

४५ : मिश्री का हीरा

एक बार अकबर बादशाह अपने महल में सो रहा था। वर्षा की अधिकता के कारण यमुना नदी में जोर का पूर आया। यमुना की घर्र-घर्र की ध्वनि से बादशाह की नींद टूट गई। बादशाह ने पहरेदार को बुला कर पूछा—यमुना क्यों रो रही है?

पहरेदार—जहाँपनाह, इतनी बुद्धि मुझमें होती तो मैं सिपाही क्यों बना रहता? वजीर न बन जाता?

बादशाह—ठीक है। जाकर वजीर को बुला लाओ।

पहरेदार वजीर को बुलाने गया। वजीर सो रहे थे। सिपाही ने आवाज लगाई। वजीर की नींद खुली। उसने पूछा—क्या मामला है?

सिपाही—जहाँपनाह आपको याद फरमा रहे हैं।

वजीर—क्यों? इस वक्त किसलिए?

सिपाही ने सारा वृत्तान्त उसे बता दिया। रात का समय था। वर्षा हो रही थी। घोर अन्धकार छाया हुआ था। पर वजीर विवश थे, बादशाह की हुक्म-अदूली कैसे की जा सकती थी? अतएव इच्छा न होने पर भी उसे बादशाह के पास जाना पड़ा।

यथोचित शिष्टाचार के पश्चात् वजीर ने अपने को बुलवाने का कारण पूछा। बादशाह ने वजीर को वही प्रश्न पूछा—यमुना नदी क्यों रो रही है?

वजीर ने उत्तर दिता—जहाँपनाह, यमुना हिन्दुस्तान की नदी है। हिन्दुस्तान की नदी होने के कारण वह भी हिन्दुओं की रीति-भाँति का पालन करती है। हिन्दुओं में रिवाज है कि लड़की

जब पीहर से अपने ससुराल जाती है तब रोती जाती है। यमुना भी अपने पीहर से ससुराल जा रही है, इसलिए रोती जा रही है! इसका पीहर वह हिमालय पहाड़ है, जहाँ से इसका उद्‌गम हुआ है और ससुराल समुद्र है।

वजीर की यह व्याख्या बादशाह को पसन्द आई। उसने वजीर को जाने की इजाजत दी।

वजीर घर जाने के लिए रवाना हुआ। रास्ते में किसी घर में एक बूढ़ा जोर-जोर से रो रहा था। वजीर ने उसका रोना सुनकर सोचा—नदी का चढ़ना और बादशाह का मुझे बुलाना इसी बूढ़े के निमित्त हुआ जान पड़ता है। अगर मैंने इसका रोना सुन करके भी इसका दुःख दूर न किया तो मेरी वजारत को और साथ ही आदमियत को धिक्कार है।

जिस घर में बूढ़ा रो रहा था, उस घर का नम्बर नोट करके वजीर अपने घर चला गया। बूढ़े का रोना रात भर वजीर के दिल में कांटे की तरह चुभता रहा। वह सोचता रहा—कब सुबह हो और बूढ़े का दुःख दूर करूँ।

प्रातःकाल होते ही वजीर ने बूढ़े को बुला लाने के लिए आदमी भेजा। वजीर का बुलावा सुनते ही बूढ़ा बुरी तरह घबराया। सोचने लगा—यह और नई मुसीबत कहां से आ पड़ी। परन्तु वह वजीर के आदमी के साथ हो लिया और वजीर के घर जा पहुंचा।

वजीर ने बूढ़े से पूछा—चाचा, रात को रोते क्यों थे? सच बताओ?

बूढ़े ने जवाब दिया—हुजूर, मैं कारीगर हूँ। जवानी में मैं रफू करने का काम करता था और काफी कमा लेता था। पर जो कमाता था, सब खर्च कर देता था बचत नहीं करता था। उस समय बचत की आवश्यकता ही महसूस नही होती थी जवान

लड़का था—सोचा था बुढ़ापे में वह कमाएगा और मैं बैठा-बैठा खाऊँगा। इस प्रकार बेफिक्री में अपना समय गुजार रहा था कि अचानक मेरा जवान बेटा चल बसा मैं पापी बैठा रहा। अब हाथ-पैर थक चुके हैं। काम होता नहीं और गुजर करने को फूटी कौड़ी पास में नहीं है। जिंदगी में कभी भीख नहीं माँगी—भीख माँगने का इरादा करते ही शर्म से गड़ जाता हूं। इसी मुसीबत के मारे रात को रोना आ गया था।

मित्रो! किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति पर आर्थिक संकट आकर पड़ता है तब उस पर क्या बीतती है, इस घटना से यह जाना जा सकता है।

बूढ़े की कैफियत सुनकर वजीर ने कहा—तुम अब भी रफू करना जानते तो हो न।

बूढ़ा—जी हाँ, जानता क्यों नहीं, पर हाथ काँपता है।

हाँ तो वजीर ने उस बूढे को रुपये देते हुए कहा—मैंने तुम्हें अपना चचा बना लिया है। अब चिंता-फिक्र करना नहीं।

बूढ़े ने कहा—जन्म भर मैंने कभी माँगा नहीं है, न किसी का मुफ्त का खाया है। अगर मुझे कुछ काम मिल जाय और फिर यह रुपये मिलें तो ठीक होगा।

वजीर ने कहा—अच्छा, तुम्हें काम भी देंगे। लो, यह मिश्री का टुकड़ा ले जाओ। इसे हीरा बना कर ले आना। दिखने में वह बिलकुल हीरा हो, मगर पानी लगने से गल जाय!

बूढ़े ने 'बहुत ठीक' कहकर विदा ली।

अचानक सहायता मिल जाने से बूढ़े में कुछ उत्साह आ गया था और वह कारीगर तो था ही। थोड़े दिनों बाद मिश्री के टुकड़े को वह हीरा बनाकर, एक सुन्दर मखमल की डिब्बी में सजा कर वजीर के पास ले आया। वजीर हीरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कारीगर को बढ़िया-बढ़िया कपड़े देकर कहा—

तुम यह कपड़े पहन कर, हीरा लेकर बादशाह सलामत के दरबार में हाजिर होना।

वजीर के आदेशानुसार कारीगर जौहरी बन गया। वह नकली हीरा लेकर बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ।

वजीर ने कारीगर को जौहरी बताते हुए उसकी खूब प्रशंसा की। कहा—यह अमुक देश के प्रसिद्ध जौहरी हैं। इनके पास एक बढ़िया हीरा है। वह जहाँपनाह के लायक है। मैंने हीरा देखा है। वह मुझे बहुत पसन्द आया।

बादशाह ने हीरा देखने की इच्छा प्रदर्शित की तो जौहरी ने डबिया खोलकर हीरा उसके सामने रख दिया। बादशाह को भी वह पसन्द आ गया। उसने कहा—जौहरियों को बुलाकर इसकी कीमत जंचवाओ।

वजीर ने नकली जौहरी से कहा—आज आप जाइए। कल आइए, तब तक इसकी कीमत की जाँच करा ली जायगी।

वजीर ने कारीगर को रवाना किया और हीरा अपने पास रख लिया। वजीर ने सोचा—अगर जौहरी आये तो सारा गुड़-गोबर हो जायगा। फिर यह चालाकी न, चल सकेगी। यह सोच कर उससे पहले ही उचित व्यवस्था करने का निश्चय कर लिया।

बादशाह जब दरबार से उठकर नहाने गया और नहाने लगा, तब वजीर ने कहा—हुजूर, जौहरी आवेंगे तब मैं उस जरूरी काम में लगा होऊँगा। बेहतर होगा, आप ही अपने पास इसे रखें और जौहरियों को दिखला लें।

बादशाह ने वह हीरा ले लिया और वहीं कहीं रख लिया।

वह नहाने लगा। बादशाह को क्या पता था कि हीरा मिश्री का है और वह पानी लगने से गल जायगा। वह नहाता रहा और पानी हीरे पर पड़ता रहा। नतीजा यह हुआ कि हीरा गल गया और बादशाह को पता ही न चला।

बादशाह स्नान करके अन्यत्र चला गया। उसे हीरे का खयाल न रहा। थोड़ी देर बाद जब उसे हीरा याद आया तो उसने स्नान गृह में तलाश करवाया, पर हीरा नदारत था!

बादशाह ने नोकरों को डांटा-डपटा। उनकी चमड़ी उधड़वा लेने की धमकी दी। कोड़े लगवाने का डर दिखाया। पर नतीजा कुछ न निकला। बेचारे नौकर हीरे के विषय में क्या कहते? जब हीरा न मिला तो बादशाह ने वजीर को बुलवा कर पूछा—वजीर, तुम मुझे हीरा दे गये थे न?

वज़ीर—जी हाँ जहांपनाँह, मैं आपके हाथ में दे गया था और आपने स्नान घर में अपने पास ही रख लिया था।

बादशाह—मुझे भी यही याद पड़ता है। तुमने मुझे हीरा दिया और मैंने वहीं रख लिया। मैं नहाने लगा। नहाने के बाद मैं उसका खयाल भूल गया और वहां से चला आया। अब तलाश करवाया तो वह गायब है। सिवाय नौकरों-चाकरों के, स्नान-घर में कोई जाता नहीं है। साफ हैं कि इन्हीं में से किसी की बदमाशी है। इनकी मरम्मत करो और हीरा निकलवाओ।

वजीर ने कहा—हीरा खाने की चीज तो है नहीं जिसे कोई खा जायगा। अगर कोई खा जायगा तो मर जायगा। इसके लिए मारपीट करने से आपकी बदनामी होगी। वह परदेशी व्यापारी है। सुनेगा तो देशदेशान्तर में कहता फिरेगा कि, इतने बड़े बादशाह एक हीरा भी नहीं सँभाल सके, तो इतनी बड़ी सल्तनत को क्या खाक सँभाल सकेंगे! इससे आपकी नेकनामी में धब्बा लगेगा। हीरा तो गया अब इज्जत क्यों जाने दी जाय? मेरी राय में तो चुप रहना ही बेहतर है।

वजीर की बात बादशाह समझ गया। उसने कहा—अच्छा इनकी तलाशी तो ले लो।

वजीर जानता था—हीरा पानी बन गया है। उसने इधर-

उधर की तलाशी ली और जाकर बादशाह से बोला—अन्नदाता, बहुत तलाश करने पर भी हीरे का पता नहीं चला। ऐसी बड़ी और बढ़िया चीज पर फरिशते भी आशिक हो जाया करते हैं। मुमकिन है कोई फरिश्ता ही उसे उड़ा ले गया हो। खैर, हीरा गया सो गया। अब नौकरों को सख्त हिदायत कर दी जाय कि उसके गुम होने की खबर बाहर न पहुंच सके। बादशाह की स्वीकृति से वजीर ने नौकरों को बुला कर कहा—हीरा तुम्हीं लोगों में गायब हुआ है। फिर भी तुम्हें जहाँपनाह माफी बख्शते है। मगर याद रखना, हीरा गायब होने की खबर अगर बाहर गई तो सारा कसूर तुम्हारे ही सिर मढ़ा जायगा और तुम्हारी खाल उतरवा ली जायगी।

सभी नौकर मन ही मन वजीर के प्रति कृतज्ञ हुए, कि वजीर साहब ने आज हम लोगों को बचा लिया। इधर बादशाह वजीर के प्रति उपकृत थे, कि हीरा तो चला ही गया था, वजीर ने बदनाम होने से बचा लिया। यह अच्छा हुआ।

इसके बाद बादशाह ने कहा—हीरा तो गया, अब वह व्यापारी आएगा तो क्या करना होगा ?

वजीर—व्यापारी आपको हीरा दे गया था। वह तो अपने हीरे की कीमत चाहेगा ही और उसे मिलनी भी चाहिए।

बादशाह—ठीक है। उसे पूरी कीमत मिलनी चाहिए।

दूसरे दिन जौहरी बना हुआ कारीगर फिर दरबार में आया वजीर ने उससे कहा—'तुम्हारा हीरा बादशाह सलामत को पसन्द आ गया है। अपने ईमान से उसकी कीमत बताओ।'

कारीगर—मैं उस हीरे को ईरान, अफगानिस्तान, तुर्की आदि कई मुल्कों में ले गया हूँ। उसकी कीमत एक लाख पाँच हजार लगी है। मैं हिन्दुस्तान के बादशाह की बहुत तारीफ सुन कर यहाँ आया हूँ, कुछ अधिक पाने की उम्मीद से। अगर बाद

शाह सलामत इससे कम देंगे तो मैं इन्कार नहीं करूँगा और अधिक देंगे तो उनका बड़प्पन समझूँगा।

वजीर साहब की राय से एक लाख आठ हजार देना तय किया गया। कारीगर यह रकम लेकर खुशी-खुशी अपने घर चलता बना।

कारीगर फिर वजीर के घर पहुंचा। उसने वजीर से कहा – इन रुपयों का क्या किया जाय ?

वजीर– यह रुपया तुम्हारी कारीगरी से मिला है, सो तुम्हीं रक्खो।

कारीगर—'इसमें मेरा क्या है ? यह तो आपकी ही बुद्धि-मत्ता और दया से मिला है।' अन्त में वजीर और कारीगर ने आपस में कोई समझौता किया और रुपया रख लिया गया।

यह दृष्टान्त है। पुण्य की कारीगरी से बना हुआ यह मनुष्य शरीर मिश्री के हीरे के समान । यह शरीर मिश्री के समान ही कच्चा है—जरा से पानी से गल जाने वाला। चक्र-वर्ती और वासुदेवों के शरीर भी गल गये तो दूसरों के शरीर की क्या चलाइ है ? इसका गलना तो निश्चित है ही, लेकिन किसी महात्मा रूपी वजीर के द्वारा, परमात्मा की सेवा में इसे समर्पित कर दिया जाय और वहीं जाकर गले तो कैसा अच्छा हो ! अगर यह शरीर तप और शील की आराधना में काम आवे तो इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है ? अतएव इस बात का विचार करो कि जो वस्तु तुम्हें प्राप्त हुई है, उसका सदुपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

४६ : कर्त्तव्य पालन

एक सेठ थे जिनका नाम मोतीलाल था। उनकी दो पत्नियाँ थीं। एक बड़ी, दूसरी छोटी। छोटी ने विचार किया, बड़ी सेठानी की मौजूदगी में आई हूं इससे प्रगट है कि बड़ी ने पति की सेवा में किसी प्रकार की कमी की है। ऐसा न होता, वह पति का मनोरंजन करती रहती, पति की सेवा में कुछ भी त्रुटि न होने देती तो पति मुझे क्यों लाते ? अतएव मुझे सावधान रहना चाहिए मुझे ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे तीसरी के आने का अवसर उपस्थित हो।

छोटी सेठानी ने बड़ी सेठानी के कार्यों की देखभाल की। बड़ी सेठानी एक मोटी-सी गद्दी पर बैठ कर हाथ में माला ले लेती और 'मोतीलाल सेठ, मोतीलाल सेठ' कह कर अपने पति के नाम की माला जपा करती। यह देखकर छोटी ने सोचा—इस प्रकार पति का रंजन होता तो मेरे आने का अवसर ही क्यों आता ? सेठजी को इससे सन्तोष नहीं हुआ इसीलिए मुझे लाये हैं। तब क्या मैं भी बड़ी की भांति माला लेकर उनका नाम जपने बैठूं ? नहीं। मैं तो सीधी-सादी एक बात करूँगी। वह यह कि सेठजी के काम में अपना काम ! सेठजी की खुशी में अपनी भी खुशी। जिस कार्य से सेठजी को प्रसन्नता होती है उसी से मैं प्रसन्नता का अनुभव किया करूंगी। इसके अतिरिक्त वे आज्ञा दें उसे शिरोधार्य कर लेना। उनका काम पहले से ही कर रखना, जिससे उन्हें कभी मेरा अपमान करने का मौका न मिले।

दोनों सेठानियाँ अपने-अपने तरीके से चलने लगीं। एक दिन सेठ मोतीलाल जल्दी में घबराये हुए से घर आये। दरवाजे के नज-

ठीक पहुंचते ही उन्होंने पानी लाने के लिए पुकार की। उनकी पुकार सुनकर बड़ी सेठानी कहने लगी—'न जाने इनकी कैसी समझ है। मैं इन्हीं के नाम की माला फेर रही हूं और यह स्वयं उसमें विघ्न डाल रहे है। इतनी दूर चल कर आये हैं, तो यह नहीं बनता कि दो कदम आगे चले आवें और हाथ से भर कर पानी पीलें। यह तो करते नहीं और मुख से कहते हैं—पानी लाओ। पानी लाओ। भला मैं अपने जाप को कैसे खंडित करूं?'

मन में इस प्रकार कह कर बड़ी सेठानी अपने स्थान से न हिली, न डुली और ज्यों की त्यों बैठी-बैठी माला सरकाती रही। उधर छोटी सेठानी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसी समय पानी लेकर हाजिर हो गई।

सेठ ने छोटी सेठानी की तरफ नजर फैंकी और पानी लेकर अपनी प्यास बुझाई। जैसे ही सेठ भीतर घुसा तो देखा— बड़ी सेठानी बैठी-बैठी उन्हीं के नाम की माला जप रही है। बड़ी सेठानी ने सेठ को आते देखा तो अपना स्वर ऊंचा कर दिया। अब वह तनिक जोर से 'मोतीलाल सेठ' मोतीलाल सेठ' कह कर जाप जपने लगी।

उधर छोटी सेठानी ने हाथ जोड़कर प्रेम के साथ कहा—'भोजन तैयार है, पधारिये। भोजन का समय भी तो हो चुका है।'

आपके घर में ऐसा हो तो आपका चित्त किस पर प्रसन्न होगा?

'छोटी पर!'

पद्मिनी अपने 'पियु' को नहीं भूलती, इसे स्पष्ट करने के लिए यह दृष्टान्त दिया गया है। इस दृष्टान्त में दोनों स्त्रियां अपने पति को नहीं भूलतीं, पर दोनों में से पति को प्रिय कौन होगी?

'काम करने वाली!'

ईश्वर के भजन के विषय में भी यही बात है। ईश्वर का

भजन करने वाले भी दो प्रकार के होते हैं। एक बड़ी सेठानी के समान ईश्वर के नाम की माला फेरने वाले और और दूसरे ईश्वर की आज्ञा की आराधना करने वाले। इन दोनों भक्तों में से ईश्वर किस पर प्रसन्न होगा ?

'आज्ञा की आराधना करने वाले पर !'

मैं यह नहीं कहता कि माला फेरना बुरा है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि प्यास का मारा सेठ तो पानी की पुकार करे और सेठानी बैठी-बैठी उसी के नाम की माला जपे। क्या इस प्रकार की क्रिया विवेकशून्य नहीं है ?

ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके, उसके नाम की माला जप लेने मात्र से कल्याण नहीं हो सकता।

कदाचित् कोई यह कहने लगे कि मोतीलाल सेठ की बड़ी सेठानी यदि सचित्त पानी पिलाती तो उसे पाप लगता। इसी कारण उसने पानी नहीं पिलाया होगा। इस सम्बन्ध में इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि जो इस पाप से बचेगा वह मोतीलालजी की स्त्री भी न कहलाएगी। वह तो संसार सम्बन्धी समस्त व्यवहार से विमुख होकर आत्म-कल्याण में ही तत्पर रहेगी जो उच्चतर स्थिति में जा पहुंचता है वह तो जगत् से नाता तोड़ लेता है और जगत् से नाता तोड़कर भी सभी से नाता जोड़ता है। अर्थात वह संकुचित विचारों की परिधि से बाहर निकल जाता है। सेठ के दिये वस्त्राभूषण पहनकर बनाव-सिंगार करना, गाड़ी पर बैठना, सेठ के नौकरों पर हुक्म चलाना' संसार सम्बन्धी भोग-विलास करना, इन सबके लिये तो पाप का विचार न करे और सेठ के पानी मांगने पर भी पाप के विचार से उसे पानी न देना निरी आत्म-वंचना नहीं तो और क्या है ? क्या यह धर्म का उपहास नहीं है ?

४७ : निष्काम सेवा

सच्चा सेवक वह है जो स्वामी के कहने पर ही सेवा नहीं करता वरन् स्वामी पर ऐसी जिम्मेवारी डालता है कि उसे सेवा करानी ही पड़े ।

वन-गमन करते समय रामचन्द्र को नदी पार करने का काम पड़ा । आपकी दृष्टि में तो नाव खेने वाला नीच है, लेकिन उसकी नाव में बैठकर नदी पार करते समय वही नाविक कितना प्यारा लगता है, इसे कौन नहीं जानता ?

तो रामचन्द्र ने जाकर निषाद से कहा—भाई, हमें पार उतार दो ।' निषाद मन में सोचने लगा—'यह मोहिनी मूर्ति कौन है ? कैसा यह पुरुष है, कैसी नारी है । और क्या ही सौम्य इसका भाई है ।

मन ही मन इस प्रकार सोच कर निषाद ने पूछा—'मैंने सुना है, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र वन को आये हैं । क्या तुम्हीं तो राम नहीं हो ?'

राम—हां भाई, राम तो मैं ही हूं ।

निषाद— मैं इन्हें तो पार उतार दूंगा, पर तुम्हें न उतारूंगा ।

राम—क्यों ? क्या हम इतमे अधम हैं ?

निषाद—अधम तो नहीं हो, पर एक अवगुण तुम में अवश्य है ।

राम—वह कौन-सा ?

निषाद—मैंने सुना है, तुम्हारे पांव की धूल यदि पत्थर से लग जाती है तो वह पत्थर भी मनुष्य बन जाता है । जब पत्थर

भी मनुष्य बन जाता है, तो मेरी नाव तो लकड़ी की ही है। तुम्हारे पैर की धूल अगर इसे छू गई और यह भी मनुष्य बन गई तो मेरी मुसीबत हो जायगी। मैं कैसे कमा कर खाऊँगा? तुम्हारे पैर में रज तो लगी ही होगी और वह नाव से लगे विना रहेगी नहीं। इसलिए मैं तुम्हें पार नहीं उतारने का।

राम—तो क्या मैं तैर कर नदी पार करूं? अगर बीच में थक जाऊँ तो डूब मरूं?

निषाद—नहीं, तैर कर मत जाओ। जिसके पाँव की रज से पत्थर भी मनुष्य बन जाता है- उसे डूबने कैसे दूंगा?

इतना कह कर निषाद ने लकड़ी की कठोती ला कर राम के आगे रख दी बोला—अगर आप नाव पर चढ़ कर पार जाना चाहते हैं तो इसमें पैर रख दीजिए। मैं अपने हाथों से आपके पाँव धो लूंगा और यह विश्वास कर लूंगा कि आपके पाँवों में धूल नहीं रही, तब नाव पर चढ़ा कर पार पहुंचा दूंगा। हाँ, यह ध्यान रहे कि दूसरे किसी को मैं आपके पैर न धोने दूंगा। नहीं तो सम्भव है, रज रह जाय।

तुलसीदासजी की रामायण का यह वर्णन है। निषाद यह सब बातें इस मतलब से कह रहा था कि उसे रामचन्द्र की सेवा करनी थी और राम अपनी सेवा किसी से कराना नहीं चाहते थे। वे वनवासी थे, अतएव यथाशक्य स्वावलम्बी रहना चाहते थे। पर निषाद ने यह कह कर रामचन्द्र को पैर धुलाने के लिए विवश कर दिया। भक्तजन ऐसे ही उपायों से अपने स्वामी को सेवा कराने के लिए विवश कर देते हैं।

निषाद ने राम, लक्ष्मण और सीता, इन तीनों को बैठा कर बड़े प्रेम से पाँव धोये। इसके पश्चात् उसने उन्हें नाव में बैठने को कहा। उसने सोचा—चलो, यह पानी भी बड़े काम का है। इसमें वह रज है जिससे पत्थर भी मनुष्य बन जाता है।

पैरों का वह धोन (धोवण) लेकर निषाद अपने घर गया। उसने घर वालों से कहा—लो, यह चरणामृत ले लो। आज बड़े पुण्य से यह मिला है। इस चरणामृत में वह रज है जिससे पत्थर भी मनुष्य बन जाता है। पेट में पहुंच कर यह रज न जाने क्या गुण करेगी ?

इधर राम ने सोचा—सेवा-भक्ति किसे कहते हैं, यह लक्ष्मण को सिखाने का अच्छा अवसर है, जिससे लक्ष्मण को अभिमान हो जाय। यह सोचकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—देखो, निषाद क्या कर रहा है ? हम लोगों को विलम्ब हो रहा है।

रामचन्द्र के आदेश से लक्ष्मण निषाद के घर गये। वे निषाद से कहने लगे—भाई, चलो, विलम्ब हो रहा है।

निषाद ने कहा—अभी ठहरिये। हम प्रसाद बांट रहे हैं। जब सब ले लेंगे तब आएंगे।

लक्ष्मण ने सोचा—मैं समझता था, रामचन्द्र का बड़ा भक्त मैं ही हूँ, पर निषाद ने मेरा अहंकार चूर कर दिया। इसकी भक्ति के सामने तो मेरी भक्ति नगण्य-सी हो जाती है। राम की सेवा करने में मुझे तो कुछ आशा भी हो सकती है पर निषाद को क्या आशा है ? भैया ने मुझे यहाँ भेज कर मेरी आँखें खोल दी हैं। शायद उन्होंने इसी उद्देश्य से मुझे यहां भेजा है। यहाँ आकर मैंने जाना कि निषाद जो सेवा-भक्ति कर रहा है, मैं उसका एक अंश भी नहीं कर सकता।

निषाद आया सीता, राम और लक्ष्मण उसकी नाव में बैठ कर नदी पार गये। रामचन्द्र निषाद के सौजन्य की प्रशंसा करते जाते थे, पर निषाद अपनी प्रशंसा की ओर ध्यान न देता हुआ भक्ति-रस में डूब रहा था।

रामचन्द्रजी जब दूसरे किनारे पहुंच गये तब बड़े संकट में पड़े। वे सोचने लगे—निषाद ने इतनी सेवा की है और f

बदला दिये किसी की सेवा लेना उचित नहीं है। लेकिन इसे दें क्या ? क्षत्रियों का यह धर्म है कि सेवा का प्रतिपादन अवश्य दें। मगर देने को कुछ भी नहीं है !

जब कोई देना चाहता है मगर पास में कुछ न होने से दे नहीं सकता, तब हृदय कितना संतप्त होता है, यह बात भुक्तभोगी ही भली-भाँति समझ सकता है। रामचन्द्र ऐसी ही गहरी चिन्ता में थे कि—

सिय पिय-हिय की जाननिहारी।
मणि मुंदरी निज दीन्हि उतारी॥

सीता को अपने स्वामी के हृदय में होने वाले संताप का पता चला। वे समझ गईं कि पति इस समय संकट और संकोच में हैं। पति यों तो संकटों से घबराने वाले नहीं हैं, किन्तु यह सकट तो धर्म-संकट है। जब सीताजी राम के साथ वनगमन के लिए तैयार हुईं तो वे भी अपने सब आभूषण घर पर ही उतार आई थीं, सिर्फ एक अंगूठी उंगली में रख ली थी। इस समय सीताजी ने बिना कहे सुने ही अंगूठी राम को सौंप दी। रामचन्द्र सीता की प्रशंसा करने लगे। पत्नी हो तो ऐसी हो !

आज तो पति भी अपना कर्त्तव्य भूले हुए हैं और पत्नियां भी आभूषणों के लोभ में पड़कर अपना कर्त्तव्य विसर बैठी हैं। मगर राम की यह कथा पति-पत्नि का आदर्श आज भी सामने उपस्थित करती है।

राम निषाद को यह अंगूठी देते हुए बोले—भाई, अपनी उतराई ले लो।

निषाद—उतराई देकर क्या आप मुझे जातिभ्रष्ट करना चाहते हैं ?

राम—इससे जातिभ्रष्ट कैसे हो जाओगे ?

निषाद - अगर नाई,नाई से बाल बनवाई के पैसे ले तो वह

जाति से च्युत कर दिया जाता है। धोबी, धोबी से धुलाई वसूल करे, तो वह जाति से अलग कर दिया जाता है। वे लोग अपने कुल वालों का काम करने वाले से मजदूरी नहीं लेते। फिर मैं आपसे कैसे लूं? आपका और मेरा पेशा तो एक ही है। जो काम मैं करता हूं वही आप भी करते हैं। ऐसी अवस्था में मैं आपसे अपना पारिश्रमिक नहीं ले सकता! इससे तो मुझे जाति से भ्रष्ट होना पड़ेगा।

राम—भाई, तुम्हारा और मेरा एक ही पेशा कैसे? तुम्हारी बात तो कुछ निराले ढंग की होती है।

निषाद—मैं अपनी नाव में बैठा कर नदी से पार उतारता हूँ और आप अपनी नौका पर चढ़ा कर लोगों को संसार से पार उतारते हैं। पार उतारना दोनों का ही काम है। अगर मैं आप से उतराई ले लूंगा तो फिर आप मुझे क्यों पार करेंगे? हाँ, एक बात हो सकती है। अगर आप बदला दिये बिना नहीं रह सकते तो अच्छा-सा बदला दीजिए। मैंने आपको नदी से पार कर दिया है, आप मुझे भव-सागर से पार कर दीजिए। बस बदला हो जायगा।

तात्पर्य यह है कि सेवा करने वाले में निष्कामता होनी चाहिए। जो सेवक निष्काम होता है, बेलाग रहता है, उसके सेवा के वश में सभी हो जाते हैं, भले ही वह ईश्वर ही क्यों न हो। इसके विपरीत लालच के वश होकर सेवा करने वाले में एक प्रकार की दीनता रहती है। वह अपने आपको ओछा, हीन और परमुखापेक्षी अनुभव करता रहता है। निष्काम भावना से सेवा भूषण बनती है और कामना सेवा का दूषण बन जाती है।

४८ : ढोंग

एक ठाकुर अपनी पत्नी की बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहता संसार में सती स्त्रियाँ तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती दूसरी नहीं है। कभी-कभी वह सीता, अंजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ कहता। उसके मित्रों में कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब ! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नहीं हैं। इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। तिरिया-चरित को समझ लेना साधारण बात नहीं हैं।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नहीं ?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली बिना पानी जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।

समालोचक—आपकी बातों से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे तब सचाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय ?

समालोचक—आज आप अपनी स्त्री से कहिए कि मुझे पांच-सात दिन के लिए राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिप कर घर में बैठ रहना।

उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है ! आप अपने पीछे ही स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं। मौजूदगी में नहीं।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता, मगर लाचारी है। कुछ दिनों के लिए तुम्हें छोड़कर बाहर जाना पड़ेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नहीं।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्य के साथ कहा—क्या हुक्म हुआ है ? कौन-सा हुक्म मानना पड़ेगा ?

ठाकुर—मुझे पाँच-सात दिन के लिए बाहर जाना है।

ठकुरानी—इतने दिनों में तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊंगी। आप राजा से कह कर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते !

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं होगा। लोग कहेंगे, स्त्री के कहने में लगा है। मैं यह कहूँगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा।

ठकुरानी—हाँ, ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा। खैर जो होगा देखा जायगा।

इतना कह कर ठकुरानी आँसू बहाने लगी। उसने अपनी दासी से कहा—दासी, जा। कुछ खाने-पीने के लिए बना दे, जो साथ में ले जाया जा सके।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुन कर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है !

ठाकुर घोड़ी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोड़ी ठिकाने बांधकर वह लौट आया और छिपकर घर में बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया। रात हो गई। ठकुरानी ने दासी से कहा—'ठाकुर गया गाम, म्हाने नी भावे धान।' अभी रात

है । जा, पास के अपने खेत से दस–पाँच साँठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो ।' दासी ने सोचा—'ठीक है । मुझे भी हिस्सा मिलेगा ।' वह गई और गन्ने तोड़ लाई । ठकुरानी गन्ना चूसने लगी ।

ठाकुर छिपा छिपा देख रहा था उसने सोचा—मेरे वियोग के कारण इसे अन्न नहीं भाता । मुझ पर इसका कितना गाढ़ा प्रेम है ।

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही । गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है । गन्ना चूसने से भूख लग आई है । थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल ! देख, घी जरा अच्छा लगाना हो !

दासी ने सोचा— चलो ठीक है । मुझे भी मिलेंगे । दासी ने बाफले बनाये और खूब घी लगाया । ठकुरानी ने बाफले खाए । खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी, बाफले तूने बनाये तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे । यह खाना कुछ भारी भी है । थोड़ी नरम-नरम खिचड़ी बना डाल ।

दासी ने वही किया । खिचड़ी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात बीत गई । अभी एक पहर और बाकी है । थोड़ी लाई (धानी) सेक ला । उसे चबाते-चबाते रात बितायें ! दासी लाई सेक लाई । ठकुरानी खाने लगी ।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख-सुन रहा था । वह सोचने लगा—पहली ही रात में यह हाल है तो आगे क्या-क्या नहीं हो सकता ! अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है । यह सोचकर वह अपने घोड़े के पास लौट आया । घोड़े पर सवार होकर घर आ पहुंचा ।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—'होकम' पधार गया है । ठकुरानी ने कहा—'होकम' पधार गया ! अच्छा हुआ ।

ठाकुर से वह बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गये। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बड़े संकट में पड़ गया था।

ठकुरानी—ऐं, क्या संकट आ पड़ा था ?

ठाकुर—घोड़े के सामने एक भयंकर साँप आ गया था। मैं आगे बढ़ता तो साँप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया, इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ! सांप कितना बड़ा था ?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बड़ा भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नहीं फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उनका फन बाफला जैसा बड़ा था !

ठकुरानी—वह दौड़ता भी था ?

ठाकुर—हाँ, दौड़ता क्यों नहीं था ! ऐसा दौड़ता था जैसे खिचड़ी में घी।

ठकुरानी—वह फुंकार भी मारता होगा ?

ठाकुर—हाँ, ऐसे जोर का फुंकार मारता था जैसे कड़ेले में पड़ी हुई धानी सेकने के समय फूटती है !

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी—यह चारों बातें मुझ पर ही घटित हो रही हैं ! फिर भी उसने कहा—चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे कि आप उस नाग से बच कर घर लौट आये !

ठाकुर—ठकुरानी, समझो। मैं उस नाग से बच निकला मगर तुम सरीखी नागिन से बचना कठिन है।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हूं ! अरे बाप रे ! मैं नागिन

हो गई ? भगवान् जानता है, सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं !

ठाकुर—मैं नहीं बनाता, तुम स्वयं बन रही हो ! मैं अपने मित्रों के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ !

ठकुरानी—तो बताते क्यों नहीं, मैंने ऐसा क्या किया है ? मैं आपके बिना जी नही सकती और आप लाँछन लगा रहे हैं !

ठाकुर—बस रहने दो। मैं अब वह नहीं जो तुम्हारी मीठी बातों में आ जाऊं। तुम मुझसे कहा करती थी–तुम्हारे वियोग में मुझे खाना नहीं भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया !

ठकुरानी की पोल खुल गई। सारांश यह है कि संसार में इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रियाँ भी हैं और पतिव्रताएं भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रियाँ भी मिल सकती है और मायाविनी भी मिल सकती हैं। संसार में अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि हमें क्या ग्रहण करना चाहिए ? किसको अपनाने से हमारा जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है ?

४६ : समभाव

सामायिक को समझने वाला एक परिवार था। ऐसे परिवार के बालकों में सहज ही धर्म के संस्कार पड़ जाते हैं। उस परिवार में जन्मी हुई एक कन्या का विवाह हुआ। उस लड़की की रग-

रग में धर्म की भावना भरी थी। वह समझती थी कि मुझे विवाह आदि सांसारिक कृत्य तो करने ही पड़ते है, लेकिन यह संसार सदा साथ देने वाला नहीं है। साथ देने वाला तो एक मात्र धर्म ही है।

विवाह के बाद लड़की सुसराल गई। उसने देखा—मेरी सुसराल के सब लोग उदास हैं। उसने सोचा—और घरों में नयी बहू आने पर प्रसन्नता का पार नहीं रहता, लेकिन इस घर में तेरे आने पर उदासी छाई हुई है। इस उदासी का क्या कारण होगा? मैं अब इस घर की सदस्या हो गई हूं। मेरा कर्त्तव्य है कि घर वालों के सुख-दुख को जानूँ और दुःख हो तो उसे दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करूँ। ऐसा विचार कर उसने अपने साथ की दासी से कहा—सासूजी से पूछो कि आज घर में किस बात का दुःख है? दासी गई और कारण पूछा।

सासू समझदार थीं। उसने सोचा—हम तो दुखी हैं ही, नई आई बहू को क्यों दुःखी करें? यह सोचकर उसने दासी से कहा—बहू से कह दो कि तुम्हारी ओर का कोई दुःख नहीं है। दुःख का कारण तो और ही है। तुम अभी यह जानकर चिन्ता में क्यों पड़ती हो? अगर तुम जान भी गई, तो भी कुछ प्रतिकार नही होगा। इसलिए हमारा दुःख हम ही को भोगने दो।

बहू स्वार्थी स्वभाव की नहीं थी। उसने यह नहीं सोचा कि अपनी ओर का दुःख नहीं है, बस, चलो छुट्टी पाई। अब हमें चिन्ता करने का क्या प्रयोजन है? बहू ने दासी को भेज कर फिर कहलाया—अगर कहने से कुछ नहीं होता तो इस तरह रोने से भी कुछ नहीं होता। रोने से दुःख मिटता नहीं है, प्रत्युत बढ़ता है। आखिर कहिए तो सही कि दुःख क्या है? कौन जाने कोई उपाय निकल आवे।

सासू ने समझा—यह बहू कुछ और तरह की मालूम ह

है। आखिरकार धर्मात्मा के घर की बेटी है। वह स्वयं बहू के पास आई और बोली—और कुछ दुःख नही है। इस मोहल्ले में एक बुढ़िया रहती है। उसका स्वभाव बड़ा लड़ाईखोर है। वह चाहे जब, चाहे जिससे लड़ती थी। इसलिए यह ठहरा दिया है कि वह नित्य एक घर से लड़ लिया करे। संयोगवश आज अपने घर की वारी है। आज ही तुम आई और और आज ही वह न जाने क्या-क्या बकेगी! इसी विचार के कारण उदासी छाई हुई है।

सासू की बात सुनकर बहू ने कहा—इस जरा-सी बात के लिये इतनी भारी चिन्ता! आप सबने उसकी आदत बिगाड़ दी है, नहीं तो वे माजी क्यों लड़ती? आप न लड़ने का उपाय करती तो वे लड़ना छोड़ देती। आज लड़ाई का सब काम मुझे सौंप दीजिए। मैं सब ठीक कर लूंगी। मैं इसका मन्त्र जानती हूं।

सासू ने कहा—'भले ही। मगर होशियार रहना। तुम नई आई हो और वह बड़ी लड़ने वाली हैं। उससे कोई जीत नहीं पाता।' बहू बोली—'चिन्ता न कीजिए।'

बहू घर के दरवाजे में बिछौना डालकर बैठ गई। उधर बुढिया ने सोचा—आज लड़ाई का अच्छा मौका हैं। आज ही नई बहू आई है और आज ही उस घर से लड़ने की बारी आई है। उसने यह भी सुना कि नई बहू ही उससे लड़ने को तैयार हुई है। यह सुनकर उसे और भी खुशी हुई। वह खान-पान से निवृत्त होकर, हाथ में लकड़ी ले वहां आ पहुंची। आते ही उसने कहा—तू कैसे गये—बीते घराने की है कि इस तरह दरवाजे में बैठकर मुझ बुढिया से लड़ने को तैयार हुई है!

बहू को इस बात पर सहज ही क्रोध आ सकता है। मगर वह सामायिक को जानती थी? उसे क्रोध नहीं आया। उसने यह भी नहीं कहा कि लड़ने मैं आई हूँ या तू आई है? पर उसने कुछ नहीं कहा। तब बुढ़िया कहने लगी—रांड अब बोलती भी

नहीं है ! कैसी चुप्पी मार कर बैठ रही है ! लेकिन बहू हँसती-हँसती सुनती ही रही । तब बुढ़िया चिल्लाई—यह बेशर्म हँस रही है । बड़ी निर्लज्ज है ! फिर भी वह कुछ न बोली । जब बुढ़िया धीमी पड़ती तब वह खास कर फिर हँस देती । बुढ़िया का पारा फिर गर्म हो उठता । शाम तक यही क्रम चलता रहा । जब शाम हो गई तो दासी ने कहा—जीमने का समय हो गया है । रात होती है । चल कर जीम लो । बहू ने कहा—यहीं भोजन ले आओ । यहीं जीम लेंगे ।

दासी भोजन ले आई । बहू ने बुढ़िया को भोजन की ओर इशारा करके कहा—आओ, माजी, भोजन करलें । बहू का इतना कहना था कि बुढ़िया गर्ज उठी—मैं क्या भूखी मरतीहूँ ! क्या मुझे कुत्ती समझा है !

बहू ने धीमे से कहा—मनुहार करना मेरा काम था सो मैंने कर लिया । जीमना, न जीमना आपकी मर्जी की बात है ।

बहू भोजन करने लगी । बुढ़िया बोली—कितनी बेशर्म है यह चण्डी, कि मेरे सामने ही खा रही है ! इस प्रकार वह बड़-बड़ाती रही । बड़बड़ाते उसकी आँते चढ़ गई । वह बेहोश होकर गिर पड़ी । बहू ने उसी समय दासी को बुलाया और बुढ़िया को भीतर ले लेने को कहा । दोनों ने मिलकर उसे उठा लिया । घर के भीतर ले गईं । पानी छिड़का । बुढ़िया फिर होश में आ गई । तब बहू ने पूछा—सासूजी, अब आपकी तबीयत ठीक है न ! आपका यह वृद्ध शरीर और इतना ज्यादा कष्ट उठाना पड़ा ! अगर मैंने सम्भाला न होता तो न जाने क्या होता ? अब आप क्रोध मत किया करो - आज मैंने जो उपाय किया है, वह मुहल्ले के सब लोग जान गये हैं । आप इसी तरह लड़ती रही तो वर्ष भर के बदले छह महिने में ही मर जाओगी । मरने के बाद न जाने कौन-सी गति मिलेगी । इसलिए अपनी सेवा का सौभाग्य

मुझे दो। एक सासू के बदले दो की सेवा करके मुझे दुगुनी प्रसन्नता होगी।

बुढ़िया की आँखें खुल गईं। उसने सोचा—यह बहू कुछ और ही तरह की है। उसने कहा—बहू ! तू ठीक कहती है। भला, मैं अकेली कब तक लड़ सकती हूँ ! सामने लड़ने वाला हो तो जोश भी आता है और विश्राम भी मिल जाता है। इस तरह जोश चढ़ा-चढा कर ही लोगों ने मुझे लड़ना सिखाया है।

बहू की मधुर बातें सुनकर बुढिया को शाँति मिली। वह उसी के घर रहने लगी। बहू ने उसकी तन-मन से सेवा की। बुढिया ने बहू को अपने धन की स्वामिनी बना दी। सब जगह बहू की तारीफ होने लगी। झगड़े के समय लोग उसे मध्यस्थ बनाने लगे। मुहल्ले की अशान्ति मिटी और शान्ति का वातावरण फैल गया।

बहू सामायिक में नहीं बैठी थी। फिर भी उसने सामायिक का फल पाया या नहीं ? इस सकार कहीं भी, किसी भी अवस्था में, समभाव रखने से सामायिक का फल अवश्य प्राप्त होता है।

५० : लेश्या

जैन शास्त्रों में मानसिक भावों के लिए लेश्या का निरूपण किया गया है और उनकी शुद्धता-अशुद्धता को देख कर विशिष्ट ज्ञानियों ने उनके कृष्ण, नील आदि छह भेद भी बताये हैं। उत्तराध्ययन और प्रज्ञापना सूत्र में लेश्याओं का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। वहाँ उनके वर्ण, गन्ध, रस आदि का भी निरूपण किया है।

जिसके मन में जैसे विचार होते हैं, वैसे ही परमाणु उनके आ चिपटते हैं। जिसके मन में किसी की हत्या करने की भावना होगी, उसके काले और काले में भी अत्यन्त भद्दे पुद्गल आ चिपटेंगे। तात्पर्य यह है कि खोटे परिणाम होने पर रंग भी खोटा हो जाता है।

विज्ञान की अनेक उपयोगी बातें जैन शास्त्र में पहले ही बतला दी गई हैं, लेकिन आज वह बातें शास्त्र के पन्नों में ही पड़ी हुई है। यह हम लोगों की कमजोरी या उपेक्षा है। आज धर्म-शास्त्र को गहराई से अध्ययन करने वाले और साथ ही विज्ञान के पारंगत पंडित हमारे यहां नहीं हैं। अतएव उन सब शास्त्रीय बातों पर यथेष्ट वैज्ञानिक प्रकाश नहीं पड़ता।

लेश्याएँ छह हैं—(१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) पीत (५) पद्म (६) शुक्ल। इनमें से जब कोई मनुष्य कृष्ण लेश्या को त्याग कर नील लेश्या में आता है, तब शास्त्र-कारों के कथनानुसार वह कापोत लेश्या की अपेक्षा अधिक अशुद्ध है, मगर कृष्ण लेश्या की अपेक्षाकृत अधिक उदारता और शुभ विचार आ गये हैं। लेश्या के परिणामों की तरतमता समझाने के लिए एक उदाहरण इस प्रकार है—

छह आदमी एक साथ जा रहे थे। उन्हें भूख लगी तो वे इधर उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। उन्हें एक फला हुआ आम का वृक्ष दिखाई दिया। सब ने आम खाने का निश्चय किया। यहां तक सबके विचारों में समानता है, मगर आगे उनके विचारों में अन्तर पड़ जाता है। छहों में इस प्रकार वार्तालाप होने लगा।

पहले ने कहा—अपने पास कुल्हाड़ी भी है और अपन इतने आदमी हैं कि दो-दो हाथ मारते ही आम का पेड़ कट कर गिर जायगा। तब हम लोग मन चाहे आम खा लेंगे।

थोड़े-से आम खाने हैं, मगर परम्परा तक वृक्ष काट गिराने

से कितनी हानि होगी, इस बात का विचार इस आदमी को नहीं है।

दूसरे आदमी ने कहा—यह वृक्ष न जाने कितने दिन में लगकर तैयार हुआ है, अतएव इसे काट डालना ठीक नहीं है पेड़ तो हम लोगों को खाना नहीं है। आम खाने हैं। आम मोटी मोटी डालियाँ काटने से भी मिल सकते है। इसलिए यह डालियाँ काट लेनी चाहिए।

तीसरे ने कहा—पहले आदमी की अपेक्षा तुम्हारा कहना ठीक हैं, लेकिन वास्तव में तुम्हारा कहना भी ठीक नहीं। बड़ी-बड़ी डालियाँ काटने से लकड़ियों और पत्तों का ढेर लग जायगा। आम छोटी-छोटी डालियों में लगे हैं, इसलिए छोटी डालियाँ ही काटनी चाहिए। इससे लकड़ियों और पत्तों का ढेर भी नहीं लगेगा और अगले वर्ष तक वह डालियाँ फिर फूट निकलेगी।

चौथे ने कहा—तुम्रारी बात भी ठीक नहीं जचती। छोटी-छोटी डालियाँ काटने से भी लकड़ी व पत्तों का ढेर हो जायगा और दूसरों को लाभ न पहुंचेगा। हमें फल खाने से मतलब है, इसलिए फलों के गुच्छे ही तोड़ लो।

पाँचवें ने कहा - यह भी स्वार्थबुद्धि की बात है। फल खाना क्या तुम्हीं जानते हो, दूसरे नहीं ? अगर तुम्हारी ही तरह पहले आने वालों ने विचार किया होता, सब कच्चे-पक्के फल तोड़ लिए होते तो आज तुम्हें ये फल कहाँ से मिलते ! इसलिए कच्चे फल रहने दो। पक्के-पक्के तोड़ लो।

छठे ने कहा—औरों से तुमने ठीक कहा है, पर आम का यह वृक्ष बड़ा है। इसमें पक्के फल बहुत अधिक है। हम लोग सभी फल नहीं खा सकेंगे। फिर सब पक्के फल तोड़ने से क्या लाभ है ? तुम लोग जितने फल खा सको उतने ले लो। उससे अधिक लेने का तुम्हें क्या अधिकार है ? आम का वृक्ष प्रकृति से ही

इतना उदार है कि वह पके फल अपने ऊपर नहीं रखता । सर्व-साधारण के उपभोग के लिए उन्हें त्याग देता है । सो तुम नीचे गिरे हुए पके फलों से ही काम चला सकते हो । अधिक फल बिगाड़ने से क्या लाभ है ?

यहाँ छहों आदमियों के विचार आम खाने के होने पर भी छह प्रकार के विचार हुए । इसी प्रकार संसार के मनुष्य भी छह प्रकार के होते हैं । कई अपने आराम के लिए दूसरों की जड़ काट देते हैं और कई दूसरों को हानि न पहुंचाते हुए अपनी जीविका का निर्वाह कर लेते हैं । अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए महा आरम्भ करना और दूसरों को हानि पहुंचाना कृष्ण लेश्या है । इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों आरम्भ कम होगा, दूसरे की दया होगी, हृदय में उदारता होगी त्यों-त्यों लेश्या भी शुद्ध होती जायगी । कृष्ण लेश्या से निक-लने पर नील लेश्या, और नील लेश्या से निकलने पर कापोत लेश्या होती है । कापोत लेश्या से ऊँचे उठने पर तेजो (पीत) लेश्या, तेजो लेश्या से पद्म लेश्या और पद्म लेश्या से भी ऊपर शुक्ल लेश्या होती है । तेजो-लेश्या से धार्मिकता आरम्भ होती है । इन लेश्याओं के भी अवान्तर भेद अनेक हैं, परन्तु मुख्य भेद यही हैं । लेश्याओं का यह वर्णन सुनकर आप अपनी कसौटी कीजिए । देखिए, आप किस लेश्या में हैं और किस प्रकार शुद्धता बढ़ाकर आत्म-शुद्धि प्राप्त करनी चाहिए ।

५१ : जीते जी पुनर्जन्म

एक साहसी और चतुर चोर ने एक बार राजा के महल

में प्रवेश किया। चोर के प्रवेश करते ही संयोगवश राजा जाग उठा। राजा को जागा देख चोर सिर से पैर तक कांप उठा। उसने सोचा—पकड़ में आ गया तो मारा जाऊंगा। कहीं छिपने की जगह न देख वह सिर पर पैर रख कर भागा। राजा ने भी चोर को देख लिया था। राजा ने विचार किया कि मैं चोर को न पकड़ सका तो मेरी बड़ी बदनामी होगी। सिपाहियों को आवाज देने, बुलाने और समझाने का समय नहीं था। अतएव राजा ने स्वयं चोर का पीछा किया। आगे-आगे चोर और पीछे-पीछे राजा दौड़ा जा रहा था।

राजा को चोर का पीछा करते देख सिपाही भी दौड़े। अपने पीछे राजा को और सिपाहियों को दौड़ते देख चोर की हिम्मत जाती रही। मगर पकड़ में आते ही प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा, इस विचार से वह रुक नहीं सका। कुछ और आगे भागा। मगर उसके पैरों ने जवाब दे दिया। इतने में ही श्मशान आ गया। चोर ने सोचा—आज प्राण बचना कठिन है, फिर भी अन्त तक बचने का प्रयास तो करना ही चाहिए। अगर इस श्मशान में मैं मुर्दे की की तरह पड़ा रहूं तो सम्भव है राजा मुझे मरा समझ कर छोड़ दे। बस, बचाव का एक ही उपाय है कि मुर्दे का स्वांग बना लूं।

चोर श्मशान में जाकर पड़ गया। मृतक की भांति अपनी नाड़ियों को संकुचित करके उसने ऐसा दिखावा किया, मानों वह सचमुच ही मर गया हो। इतने में राजा और सिपाही भी वहां जा पहुंचे। चोर को जमीन पर पड़ा देख सिपाहियों ने कहा—महाराज, देखिए तो सही, चोर आपके डर से गिर पड़ा और मर गया है।

राजा ने कहा—अच्छी तरह जांच करो यह मरा नहीं होगा, ढोंग कर रहा होगा।

सिपाही चोर को इधर-उधर लुढकाने लगे, पर यह तो ठीक मुर्दे की तरह निश्चेष्ट ही बना रहा।

आपत्ति मनुष्य को अपूर्व शिक्षा देती है और बहुत बार उन्नत भी बनाती है। राम को वनवास न करना पड़ा होता तो उन्हें कौन जानता? भगवान् महावीर ने आपत्तियाँ सहन न की होती तो उनका नाम कौन लेता? कैसे उनकी उन्नति होती?

तो राजा को विश्वास नहीं हुआ कि चोर वास्तव में मर गया है। उसने सिपाहियों से कहा—अच्छी तरह जाँच करो। कपट करके पड़ा होगा।

सिपाहियों ने उसे मारना-पीटना शुरु किया तो चोर के शरीर में से लोहू बहने लगा। फिर भी उसने जरा भी चूँ-चाँ नहीं की। तनिक भी नहीं कराहा। चुपचाप पड़ा रहा।

राजा ने कहा—है पक्का! इतनी मार खाने पर भी चुपचाप पड़ा हैं। मर जाने का ढोंग करता है और हमारी आँखों में धूल झोंकना चाहता है! मर गया होता लोहू कैसे निकलता? मरे शरीर में से लोहू निकलता ही नहीं है।

इसके बाद राजा ने एक सिपाही को बुला कर कहा—धीरे से उसके कान में कह दो कि राजा ने तेरा अपराध क्षमा कर दिया है। ढोंग करके क्यों वृथा मार खाता है?

अपने अपराध को क्षमा करने की बात सुनते ही चोर उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर राजा के सामने पहुंचा। उस समय राजा, अपने मन में सोच रहा था—'यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया तो मुझे साक्षात मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए?' इस प्रकार विचार करके राजा ने चोर से पूछा—तू मुर्दा सरीखा बन कर क्यों पड़ा था?

चोर—अन्नदाता, आपके भय से ही मैंने ऐसा किया था।

राजा—इतनी मार खाने के बाद भी तू बोला क्यों नहीं?

चोर—जब मैंने मुर्दा बन जाने का ढोंग किया था तो कैसे बोलता ?

राजा – तब तो तू बड़ा भक्त मालूम होता है ?

चोर—महाराज, मैं भक्त नहीं हूँ। मैंने तो आपके भय से ही मुर्दा का स्वाँग बनाया था।

राजा—जैसे मेरे डर से तू जमीन पर पड़ गया था, वैसें संसार के भय से डरे और पूरा स्वाँग बनावे तो तेरा कल्याण ही हो ज़ाए !

चोर—दयानिधान, मैं ऐसीं बातें नहीं जानता। ऐसा ज्ञान मुझे नहीं है, आपको ही है।

राजा—ज्ञान तो आत्मा में बहुत है, पर उसे प्रकट करने के लिए जीवन नीतिमय और धर्मयुक्त होना चाहिए। मैंने तेरा यह अपराध क्षमा कर दिया है, मगर यह जानना चाहता हूँ कि अब तेरा क्या विचार है ? इस पापमय आजीविका का त्याग करना है या नहीं ?

चोर—इस प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं रही महाराज ! चोर के रूप में तो मैं तभी मर चुका जब मैंने मुर्दे का स्वाँग बनाया था अब आपके सामने एक गरीब भलामानस खड़ा है। मैं रूखी सूखी खाकर अपना गुजर कर लूँगा, पर अनीति का धन्धा नहीं करूंगा। आपने क्षमा-दन्ड देकर मेरा जीवन बदल दिया है। मैंने आज नया जन्म धारण किया है।

क्षमा, दया और सहानुभूति के कोमल शस्त्रों की मार गजब की होती है।

५२ : निरन्वय नाश

एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य पर अदालत में दीवानी दावा किया। वादी और प्रतिवादी अदालत में उपस्थित हुए। वादी को प्रतिवादी से कुछ रकम लेनी थी, जो उसने कर्ज के रूप में प्रतिवादी को दी थी। प्रतिवादी पहले तो टालमटूल करता रहा, कल दूंगा, परसों दूंगा, सुबह दूंगा आदि। मगर उसने अन्त में देने से इन्कार कर दिया। तब वादी को विवश होकर दावा करना पड़ा। जब दोनों अदालत में उपस्थित हुए और न्यायाधीश ने प्रतिवादी से पूछा—क्या तुम यह रकम देना स्वीकार करते हो? तब वह बोला—वादी का दावा झूठा है। इसने मुझे कोई रकम नहीं दी और मैंने इससे कोई रकम नहीं ली है।

प्रतिवादी के द्वारा उपस्थित किया हुआ लेख-पत्र न्यायाधीश के सामने था। उसने पूछा—इस कागज पर तुम्हारे हस्ताक्षर हैं। इसमें कर्ज लेना स्वीकार किया गया है। क्या वह झूठा है?

प्रतिवादी—संसार के सभी पदार्थ नाशवान् हैं। क्षण-क्षण नष्ट होते जाते हैं। आत्मा भी नाशशील है। जो पहले क्षण में है वह दूसरे क्षण में नही रहता। ऐसी स्थिति में देने वाला और लेने वाला—दोनों ही अब नहीं रहे। जिसने दिया था, वह देते ही नष्ट हो गया और जिसने लिया था वह लेते ही समाप्त हो चुका। अब मैं यह रकम क्यों चुकाऊँ?

न्यायाधीश ने सोचा—यह मनुष्य दार्शनिक मान्यताओं के बहाने दूसरे की रकम पचा लेना चाहता है। इसे सही शिक्षा मिलनी चाहिए। यह सोचकर उसने पूछा—तुम किसके मकान में रहते हो?

प्रतिवादी—मेरा निजी मकान है।

न्याया०—उसे कब बनवाया था ?

प्रतिवादी—लगभग दस वर्ष पहले।

न्याया०—(वादी से) तुम इनके मकान पर अपना अधिकार कर लो। उस मकान के मालिक यह नहीं है। जिसने उसे बनवाया था, वह तो बनवाते ही नष्ट हो गया है। वह अब नहीं रहा। इन्होंने दूसरे के मकान पर कब्जा कर रखा हैं!

प्रतिवादी वह सुनकर घबराया। उसने दीनता दिखलाते हुए कहा—हुजूर, ऐसा मत कीजिए। जो रकम इनकी देनी हैं वह मैं अभी अदालत में ही चुका देता हूँ।

न्यायाधीश—ठीक है, अभी गिनकर दे दो।

प्रतिवादी ने लाचार होकर सारी रकम चुकत कर दी। तब न्यायाधीश ने वादी से कहा—अब उस मकान पर कब्जा सरकार का रहेगा।

प्रतिवादी भौंचक होकर रह गया। न्यायाधीश ने मुस्कराते हुए कहा—जिसने रकम चुकाई वह दूसरा था। तुम दूसरे हो। आत्मा तो क्षण-क्षण में बदलता रहता है न? इसलिए उस मकान बनवाने वाले तुम नहीं हो, कोई भी जीवित नहीं है। इसलिए वह मकान सरकार का होगा। यही नहीं, तुम्हारी पत्नी और सन्तान छीन ली जायगी, क्यों कि तुम, जो इसी वक्त नये उत्पन्न हुए हो, उसके पति या पिता नहीं हो।

प्रतिवादी की अक्ल ठिकाने आ गई। उससे गिड़गिड़ाते हुए क्षमा माँगी और प्रतिज्ञा की अब किसी को दर्शनशास्त्र के नाम पर ठगने की कोशिश नहीं करूंगा।

आत्मा का निरन्वय नाश मान लिया जाय तो संसार का व्यवहार एक भी क्षण नहीं चल सकता।

५३ : माँ बाप सावधान

एक विधवा बुढ़िया को अपना इकलौता लड़का बहुत प्यारा था। अपने भविष्य की उससे बड़ी आशाएँ थीं। वह समझती थी कि मेरे पति के वंश में वही एकमात्र आशा की किरण है। विधवा का वह पुत्र बड़ा लाड़ला था। उस पर किसी का दवाव नहीं था, इस कारण वह स्वच्छन्द हो गया।

एक दिन वह किसी दुकानदार के यहाँ पहुँचा। दुकानदार ऊंघ रहा था। मौका पाकर वह कुछ पैसे चुरा लाया। घर आकर उसने वे पैसे अपनी माँ को दे दिये। माँ पैसे देखकर बहुत राजी हुई और पूछने लगी—ये पैसे कहाँ से लाया है? लड़के ने सच-सच बता दिया। माँ ने कहा—ठीक किया, और उसे चोरी करने के इनाम स्वरूप कुछ बतासे दिये।

लड़के की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने मन में सोचा—माँ को मेरा यह काम पसन्द आया है। इसलिए तो मुझे उसने इनाम दिया है। धीरे-धीरे वह ज्यादा चोरी करने लगा। वह जैसे-जैसे बड़ा होता गया, तैसे-तैसे बड़ी चोरियाँ करने लगा।

पाप का घड़ा जब भर जाता है तो फूटे विना नहीं रहता। इस कहावत के अनुसार वह लड़का एक दिन चोरी करते पकड़ा गया। एक चोरी पकड़ी गई तो कई चोरियों का भेद खुल गया। राजा ने विचार किया—यह बचपन से ही चोरी करता आया है। इसने बहुत बार चोरी की है। चोरी करना इसकी आदत में शामिल है और यही इसका धन्धा है। इसे फाँसी की सजा मिलनी चाहिए।

राजा ने उसे फाँसी की सजा सुना दी। जल्लाद उसे फाँसी

देने के लिए ले चले । तमाशा देखने के लिए बहुत से लोग इकट्ठे हो गये । लड़का सोचने लगा—मैं पहले चोर नहीं था । मेरे कुल में चोरी का धन्धा नही होता था । फिर यह आदत मुझमें कहां से आ गई ? यह सोचते-सोचते अपने जीवन की पिछली सारी घटनाएं उसकी आंखों के आगे नाचने लगी । उसे याद आया—पहले-पहल मैंने दुकानदार के पैसे चुराये थे और मां ने मुझे बताशे इनाम दिये थे । उस इनाम ने ही मुझे चोर बना दिया । मेरी माँ ने अगर मेरा उत्साह न बढ़ाया होता और चोरी करने के कारण मेरे गाल पर एक तमाचा जड़ दिया होता तो आज मुझे फाँसी के तख्ते पर चढने की नौबत क्यों आती ?

फाँसी देने से पहले नियमानुसार उससे पूछा गया—'कुछ कहना चाहते हो ? किसी से मिलने की इच्छा है ?' चोर ने कहा-'मैं अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ।'

सिपाही उसकी मां के पास गया । सूचना दी – तुम्हारे बेटे को फाँसी दी जा रही है । अन्तिम समय में वह तुमसे मिलना चाहता है । माँ सिपाही के पीछे-पीछे चली । वह चिल्लाती जा रही थी—'हाय बेटा ! मैंने तुझे कितना समझाया कि चोरी मत कर । परन्तु तू ने एक न मानी !' वह जब लड़के के पास पहुंची तब भी यह कह कर रोने-चीखने लगी ।

उधर लड़के ने सोचा—माँ जले पर नमक छिड़क रही है। इसी ने मुझे चोर बनाया है और यही अब ऐसा कहती है ? पश्चाताप और क्रोध से वह पागल हो उठा । क्रोध ही क्रोध में वह माँ के पास पहुँचा । उस समय उसके पास कोई शस्त्र नहीं था अतएव अपने दाँतों से ही उसने माँ की नाक काट ली । माँ चिल्लाने लगी—हाय ! मार डाला ! कैसा पापी लड़का है कि आप फांसी पर लटकने जा रहा हैं और ऐसे समय भी मुझे कष्ट दे रहा है ! इसके गुन फाँसी पर चढ़ने लायक हीं हैं ।

वहाँ जो राजकर्मचारी उपस्थित थे, यह दृश्य देखकर हैरान हो गये। उन्होंने चोर से पूछा— तू ने अपनी माता की नाक क्यों काटी ? चोर ने कहा—'बस, रहने दीजिए। आप कारण न पूछिए। अब मेरी कोई इच्छा नहीं रह गई। फाँसी देना हो तो दे दीजिए।'

राजकर्मचारियों ने सोचा—इस घटना के पीछे कोई बड़ा रहस्य अवश्य होना चाहिए। उन्होंने उसे फिर राजा के सामने पेश किया। सारा हाल कह सुनाया। तब राजा ने चोर से पूछा— ठीक-ठीक कहो, तुमने अपनी माता की नाक क्यों काटी ?

पहले के लोग राजा और परमात्मा को समान समझते थे। इस कारण वे प्रायः राजा के सामने झूठ नहीं बोला करते थे। मगर आज तो सबसे अधिक झूठ कचहरियों में ही बोला जाता है।

चोर ने राजा से कहा—'महाराज, मैं चोर नहीं था, मेरे बाप-दादे भी चोर नहीं थे। अपने पुरखाओं से मुझे चोरी करने के संस्कार नहीं मिले। फिर भी मैं चोर बन गया और आज फाँसी के तख्ते पर चढ़ाया जा रहा हूँ! इसका कारण यह है कि छुटपन में नासमझी के कारण मैं एक दिन कुछ पैसे चुरा लाया था। पैसे मैंने अपनी माँ को दिये। माँ ने मुझे चोरी करने के लिए दण्ड देने के बदले इनाम दिया! इसी कारण मैं धीरे-धीरे चोर बन गया। मैंने सोचा—जब चोरी करने के अपराध में मुझे फाँसी मिल रही है तो चोर बनाने के अपराध में मेरी माता को भी दण्ड मिलना चाहिए। दूसरी माताओं को इससे शिक्षा मिलेगी और वे अपने बेटों को चोर नहीं बनाएगी।'

चोर की बात सुनकर राजा ने सोचा—इसे अपने किये पर पश्चात्ताप है। चोरी के दुष्परिणाम का इसे भान हो गया है। यह अब सुधर गया है और दण्ड देने का प्रयोजन अपराधी का सुधार करना ही है। ऐसी हालत में इसे प्राणदण्ड देने की आ

नहीं हैं। फिर राजा ने उससे कहा—'मैं समझता हूँ कि तुमने चोरी की बुराई समझ ली है और आगे कभी चोरी नहीं करोगे। तुम्हें अपने अपराध का गहरा पश्चाताप हो रहा है। अतः मैं तुम्हें फाँसी की सजा से मुक्त करता हूँ।'

माता-पिता, सावधान ! आप कभी अपनी सन्तान के किसी दुष्कर्म का, किसी बुरी आदत का समर्थन तो नहीं करते ? उपेक्षा तो नहीं करते ?

५४ : विवेकहीनता

जब मनुष्य में निज का विवेक न हो तो उसे दूसरे से विवेक सीखना चाहिए। ऐसा करते-करते वह एक दिन स्वयं विवेकवान् बन जाता है। कम से कम हानि से तो बच ही जाता हैं। पर बहुत बार ऐसा होता है कि मनुष्य स्वयं अविवेकी होते हुए भी अपने को अविवेकी नहीं मानता। यह अविवेक की पराकाष्ठा है। ऐसी स्थिति में वह ऐसे काम कर बैठता है, जिससे भयानक क्षति उठानी पड़ती है।

एक किसान था। उसके प्रान्त में पानी की वर्षा नहीं हुई तो वह किसी दूसरे प्रान्त में चला गया। उसे मिहनती देखकर किसी किसान ने अपनी लड़की से उसका विवाह कर दिया। कुछ दिन बाद वह किसान अपने घर वापिस लौटा तो वर्षा हो चुकी थी। उसने बाजरे की खेती की। खेत हरा-भरा हो गया। किसान अपनी स्त्री को लेने के लिए सुसराल गया।

सुसराल वालों ने उसकी मेहमानी करने के लिए खीर और

मालपुवे बनवाये । उस किसान ने कभी मालपुवे नहीं खाये थे । वह असमंजस में पड़ा कि इन्हें किस प्रकार खाया जाय ? सोच-विचार के वाद उसने निश्चय किया—टुकड़े-टुकड़े करके खाने से मजा जाता रहेगा । पूरा मालपुवा उसने मुँह में डाला और किसी प्रकार खाने लगा । पास में उसके साले वगैरह जो लोग बैठे थे, हंसने लगे ।

अपने जामाता की मूर्खता देखकर सासू ने दो उंगलियां दिखाकर इशारा किया कि कम से कम दो टुकड़े करके तो खाओ । पर मूर्ख किसान इस इशारे को उलटा समझा । उसने समझा—एक-एक खाने से नहीं, दो एक साथ खाने से ज्यादा मजा आता है । अब उसने दो-दो खाने शुरु किये । लोगों ने समझ लिया—यह एकदम गंवार है ! आखिर उसे स्पष्ट करके समझाया गया कि टुकड़े करके खाना चाहिए ।

किसान को मालपुवे बड़े स्वादिष्ट लगे । जब वह अपनी स्त्री को लेकर घर लौट रहा था तो रास्ते में निश्चय करने लगा क घर पहुंच कर मालपुवा बनवाऊंगा । मालपुवा बनाने की विधि वह सुसराल में सुन चुका था । उनके लिए गेहूं की आवश्यकता थी, इसलिए उसने बाजरा की जगह गेहूं की खेती करने का निश्चय किया । जब वह घर पहुंचा तो बाजरा पकने में कुछ ही दिनों की देरी थी । मगर वह मालपुवा खाने के लिए गेहूं बोने को उतावला हो रहा था । उसने अपने पिता से गेहूं वोने के लिए कहा । पिता बोला—अपने खेतों में बाजरे की ही खेती अच्छी होती है । यहाँ के कुओं में इतना पानी भी नहीं कि गेहूँ सींचे जा सकें ।

मगर मालपुवों के लिए पागल बने उसने कहा—अजी नहीं बहुत दिनों तक बाजरे की खेती की, मगर कुछ भी आनन्द नहीं आया । सारी मिहनत वेकार गई । अब कुछ तरक्की करनी चाहिए ।

पिता बेचारा चुप हो गया ।

युवक किसान ने उसी समय बाजरे के खेत को खुदवा डाला और उसमें गेहूँ बो दिये । पर कुएं में इतना पानी कहाँ रखा था ? न बाजरा हाथ आया, न गेहूं ही । सारी मिहनत बेकार हुई । खाने के लाले पड़ गए ।

बिना सोचे-समझे काम करने वालों की ऐसी ही स्थिति होती है ।

५५ : चमार गुरु

संसार के झगड़ों में न पड़कर, ईश्वर से याचना करो तो ऐसी चीज की याचना करो कि जिससे फिर कभी, किसी से, किसी भी प्रकार की याचना ही न करनी पड़े । एक दूसरे की दी हुई चीज कैसा अनर्थ करती है, इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त लीजिए—

एक चमार था । वह जूते बनाया करता था जूते बनाते-बनाते ही वह यह भजन गाया करता—

'तोय माँगी माँगिवो न मंगतो कहायो ।'

अर्थात्—हे प्रभो ! तुझसे माँगने वाला मंगता नहीं है, क्योंकि तुझसे माँगने पर मंगतापन ही मिट जाता है ।

यह भजन गाता-गाता चमार मस्त हो जाता । जिस जगह बैठ कर चमार सिया करता था, उसके सामने ही एक सट्टे-बाज सेठ रहता था । चमार का भजन सुनकर सेठ की नींद खुल खुल जाती । वह सोचता—यह चमार कितना मस्त है !

एक दिन सेठ ऐसा सोच ही रहा था कि उसी समय उसे

तार मिला—रुई का भाव घट गया है। सेठ यह समाचार पाकर सन्ताप करने लगा। सोचा—कल ही तो माल खरीदा था और आज इतना नुकसान हो गया ? इसके बाद उसे किसी दूसरे सौदे में भी घाटा लग गया। व्यापारी के लिये घाटे की मार बुरी होती है।

सेठ इतनी चिन्ता में पड़ गया कि करवटें बदलते ही उसकी रात बीतती। उसका मुंह सूखता चला जाता। कभी सरकार को, कभी प्रजा को और कभी गाँधी को दोष देने लगता। इस प्रकार दस-पाँच दिनों में ही सेठ की शारीरिक दशा बिगड़ गई। वैद्य दवा करने आये, मगर चिन्ता की दवा उनके पास नहीं थी। जैसे-जैसे बाजार गिरता जाता, सेठ का दुख बढ़ता और स्वास्थ्य गिरता जाता था। सेठ को सारा संसार सूना दिखाई देने लगा। उसकी दृष्टि में धर्म या ईश्वर कोई नहीं रहा। पैसे जाते ही धर्म और ईश्वर पर से विश्वास भी चला गया। एक दिन चमार ने फिर गाया—

सुरनर मुनि असुर नाम साहब तो घनेरे।

चमार के गाये हुए इस भजन को सुनकर सेठ को कुछ सान्त्वना मिली। वह सोचने लगा—इस चमार के पास तो कुछ भी नहीं है। और इतना घाटा होने पर भी मेरे पास लाखों का धन मौजूद है। यह कुछ न होने पर भी इतना मस्त रहता है और लाखों की सम्पत्ति होने पर भी मैं रोता हूं !

चमार ने सेठ के हृदय में एक कुतुहल पैदा कर दिया। उसने चमार को अपने पास बुलवाया और पूछा—क्या गाते रहते हो चौधरी ?

चमार बोला—सेठजी, मेरे काम में हरकत होती है। काम करने दीजिए।

सेठ—दो घड़ी बैठो तो सही।

चमार—दो घड़ी में एक जूता बनता है।

धनिक लोग घण्टों-पहरों ऐश-आराम और साज-सिंगार में व्यतीत कर देते हैं। उन्हें जूतों पर पालिश करवाने और बाल-संवारने के लिए ही घण्टों चाहिए। वे आलस्य में अपना समय व्यतीत करते हैं। चमार जूता बनाता है सो कहते हैं कि अधर्म करता है और स्वयं गप्पें मार कर क्या धर्म करते हैं ? चमार जूता बना कर अपना पेट भरता है और साथ ही दूसरों के पैरों को आराम पहुँचाता है। पर गप्पों से किसका पेट भरता है ? किसे सुख पहुँचता है ?

तो सेठ ने चमार से कहा—तुम जो भजन गाया करते हो, उसे एक बार सुना दो।

चमार—भजन मैं नहीं से सुनाऊँगा।

सेठ—भजन तो मैंने कई बार सुना हैं, यह बताओ कि उसका अर्थ क्या है ?

चमार—उस भजन का अर्थ इतना ही है कि ईश्वर ही मेरा दाता है। वही मेरा दुःखहरण करने वाला है। दूसरा कोई दुःख दूर नहीं कर सकता।

चमार की बात सुनकर सेठ सोचने लगा—इसकी भावना गजब की है। मेरे पास अब भी लाखों की सम्पत्ति है। फिर भी मैं ईश्वर को कोसता हूँ। और एक यह है जो रोज मजदूरी करके खाता है, फिर भी ईश्वर पर अखन्ड विश्वास रखता है। यह चमार क्या मुझसे अच्छा नहीं है ?

बात सेठ की समझ में आ गई। सेठ ने चमार की दवा खाई। उसने अपने लम्बे-चोड़े सट्टे के व्यापार को समेट लिया और ऐसा धन्धा करने लगा जिससे खुद को भी शान्ति मिले और दूसरों को भी। थोड़े ही दिनों में सेठ भी मस्त बन गया। उसे वैद्यों और डाक्टरों की दवा की जरूरत नहीं रही।

सेठ चमार को अपना उपकारी मानने लगा। वह सोचा

करता जिसने मुझे ईश्वर पर भरोसा करना सिखलाया और जिसने मुझे ऐसी दवाई दी है जैसी कि वैद्य और डाक्टर हजारों रुपया लेकर भी नहीं दे सकते थे, वह चमार मेरा बड़ा उपकारी है।

लोग ताकत के लिए दवा खाते हैं, मगर अनुभवी लोगों का कहना है कि जितने आदमी रोग से नहीं मरते, उतने दवा से मरते हैं।

सेठ ने सोचा—इस चमार का उपकार मानना उचित है। अतएव उसने चमार को बुलवा कर पचास रुपये के नोट उसके सामने रख दिये। उससे कहा—मेरे ऊपर तुम्हारा बड़ा उपकार है, इसलिए यह नोट ले लो। चमार ने प्रथम तो बहुत नाहीं की, मगर सेठ के बहुत आग्रह करने पर उसने नोट ले लिए।

नोट लेकर चमार अपनी दुकान पर आया। सोचने लगा—इन नोटों को कहाँ रखूं ? इस चिन्ता से उसने जल्दी दुकान बन्द करदी और घर चला गया। उसे एकदम पचास रुपये मिल गये। भला उसे क्या कमी रह गई ? घर आकर भी वह इसी विचार में पड़ा रहा कि इन्हें रखूं कहाँ ? कहीं ऐसा न हो कि चोर ले जावें या बच्चे ही फाड़ डालें ? आखिर चमड़े के टुकड़े रखने की एक टूटी-सी पेटी में उसने नोट रख दिये। इससे अधिक सुरक्षित जगह उसके पास थी ही नहीं। रात को वह सोया तो, मगर उसे यही चिन्ता बनी रही कि कहीं चूहे नोटों को काट न खाए! इस तरह चिन्ता करते-करते ही उसकी सारी रात व्यतीत हुई।

सवेरा हुआ। चमार सोचने लगा—रात में नींद नहीं आई और ईश्वर के भजन में भी मन नहीं लगता। दुकान जाने को भी चित्त नही चाहता। यह सब इन नोटो की ही करामात है! जब तक इन नोटों को मैं अपने घर से निकाल न दूंगा, मुझे चैन नहीं मिलने की। नोट हैं तब भी हाय हाय कराते हैं और कहीं नष्ट हो गए तब भी हाय-हाय कराएंगे। अतएव इन्हें सेठजी को

सौंप देने ही में मेरा कल्याण है।

वह नोट लेकर सेठ की दुकान पर पहुंचा। उसने नोट सेठ के सामने रख दिये और कहा—अपनी चीज आप ही संभालिए।

सेठ ने कहा—यह नोट वापिस लेने के लिए नहीं दिये हैं। तुमने मेरा उपकार किया है, इसलिए यह पुरस्कार में दिये हैं।

चमार—आपका पुरस्कार मुझे नहीं चाहिए। इसे आप ही संभालिए। मुझे तो भजन में ही आनन्द मिलता है।

इसके बाद चमार ने रात वाली समस्त घटना सेठ को सुनाई और अन्त में कहा—उपकार के बदले यह न देकर हम दोनों ही भगवान् के भजन में मस्त रहें। इसी में आनन्द है।

आखिर चमार ने नोट सेठ की ओर सरका दिये और आप उठ कर चल दिया। उसे ऐसा लगा, मानों सिर पर लदा हुआ भारी बोझ उतर गया है। वह हल्का हो गया और अपनी धुन में मस्त रहने लगा।

चमार की इस निस्पृहता का सेठ पर बहुत प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगा—इतनी सम्पत्ति होने पर भी मुझे सन्तोष नहीं है, और इस चमार को देखो कि न कुछ में भी कितना मस्त है! चमार ने प्रत्यक्ष बतला दिया है, कि सुख का असली कारण धन नहीं, चित्त का संतोष है। मैं इतने दिनों तक व्यर्थ ही चक्कर में पड़ा रहा!

कुछ दिनों बाद चमार बीमार पड़ गया। बीमारी में भी वह उसी भजन को गाया करता और कहता—प्रभो! अब तो बस तू ही तू है। पहले तो मुझे काम भी करना पड़ता था, परन्तु अब तो वह भी छूट गया है। मैं यही चाहता हूं कि इस बीमारी में भी मुझे किसी के आगे दीनता न दिखानी पड़े। तेरे प्रति मेरी श्रद्धा अखण्ड और अटल बनी रहे।

चमार की बीमारी का हाल सेठ को मालूम हुआ। सेठ ने

जाकर उसे देखा तो उस बीमारी में भी वह उसी प्रकार गा रहा है ! घर में खाने को नहीं है, फिर भी वह मस्त है और किसी के आगे हाथ नहीं पसारना चाहता । ओह ! इसकी महानता के आगे मैं कितना तुच्छ हूँ ? सब कुछ होते भी मैं इस दैवी सम्पदा से दरिद्र हूं !

सेठ ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि उसके परिवार को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे । चमार ने ऐसा करने से सेठ को बहुत रोका, पर सेठ ने कहा—मैं तुम्हें भिखारी समझ कर दान नहीं दे रहा हूँ। यह तो तुम्हारे उपकार का नगण्य उत्तर है। तुमने मुझे धर्म पर स्थिर किया है।

चमार के चित्त में लोभ नहीं था, इसी से वह भक्ति में लगा रहता था। कहा भी है—

कामी कपटी लालची, इनसे भक्ति न होय,
भक्ति करे कोई शूरमा, जाति वर्ण कुल खोय ।

भक्ति वही वीर करेगा, जिसने वर्ण और जाति का अभिमान भी त्याग दिया हो। हरिकेशी मुनि से कौन प्रेम नहीं करता ?

चमार नीरोग भी हो गया और धीरे-धीरे उसकी स्थिति भी सुधर गई। सेठ उसे अपना गुरु समझने लगा और वह भी भक्ति के मार्ग पर आ गया।

५६ : परमात्म प्रीति

जैसी दृष्टि हराम पै, तैसी हरि पै होय।
चला जाय वैकुण्ठ में, पल्ला न-पकड़े कोय।।

संसार के पदार्थों में, नीच कर्मों में जैसी प्रीति है, वैसी प्रीति अगर परमात्मा में हो जाय तो ईश्वर प्राप्ति में देरी ही न लगे। हराम से प्रीति छोड़कर हरि से प्रीति करो तो बेड़ा पार है। बहुत-से लोग ढोंग के लिए ईश्वर प्रेम का दिखावा करते हैं। पर जो सच्ची प्रीति करते हैं उन्हें ईश्वर मिलता है और जो ढोंग करते हैं उन्हें ढोंग ही मिलता है। ईश्वर की प्रीति कैसी हो, यह समझने के लिए एक स्थूल दृष्टान्त लो:—

एक महात्मा नगर के शहरपनाह के किनारे ध्यान में खड़े थे। उस नगरी की एक वेश्या सजधज कर नगर के भीतर रहने वाले अपने किसी प्रेमी से मिलने निकली। मगर नगर का फाटक बन्द हो चुका था। भीतर जाने का दूसरा मार्ग नहीं था। उसने इधर—उधर देखा तो एक ऊंची-सी चीज खड़ी हुई उसे दिखाई दी। प्रेमी से मिलने की आतुरता में उसने यही समझा कि यह कोई ठूंठ खड़ा है। उसने उसके ऊपर पैर रखकर ज्यों ही शहरपनाह पर चढ़ना चाहा, त्यों ही महात्मा क्रोधित हो उठे। ध्यान खोलकर उन्होंने कहा—दुष्टे! तुझे दीखता नही कि मैं मनुष्य हूं। तू इतनी अंधी हो रही है?

महात्मा की बात सुनकर वेश्या सहम गई। उसने मन ही मन कहा—आतुरता में मैंने इन महात्मा को ठूंठ ही समझ लिया था! वह ऊपर से नीचे गिर पड़ी। महात्मा से बोली—क्षमा कीजिए महाराज! मै समझी थी कि यह कोई ठूंठ खड़ा है।

महात्मा—तुझे इतना गर्व है कि तू मनुष्य और ठूंठ को एक ही समझती है! मुझे इतना क्रोध है कि चाहूँ तो अभी तुझे भस्म कर दूं!

वेश्या ने महात्मा को सन्तोष देना उचित समझा। वह बोली—महाराज, मुझ से तो भूल हुई ही, मगर आप वहाँ क्या करते थे?

महात्मा—देखती नहीं, हम साधु हैं। हमें और क्या काम है, परमात्मा का ध्यान लगा रहे थे।

वेश्या—महाराज, ढिठाई क्षमा हो। मैं पूछना चाहती हूँ कि आपका परमात्मा मेरे प्रेमी से बड़ा है या छोटा?

महात्मा—परमात्मा तेरे प्रेमी से क्या, सारे संसार से बड़ा है।

वेश्या—मैं तो परमात्मा से अपने प्रेमी को बड़ा समझती हूँ।

महात्मा—क्यों? कैसे समझती है?

वेश्या—मैं अपने प्रेमी की धुन में ऐसी मस्त थी कि आपका होना मुझे मालूम नहीं हुआ, पर आप परमात्मा के ध्यान में थे फिर भी आपको मेरा होना मालूम हो गया! अब आप ही सोचिए आपका परमात्मा बड़ा है या मेरा प्रेमी? अगर आपका परमात्मा बड़ा था और आप उसकी धुन में लगे थे तो लगे रहते। इस झमेले में क्यों पड़े?

वेश्या की बात सुनकर महात्मा विचार में डूब गए। सोचने लगे—वास्तव में वेश्या ठीक कह रही है। अगर इसके प्रेमी से मेरा परमात्मा बड़ा है तो उसकी धुन भी बड़ी होनी चाहिए और उस धुन में क्यों पता लगना चाहिए कि शरीर पर कौन चढ़ता और कौन उतरता है!

आखिर महात्मा ने वेश्या से कहा—तुम ठीक कहती हो। वास्तव में मेरा ध्यान पूरी तरह परमात्मा में नहीं था। जैसा तेरा ध्यान तेरे प्रेमी में है, वैसे ही मेरा ध्यान परमात्मा में लग जाय तो मैं तुझे अपना गुरु मानूंगा। हे प्रभो! यह वेश्या जैसे अपने प्रेमी को तन्मय दृष्टि से देखती है, वैसी ही दृष्टि मेरी भी तुझे देखने में हो जाय!

तात्पर्य यह है कि जैसा प्रेम दुनियां के पदार्थों के प्रति है, वैसा ही प्रेम अगर ईश्वर के प्रति हो जाय तो सिद्धि मिलने में

देर न लगे। सांसारिक प्रेम को, वैकारिक प्रेम को ईश्वर की ओर मोड़ लेना ही मुक्ति का मार्ग हैं। इसी को साधना कहते हैं।

५७ : लक्ष्मी

एक सेठ बड़े धनवान् ओर जितने धनवान् उतने ही उदार और जितने उदार उतने ही दानी तथा निरभिमानी थे। रात्रि के समय वह सो रहे थे। पिछली रात्रि के समय एक देवी ने आकर उनसे कहा—सेठ, सोते हो या जागते हो?

सेठ ने पूछा—कौन है?

देवी ने उत्तर दिया—मैं हूँ तुम्हारे यहाँ की लक्ष्मी।

सेठ—क्यों, क्या कहना है?

लक्ष्मी—मैं यह कहने आई हूं कि अब तुम्हारे घर से जाऊंगी।

सेठ—मेरे यहाँ तुम सात पीढ़ियों से रहती हो, अब क्यों जा रही हो? कुछ कारण बताओगी?

लक्ष्मी—एक घर में रहती-रहती ऊब गई हूं। अब कहीं दूसरे घर जाऊंगी।

सेठ—अच्छी बात हैं। जाती हो तो मैं नाहीं नहीं करता, परन्तु तीन दिन और ठहर जाओ।

लक्ष्मी ने तीन दिन और ठहरना स्वीकार किया। सेठ ने विचार किया—आखिर यह लक्ष्मी रहेगी तो है नहीं, फिर इसके द्वारा मैं कुछ लाभ क्यों न प्राप्त कर लूं? यह विचार कर सेठ ने इन तीन दिनो में घर में जितनी सम्पत्ति थी, सब जीवरक्षा,

परोपकार आदि में खर्च करके, अपना सब वैभव, घर-द्वार आदि दान कर दिया। अपने घर की सब महिलाओं को अपने-अपने पीहर जाने की सलाह दी। पुत्रों से कह दिया—तुम परदेश या जहाँ सुभीता और निर्वाह देखो वहां चले जाओ।

सेठ ने लक्ष्मी के वार्तालाप का वृत्तान्त सुनाकर कहा—मैंने तीन दिन के लिए उसे रोका है। तीन दिन के पश्चात् वह निश्चित रूप से जाएगी। इसलिए मैं जो कुछ कर रहा हुं, उसमें दुःख न मान कर आनन्द मानो। जब समय पलटेगा तब फिर हम सब लोग इकट्ठे हो जाएंगे।

सब अपने-अपने ठिकाने चले गए। सेठ ने अपना सभी कुछ लुटा दिया। तीसरे दिन, पिछली रात के समय लक्ष्मी फिर आई और कहने लगी—'अब मैं जाती हूँ।'

सेठ ने उत्तर दिया – मुझे जो कुछ करना था, कर चुका। अब तुम भले जाओ।

उधर लक्ष्मी गई, इधर सेठ ने सन्तोष के साथ विचार किया—जो भाग्य में होगा, करेंगे।

अपने सर्वस्व का दान करने से सारे नगर में सेठ की कीर्त्ति फैल गई थी। वह जिधर जाता, उधर ही लोग उसका आदर-सन्मान करते और 'सेठजी' कह कर पुकारते। परन्तु वह कहता—मैं सेठ नहीं रहा। मैं अब गरीब हूँ, अकिंचन हूँ। मगर लोग यह सुनकर उसकी और अधिक इज्जत करते थे।

दो-तीन दिन बीते कि लक्ष्मी फिर आई। उस समय सेठजी निश्चित भाव से किसी धर्मशाला में सो रहा था। पिछली रात के समय सेठ को आवाज देकर कहा—सेठ, जागते हो या सोते हो? सेठ ने कहा—जागता हूँ, कौन है?

लक्ष्मी—यह तो मैं लक्ष्मी हूँ।

सेठ—कहो, कैसे आई?

लक्ष्मी—मैं फिर तुम्हारे घर आती हूँ।

सेठ—तुम्हें जाने के लिए किसने कहा था ? जो इस प्रकार विना कारण चली जाय, उसे आना ही क्यों चाहिए ? तुम सात पीढ़ियों से मेरे यहाँ रहतीं, फिर चले जाने में झिझक नहीं हुई ? अब भी क्या भरोसा है ? जिसके स्वभाव में ऐसी चपलता है उसे रखने से क्या लाभ है ? देवी, अपने लिए और कोई ठिकाना खोजो। मैं इसी हालत में मजे में हूँ।

लक्ष्मी—मुझसे भूल हुई, परन्तु अब मैं तुम्हारे यहाँ ही रहूँगी।

सेठ—अच्छा, यह तो बताओ कि इतने दिन कहाँ रहीं और लौट कर मेरे पास ही क्यों आई हो ?

लक्ष्मी—मैं पहले राजा के यहाँ गई वहाँ भण्डार भरे थे पर मुझे सन्तोष नहीं हुआ। वह अन्याय का पैसा था। मैंने विचार किया—अन्याय के इस पैसे में रहने से मेरी कद्र घट जाएगी। तब वहाँ से चलकर सेठ-साहूकारों के यहाँ गई। मगर तुम्हारे सरीखा धर्मात्मा कोई नहीं मिला। इस कारण मैं फिर तुम्हारे पास आई हूं।

सेठ—आई तो अच्छी बात, मगर अब तो मेरे पास घर भी नहीं है। तुम्हें रखूगा कहाँ ?

लक्ष्मी—इसकी चिन्ता न करो। मैं जो उपाय बताऊँ सो करो। तुम सुबह जंगल जाते हो न ? तो लौटते समय तुम्हें एक साधु मिलेगा। उस साधु को आदर के साथ अपने यहाँ ले आना और खीर या जो भी कुछ हो, खिला कर एक डण्डा मारना। डण्डा मारते ही वह सोने का पुरुष बन जायगा। उस पुरुष का सिर मात्र बाकी रख कर सारा शरीर नित्य काट लेना और फिर उसे कपड़े से ढंक देना। वह जैसे का तैसा हो जायगा।

सेठ—ठीक है, पर एक बात सुन लो। तुम आती हो, यह

हर्ष की बात है, मगर तुम्हें जाने की इच्छा हो तो कह कर जाना और कहना भी सात दिन पहले । तुम्हें यह बात स्वीकार हो तो मैं तुम्हारे आने का स्वागत करूंगा ।

लक्ष्मी ने सेठ की यह बात स्वीकार की और अपने स्थान को चली गई ।

जो मनुष्य धर्म में निष्ठा रखता है, उसे किसी भी अवस्था में दुःख नहीं रहता । और वस्तु पर ज्यों-ज्यों आसक्ति की जाती है, वह त्यों-त्यों दूर भागती जाती है । अगर हर हालत में मध्यस्थ भाव रखा जाय तो गई हुई वस्तु भी मिल जाती है । कदाचित् न मिले तो भी उसके जाने की पीड़ा नहीं होती ।

सवेरे सेठ को जंगल की ओर से आता हुआ एक साधु मिला । सेठ उसे सत्कारपूर्वक अपने यहाँ ले आया । मित्र के यहां से लाकर उसे भोजन करा चुकने पर ज्यों ही एक लकड़ी मारी कि बाबाजी स्वर्ण-पुरुष बन गए । सेठजी को सन्तोष हुआ । उन्होंने पैर की तरफ से सोना काट-काट कर घर आदि तैयार करवाए । अपने सब कुटुम्बी-जनों को बुलवा लिया और पहले से भी अधिक आनन्द के साथ रहने लगा ।

इस सेठजी के पड़ोस में एक और सेठ रहता था । वह था तो मालदार, मगर उसकी प्रकृति दुनियाँ से न्यारी थी । 'चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय' यह उसकी जीवन-नीति का मूल-मन्त्र था । वह कभी एक पाई भी दान न देता था ।

पूर्वोक्त सेठ और कंजूस सेठ की पत्नियों में मित्रता थी । कंजूस सेठ की पत्नी ने एक दिन दानी सेठ की पत्नी से पूछा—तुम्हारे पति ने सब कुछ दे दिया था, फिर एक दम इतना ठाठ कैसे हो गया ? किस उपाय से इतना धन बरस पड़ा है ? वह उपाय हमें भी बतलाओ न ? कहीं चोरी करके तो नहीं लाये हैं ? नहीं तो उनके साथ तुम्हें और तुम्हारे लड़कों को भी भुगतना

पड़े ? तुम्हें न मालूम हो तो सेठजी से पूछ तो लेना !

दानी सेठ की पत्नी ने कहा—बात तो ठीक है। पूछूंगी। और उसने घर आकर अपने पति से पूछा—यह धन कहाँ से आ गया ? पहले सेठ ने टालमटूल की। उसने सोचा—स्त्री को गुप्त भेद नहीं बतलाना चाहिए, क्योंकि स्त्रियों में प्रायः विवेक नहीं होता। वे स्वभाव की भोली होती है। दूसरों की बातों में आकर जल्दी भेद खोल देती है।

सेठ को टालते देख वह बोली—मैं समझ गई। कहीं से चोरी करके लाये हो, इसीलिए तो बतलाते नहीं। पर जब तक न बतलाओ, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।

सेठानी के सत्याग्रह के सामने सेठजी को झुकना पड़ा। उन्होंने बाबा का मिलना, उसे भोजन कराना, डण्डा मारना और उसका स्वर्ण-पुरुष बन जाना, आदि वृत्तान्त कह दिया। सेठानी प्रसन्न हुई और जब अपनी सखी से मिली तो उसने वह वृत्तान्त उसे बतला दिया।

कंजूस की सेठानी पहले तो अचरज में पड़ गई और फिर लोभ में आ गई। उसने सोचा—धनी बनने का कितना सरल और सुन्दर उपाय है। उसने पति से सब हाल कहा और साधु को ले आने की भी सिफारिश की।

सेठ लोभी तो था ही, ऊपर से पत्नी का दबाव भी पड़ा। वह सुबह उठा और जंगल की ओर से आने वाले एक साधु को ले आया। उसे बड़े प्रेम से उत्तम भोजन कराया और उसके बाद पूरी ताकत से एक लट्ठ दे मारा। परन्तु सेठ का दुर्भाग्य समझो कि साधु सोने का पुरुष नहीं बना। यही नहीं, वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

सेठ ने सोचा—शायद मेरा लट्ठ धीरे से लगा हैं, इसी कारण यह सोने का नहीं बना। अब की बार उसने सारी ताकत लगाकर

लट्ठ लगाया । बाबाजी ने और चिल्लाना शुरू किया । मगर सेठ लोभ में पागल हो गया था । उसने आगा-पीछा कुछ नहीं सोचा और जब तक बाबाजी के तन में प्राण रहे वह लट्ठ पर लट्ठ लगाता ही रहा ! अन्त में बाबाजी चल बसे ।

बाबाजी की चिल्लाहट पाकर बहुत-से लोग सेठ के घर के सामने इकट्ठे हो गये । उन्होंने सेठ को पकड़ा और राजा के पास ले गए ।

राजा ने सेठ को बाबाजी की हत्या करने के अपराध में समुचित दण्ड दिया ।

तात्पर्य यह है कि उस उदार सेठ ने तो दान देकर, अपना सर्वस्व लुटा कर स्वर्ण-पुरुष बनाया था, मगर कंजूस सेठ दान दिये बिना ही स्वर्ण-पुरुष बनाने बैठा तो उसकी दुर्गति हुई ! जीवन में उदारता, नीति, ईमानदारी और समभाव होता हैं । तो किसी भी अवस्था में मनुष्य सुखी रह सकता है । ऐसा जीवन बिताने वाले को लक्ष्मी बिना बुलाये प्राप्त होती है ।

५८ : ठसक का रोग

एक सेठ के लड़के की सगाई दूसरे सेठ की लड़की के साथ हुई । लड़की वाला अधिक धनवान् था और लड़के वाला कम । जो ओछा होता है, वह अपना बड़प्पन अधिक दिखलाना चाहता है । अतएव लड़के वाले ने सोचा—लड़के का विवाह करने जाना हैं तो ठसक से जाना चाहिए । यह सोचकर उसने भीतर चाहे तांबा ही रहा हो, परन्तु सोने के कड़े, कण्ठी, अंगूठी आदि गहने बनवाए ।

सेठजी सब गहनों से सज कर और बरात लेकर लड़के की सुसराल गये। कभी अंगूठी पहनी तो थी नहीं, इसलिए अंगूठी पहन कर उनके हाथ करें-से हो गए। वह किसी, को बुलाने जाएं तो भी हाथ लम्बे और उंगलियाँ कर्री करके कड़े और अंगूठियाँ दिखलाते हुए 'पधारो साहब, पधारो साहब' कहते थे।

लड़की वाले ने कहा—हमारे समधी को ठसक रोग हो गया है। मगर इस रोग की दवा मेरे पास है। इनका इलाज कर देने में ही इनका कल्याण हैं। इस विचार से उसने हीरों का एक कण्ठा गले में डाल लिया और हाथों में हीरों की पहुंचियाँ पहन कर, अपने समधी के समान ही हाथ लम्बे करके उससे कहा—'पधारिये साहब, पधारिए।'

उस कण्ठे और पहुंचियों को देखते ही सेठजी का नूर घट गया। चित्त मलीन हो गया, मानो किसी ने उनका सारा जेवर छीन लिया हो!

विचार कीजिए, उसने पहना था तो इसका दिल क्यों दुखा? इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो कई बातें स्पष्ट हो जाएंगी। मनुष्य का आनन्द गहनों में नहीं है। गहनों में होता तो जो गहने पहले इस सेठ को आनन्द दे रहे थे, वही बाद में काँटे की तरह क्यों चुभने लगते? वास्तव में मनुष्य इस कल्पना में सुख मानता है कि मेरे पास अमुक चीज है जो दूसरों के पास नहीं हैं। लेकिन वही चीज जब दूसरों के पास भी हो जाती हैं तो उसका आनन्द जाता रहता है।

कल्पना कीजिए, किसी बाई के हाथों में चाँदी की चूड़ियाँ हैं। उसके सामने सोने की चूड़ियों वाली एक बाई आ बैठती है। अब चाँदी की चूड़ियों वाली बाई कहेगी—मेरी चूड़ियाँ क्या है, कुछ भी नहीं! और सोने की चूड़ियों वाली की प्रसन्नता का पार न रहेगा। यह अभिमान में डूब जाएगी। वह अपने को सुखी अनु-

भव करेगी । उसी समय हीरों की चूड़ियों वाली एक महिला वहाँ आ पहुंचती है । उसे देखकर सोने वाली के सुख पर पानी फिर जायगा· उसका मुख हवा हो जायगा । वह अपनी चूड़ियों को कुछ भी नहीं समझेगी ।

यह सब क्या बात है ? सुख कहाँ है ? सोने में सुख है या मनोभावना में ? ठीक तरह सोचो, विचार करो, समझो । अगर मनोभावना में ही सुख है तो तुम्हें कहीं भटकना नहीं है । वह तुम्हारे पास ही है । मृगतृष्णा में क्यों पड़ते हो ?

५१ : हठ

एक मनुष्य काशी गया । जब वह लौटकर आया तो अपनी माँ से कहने लगा—मैंने काशी के सब पण्डितों को हरा दिया ।

माँ ने पूछा—कितने पण्डित थे ?

उसने कहा—करीब ५०० होंगे ।

मां—कैसे विद्वान् थे ?

बेटा—बड़े-बड़े विद्वान् थे, ऐसे कि कुछ न पूछो बात !

माँ—एक दो तो जीतने से बाकी रहे होंगे ?

बेटा—एक भी नहीं रहने दिया मैंने ।

माँ—परन्तु तू पढ़ा तो है नहीं । उन्हें कैसे जीत लिया ?

बेटा—मैं पढ़ा नहीं तो क्या हुआ ? मुझे जीतने की कला तो पूरी आती है ।

माँ—कैसे जीता ?

बेटा—वे सब कुछ-कुछ बोलते रहे, परन्तु मैं यही कहता

रहा कि—तुम झूठे हो और मैं सच्चा हूं।

इस प्रकार वह काशी जीत आया। मूर्ख मनुष्य दूसरों की सुनता नही, समझता नहीं और अपनी-अपनी हाँके जाता है। उनके हठ को कौन तोड़ सकता है?

६० : महल का द्वार

किसी सेठ ने बहुत सुन्दर और बड़ा विशाल महल बनवाया। एक दिन उस सेठ के महल की ओर से एक महात्मा गोचरी (भिक्षा) के लिए निकले। सेठ ने सोचा—साधुजी आ गए हैं तो इन्हें अपना महल दिखलाऊं। महल देखकर महाराज प्रसन्न होंगे और जगह-जगह उसका बखान करेंगे। महाराज की गति सेठ को मालूम नहीं थी।

सेठ महात्मा को अपने महल में ले गया और वहाँ के ठाट-बाट बताने लगा। महात्मा ज्ञानी थे, इसलिए उन्होंने विचार किया कि मकान देखे बिना उपदेश देना ठीक नहीं।

सेठ ने बड़ी प्रसन्नता के साथ महल दिखलाते हुए कहा—देखिए, यह दरीखाना है, यह भोजनगृह है, यह शयनगृह है, यह बैठक है। इसके सामने के झरोखे को म्युनिसिपालिटी ने रोक दिया था, परन्तु मैंने लाखों रुपये खर्च करके झरोखा बनाया ही। यह देखिए, ऊपर चढ़ने के लिए 'लिफ्ट' लगा है। पहले के लोगों को ज्यादा ज्ञान नहीं था। इस कारण वे चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ रखते थे। अब विज्ञान का बोल-बाला है। पैसे तो लगते हैं मगर कितना सुभीता हो गया है! 'लिफ्ट' पर बैठे कि, ऊपर चढ़े। और यह धुआँ

निकलने की जगह है । इस प्रकार सेठ ने सारा महल दिखला कर महात्मा से पूछा—कहिए, कोई कसर तो नहीं है ?

साधु को सेठ का महल देख कर क्या आनन्द हो सकता था ? उन्होंने महल के प्रधान दरवाजे की ओर संकेत करके कहा—इसमें एक बात खराब है—यह दरवाजा । यह क्यों रखा है ?

सेठ मुस्कराया । उसने कहा—आखिर आप साधु ही तो ठहरे ! आप मकान का हाल क्या जानें ? दरवाजा न होता तो आते-जाते कहाँ से ? साधुजी बोले—कुछ भी हो, परन्तु यह दरवाजा नहीं रखना था ।

सेठ ने कहा—आप कैसी भोलेपन की बात करते हैं ?

साधु ने गम्भीरता से कहा—मैं ठीक कहता हूँ । किसी रोज लोग इसी दरवाजे से तुझे निकाल देंगे ।

साधु की बात सुनकर सेठ का नशा उतर गया । उसने एक लम्बी-सी साँस लेते हुए कहा—मूर्ख, जहाँ जाता हैं, उस दरवाजे की तो तुझे चिन्ता नहीं है और ऐसी भावना में पड़ा है जैसे अमर रहेगा ! मैं इस महल में रहने के लिए तुझे मनाई नहीं करता, मगर यह कहता हूँ कि उसमें लिप्त न हो जाना । इस दरवाजे को सदा याद रखना कि इसी से तुझे जाना होगा । उस समय इस घर में रहने वाला कोई भी व्यक्ति तेरा साथ नहीं देगा । तेरा किया हुआ धर्म ही साथ जाएगा । इसलिए जब तू इस महल में रहे तो अपने मन के महल में परमात्मा को रखना ।

६१ : पतिव्रता

राम-चरित्र में दो मित्रों की कथा आई है। दो मित्र थे। उनमें से एक का विवाह हो गया। दूसरे ने उसकी पत्नी को देखा तो वह उस पर मोहित हो गया। उसे खाना-पीना, सोना-बैठना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वह दिनों-दिन सूखता चला जाता था।

पहले मित्र ने पूछा—तुम बिना रोग सूखते क्यों चले जाते हो ?

दूसरा मित्र—कुछ भी तो नहीं है। पता नहीं, क्या कारण है!

पहला—छिपाने का यत्न मत करो। हो सकेगा तो मैं आपकी चिन्ता दूर करने का उपाय करूँगा।

दूसरे मित्र ने पहले तो टालमटूल की, मगर अन्त में मित्र का आग्रह देख सच्ची बात कह दी। आखिर मित्र, से कपट तो वह कर नहीं सकता था। कहा भी है:—

गुरु से कपट, यार से चोरी,
कै हो अन्धा, कै हो कोढ़ी।

मित्र के हृदय की बात सुनकर वह सोचने लगा—विचित्र समस्या है! ऐसे अवसर पर मुझे क्या करना चाहिए ? अन्त में उसने निर्णय किया—मैं अपनी मित्रता निबाहूँगा और देखूँगा कि इसका परिणाम क्या आता है ?

इस प्रकार सोचकर उसने अपने मित्र को तसल्ली देते हुए कहा—धैर्य रक्खो। यही बात है तो मैं अपनी स्त्री तुम्हें दूँगा।

पहले मित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लज्जा और

आश्चर्य के कारण वह अवाक् होकर अपने मित्र की ओर देखने लगा। थोड़ी देर में सँभल कर उसने कहा—नहीं, ऐसा मत करना।

घर आकर उसने अपनी पत्नी से कहा—मैं जो कहूँगा सो करोगी ?

पत्नी—आज ऐसी शंका क्यों ? क्या मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है ?

तब वह बोला—नहीं, सदा और बात हुआ करती थी, आज और ही बात है !

पत्नी—मैं आपको सावधान देखती हूँ। आप जो आज्ञा देंगे, उचित ही देंगे। फिर मुझे उचित-अनुचित का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है ? आप आज्ञा दीजिए, मैं उसका अवश्य पालन करूँगी।

वह बोला—तुम शृङ्गार करके मेरे मित्र के घर जाओ।

पत्नी ने आँखें गड़ा कर अपने पति के चेहरे की ओर देखा कि कहीं दिल्लगी तो नहीं कर रहे हैं ? मगर उसके चेहरे की गम्भीरता ने तत्काल ही उसकी शंका का निवारण कर दिया। तब उसने सोचा - आज पति का प्रेम कुछ निराला ही है। मेरी इज्जत से पति की इज्जत ज्यादा है। फिर न मालूम क्यों उदारता दिखलाने के लिए यह आज्ञा दे रहे हैं। वह धर्मसंकट में पड़ गई। वह मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना करने लगी —प्रभो ! मुझे रास्ता दिखलाइए। पति की आज्ञा न मानना भी उचित नहीं है और मानती हूँ तो धर्म-भंग होता है। ऐसी अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए ?

अन्त में उसके हृदय की भावना फूली। उसने विचार किया—मनुष्य चाहे तो किस जगह और किस परिस्थिति में अपने धर्म की रक्षा नहीं कर सकता ? और पति से कह दिया —आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं अवश्य जाऊँगी। पर आप

विचार कर लें। आप स्वयं धर्मात्मा हैं और बुद्धिमान् हैं। अतः मुझे अपनी बुद्धि दौड़ाने की आवश्यकता नहीं है।

पति ने कहा—अच्छी बात है, जाओ।

पति की आज्ञा मानकर स्त्री चली। पति भी पीछे-पीछे चला कि देखें, क्या होता है! स्त्री ने जाकर मित्र के किवाड़ खटखटाए। मित्र ने पूछा—कौन?

स्त्री—जिसे याद करते हो वही।

वह आश्चर्य-युक्त होकर उठा और उसने किवाड़ खोले। मित्र की स्त्री को देखकर उसके आँसू निकल पड़े। वह सोचने लगा—दुनियाँ में मेरे समान कोई नीच नहीं है, जिसने अपने मित्र की स्त्री की माँग करते हुए संकोच नहीं किया! मैं कितना पामर हूँ! पशुओं से भी गया बीता! और वह मित्र? धन्य है, वह मनुष्य नहीं, देवता है!

उसने आई हुई मित्र-पत्नी को बिठलाया। इसी समय उसका मित्र भी आ पहुंचा। उसने आते ही अपने मित्र की जो मुखमुद्रा देखी तो समझ गया कि कुछ गजब होने वाला है!

पहला मित्र उन्हें वहीं बैठा छोड़ पिछवाड़े की ओर गया और फाँसी का फन्दा लगा कर प्राण त्यागने को तैयार हो गया। दूसरे मित्र को पहले ही आशंका हो गई थी। वह भी पिछवाड़े की ओर पहुँचा। मित्र को फाँसी लगाते देख उसने फाँसी का फँदा काट दिया और कहा—पागल हुए हो? यह क्या कर रहे हो?

उसने हड़बड़ा कर कहा—तुम यहाँ क्यों आये? मुझे पापी को मरने देना ही योग्य है।

दूसरे मित्र ने कहा—मैं जान गया था कि तुम इधर क्यों जा रहे हो। खैर, जो हुआ सो हुआ। इसमें मेरी और तुम्हारी कोई विशेपता नहीं है। विशेपता है इस पतिभक्ता स्त्री

स्त्री, जो सब पुरुषों को भाई के समान समझती हुई भी मेरी आज्ञा मान कर तुम्हारे पास चली आई।

पहले मित्र ने कहा—यह मेरी माता है। इसने मुझे नया जीवन दिया है।

स्त्री ने कहा—मैंने परमात्मा से रास्ता दिखलाने के लिए प्रार्थना की थी। उसने रास्ता दिखलाया और मैं चली आई। मैं जानती थी कि मेरा हृदय जब पवित्र है तो उसके सामने अपवित्रता टिक ही नहीं सकती।

पतिव्रता की शक्ति के सामने दानव भी हार मानते हैं।

६२ : 'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता'

किसी किसान ने एक खेत बोया। खेत में पक्षियों ने जुआर के पौधों में घोंसला बना लिया। घोंसले में पक्षी भी रहते थे और पक्षियों के बच्चे भी रहते थे। बच्चे उड़ने नहीं लगे थे, इस कारण पक्षिणी चुग्गा ला-लाकर उनके मुँह में देती।

एक दिन किसान अपने खेत की मेंड़ पर आया। उसने आशा और सन्तोष की नजर सारे खेत पर डाली। फिर सोचा—खेत पक गया है, अब काट लेना चाहिए। यह सोचकर उसने खेत के रखवाले से और अपने लड़के से कहा—देखो भाई, खेत अब पक गया है। काटने में ढील करना ठीक नहीं है। आज फलाँ गाँव से पाहुने आने वाले हैं। उनकी सहायता से कल खेत काट डालेंगे।

पक्षी के बच्चों ने किसान की बात सुनी। वे बुरी तरह

घबराए । पक्षिणी के आते ही वे रोकर कहने लगे - माँ, अब इस जगह रहना ठीक नहीं है । जल्दी से जल्दी यहाँ से उड़ चलना चाहिए ।

पक्षिणी ने पूछा—क्यों ? क्या बात है ?

बच्चे बोले—माँ, आज खेत का मालिक किसान आया था। वह कहता था—कल पाहुनों की सहायता से खेत को काटेंगे । खेत कल कट जायगा । अपन यहाँ रहकर क्या करेंगे ? यहाँ रहे तो खेत के कटते समय मुसीबत भी आ सकती है । उड़ चलना ही ठीक है ।

पक्षिणी ने हँसकर कहा - बच्चों, तुम भोले हो । तुम फिक्र मत करो । मजे में पड़े रहो । पराये भरोसे खेत नहीं कटा करते ।

बात भी ऐसी ही हुई । खेत नहीं कटा ।

दूसरे दिन किसान फिर आया । उसने रखवाले से फिर कहा—कल पाहुने नहीं आये और खेत भी नहीं कटा । अब कल गाँव के अपने भाई-बन्दों को बुला लेंगे और उनकी सहायता से खेत काट लेंगे ।

पक्षी के बच्चों ने फिर यह बात सुनीं और पक्षिणी के आते ही कहा—माँ, कल नहीं उड़े तो आज ही उड़ चलें । कल किसान अपने भाई-बन्दों की सहायता से खेत काटेगा । हम लोगों को पहले से ही चला जाना चाहिए ।

पक्षिणी ने कहा—तुम चिन्ता मत करो । बिना अपने किये कुछ नहीं होता । अपनी ताकत के बिना कोई मददगार नहीं होता ।

पक्षिणी ने ठीक ही कहा था । दूसरे दिन भी खेत नहीं कट सका ।

तीसरे दिन किसान फिर आया और कहने लगा—बड़ी भूल की जो पाहुनों और भाई-बन्दों के भरोसे बैठे रहे । नहीं तो खेत कभी का कट जाता । दूसरों के भरोसे काम नहीं होता । कल

अपने सब घर वाले ही भिड़ पड़ें और खेत काट लें। लड़के तू कल सवेरा होते ही घर के सब लोगों को लेकर आ जाना। और रखवारे, तू भी तैयार रहना। कल खेत अवश्य काट लेंगे।

पक्षी के बच्चों ने फिर किसान की बातें सुनी और अपनी माँ के आते ही कहा—माँ, अब तो उड़ना ही पड़ेगा। किसान ने अपने घर वालों के साथ आकर कल खेत काटने के लिए कहा है।

पक्षिणी ने कहा—हाँ, अब उड़ चलना चाहिए। किसान ने जब स्वयं खेत काटने का विचार किया है तो जरूर कट जायगा। जो अपनी हिम्मत से काम करता है, वही काम कर पाता है। और पक्षी, पक्षिणी तथा बच्चे उस खेत से उड़ गए।

किसान पाहुनों और भाई-बन्दों के भरोसे रहा तो उसका काम नहीं हुआ। वे उसके काम न आये। आज वह स्वयं अपने घर वालों को लेकर भिड़ पड़ा। तब भाई-बन्दों ने देखा कि खेत कट रहा है और हम मदद करने नहीं जाएँगे तो कल हमारी मदद करने कौन आयेगा? यह सोचकर वे भी आ पहुँचे और खेत कट गया।

यह दृष्टान्त है। जब पक्षिणी भी सोचती है कि पराये भरोसे काम नहीं होता तब क्या आप लोगों को नहीं सोचना चाहिए? आज आप लोग परावलम्बी हैं, आलसी हैं, सब काम नौकरों से ही कराते हैं और खुद काम करने में असमर्थ हैं। इस मनोवृत्ति से न व्यवहारिक कार्य होता है और न धार्मिक ही हो पाता है। निश्चित समझ लीजिए कि पराये भरोसे काम नहीं होता। कहावत प्रसिद्ध है—'आप मरे विना स्वर्ग नहीं मिलता।'

६३ : वीर

एक सेनापति मुनियों के समीप बैठा था। मुनियों ने साधुता की प्रशंसा करते हुए कहा—'वीर पुरुष ही साधु हो सकता है।

सेनापति ने कहा—'आप अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा कर रहे हैं। अगर आप हाथ में तलवार लें तो पता चलेगा कि वीरता किसे कहते हैं? आप साधुओं को वीर बतलाते हैं पर जहाँ तलवारों की खड़खड़ाहट होती है वहाँ साधु नहीं ठहर सकते।

सेनापति की बात सुनकर साधु हँस दिये। फिर बोले—'सेनापति! जोश में आ जाने से सच्ची बात समझ में नहीं आती। शांतिपूर्वक विचार करोगे तो साधु की वीरता का पता चल जायगा। अगर एक आदमी अकेला ही दस हजार योद्धाओं को जीत ले तो उसे आप क्या कहेंगे?'

सेनापति—ऐसा होना संभव प्रतीत नहीं होता, फिर भी यदि कोई दस हजार योद्धाओं को जीत ले तो वह अवश्य ही वीर कहलायगा।

साधु—ठीक है। लेकिन कोई दूसरा आदमी, दस हजार योद्धाओं को जीतने वाले को भी जीत ले तो उसे आप क्या कहेंगे?

सेनापति—उसे महावीर कहना होगा।

साधु—देखो, संसार में बड़े-बड़े शस्त्रधारी थे। उदाहरण के लिए रावण को ही समझ लीजिए। रावण प्रचण्ड वीर था। उसने लाखों पर विजय प्राप्त की थी। मगर जिस काम ने उसे भी जीत लिया वह वीर कहलाया कि नहीं? रावण ने हजारों-लाखों योद्धाओं को पराजित कर दिया, मगर सीता की आँखों को वह न जीत सका। अतएव काम ने पराजित करके उसे नचा डाला। जिसके प्रबल प्रताप के आगे बड़े-बड़े राजा-महाराजा नतमस्तक होते

थे, जिसकी प्रचण्ड शक्ति से बड़े-बड़े शूरवीर भी अभिभूत हो जाते थे, वह लाखों को जीतने वाला रावण, अबला कहलाने वाली सीता के आगे हाथ जोड़ने लगा और उसके पैरों में पड़ने लगा। मगर सीता ने उसे ठुकरा दिया।

यहां प्रश्न खड़ा होता है—वीर कौन था ? रावण या काम ?

सेनापति—काम। काम को जीतना बहुत कठिन है।

साधु—काम लाखों को जीतने वाला वीर है। मगर जो सत्वशाली पुरुष वीर, काम को जीत लेता है उसे क्या कहना चाहिए ? काम-विजय का ढोंग करने की बात दूसरी है, मगर सचमुच ही जो काम को पराजित कर देते हैं उन्हें क्या कहेंगे ? ऐसा महान् पराक्रमी पुरुष 'महावीर' कहलाता है।

साधु अकेले काम को नहीं जीतता किन्तु क्रोध, मोह, मत्सरता आदि विकारों को भी जीतता है। इस प्रकार इन सब विकारों को जीत लेना क्या साधारण बात है ?

मुनि के स्पष्टीकरण को सेनापति ने सहर्ष स्वीकार किया। उसने कहा—काम, क्रोध, मोह आदि समस्त विकारों को जीत लेना तो वीरता है ही, किन्तु इनमें से एक को जीत लेना भी वीरता है।

६४ : व्यापार की बेईमानी

सुनने में आता है कि कई लोग दो तरह के बांट-पैमाने रखते हैं। एक तो नियत बांट-पैमाने से कम होते हैं, और दूसरे अधिक। जब किसी को कोई वस्तु देनी होती है, तब तो उन बांट-पैमाने से तोलते-नापते हैं जो कम होते हैं और किसी से लेनी होती है, तब उन बांट-पैमाने से तोल नापकर लेते हैं, जो अधिक होते हैं। कई लोग पूरे बांट-पैमाने रखकर भी तोलने नापने में ऐसी चालाकी से काम लेते हैं, कि दी जाने वाली वस्तु तो कम

जावे और ली जाने वाली वस्तु अधिक आवे। तौलने नापने में किस तरह बेईमानी की जाती है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

संग्रामसिंह नाम के एक राजपूत सज्जन थे। वे थे तो गरीब, परन्तु थे सत्यभक्त। उनकी स्त्री भी बड़ी पतिव्रता थीं। दम्पती बड़े धैर्य-पूर्वक अपनी गरीबी के दिन काटते थे। गरीबी से घबरा कर सत्य छोड़ने का तो कभी विचार भी नहीं करते थे।

संग्रामसिंह की स्त्री, गर्भवती थी। जब प्रसवकाल समीप आया, तब उसने अपने पति से कहा—"सन्तान-प्रसव के पश्चात् ही मुझे अजवायन आदि की आवश्यकता होगी। घर में अजवायन था तो सही, परन्तु वह कहीं ऐसी जगह रखा गया है, जो मिलता नहीं है। ठीक समय पर अजवायन के लिये दौड़-धूप न करनी पड़, इसलिये कहीं से एक सेर अजवायन, उधार ले लेते, तो अच्छा होता।"

पत्नी की बात के उत्तर में संग्रामसिंह ने कहा—मैं किसी से उधार लेना अनुचित समझता हूँ। जब पास में पैसे होंगे, तब मोल ले आऊँगा।

संग्रामसिंह की पत्नी ने, फिर प्रार्थना की, अपन गृहस्थ हैं, इसलिए ऐसे समय में उधार लेने में कोई हर्ज तो नहीं है। अजवायन की आवश्यकता शीघ्र ही होगी, और पैसों का क्या ठीक है कि कब हाथ में आवें? फिर भी यदि आप उधार लाना ठीक न समझे, तो घर का कोई बर्तन बंधक रखकर ले आवें।

घर की एक थाली बंधक रखकर अजवायन लाने के लिये, संग्रामसिंह बाजार गये। एक दुकान पर जाकर, संग्रामसिंह ने दुकानदार से कहा—मुझे एक सेर अजवायन दे दीजिये।

संग्रामसिंह की गरीबी दशा को दुकानदार जानता था, इसलिए उसने—यह समझकर, कि ये अजवायन उधार माँग रहे हैं—संग्रामसिंह की बात सुनी-अनसुनी कर दी। संग्रामसिंह के दो तीन बार कहने पर भी, जब दुकानदार ने ध्यान नहीं दिया, तब संग्रामसिंह दूकानदार का अभिप्राय ताड़ गये और पास की थाली दुकानदार को बताते हुए कहा कि मैं उधार लेने नहीं आया हूँ। उसकी कीमत के बदले यह थाली बंधक रखकर अजवायन लेने आया हूँ।

थाली देखकर, दूकानदार ने संग्रामसिंह की बात सुन एक सेर अजवायन तोल दिया, और अजवायन की कीमत के बदले, थाली बंधक रख ली।

कपड़े में अजवायन लेकर, संग्रामसिंह अपने घर गये। घर पहुंचने पर, उनकी स्त्री ने उनसे कहा—मैंने आपको अकारण ही कष्ट दिया। घर में रखा हुआ अजवायन मिल गया, अतः इस अजवायन की आवश्यकता नहीं रही। पत्नी की बात सुन कर, संग्रामसिंह वैसे ही दूकानदार के यहाँ लौट गये, और उससे कहा कि मेरे घर में अजवायन मिल गया है, इसलिये आप अपना अज-वायन लौटा लीजिये। दुकानदार नाराज होकर संग्रामसिंह से कहने लगा - मैं, बेची हुई चीज नहीं लौटाता। अब इस अजवायन का तुम चाहे जो करो।

संग्रामसिंह ने नम्रतापूर्वक दुकानदार से कहा—'आपके अजवायन का कुछ बिगड़ा तो है नहीं। अभी ही ले गया और अभी ही लौटा लाया हूँ। मेरे यहाँ जब अजवायन मिल गया तब इस अजवायन को क्या करूँगा? क्या ठीक है कि पैसे कब हाथ में आवें, और तब तक एक बर्तन आपके यहां बंधक रखा रहेगा, जिसके बिना घर में कष्ट होगा। यद्यपि आपकी कोई हानि तो हुई नही है, फिर भी यदि आप चाहें, तो नुकसान

स्वरूप कुछ पैसे ले लीजिए।

संग्रामसिंह की अन्तिम बात मान कर, दूकानदार ने कृपा दिखाते हुए अजवायन वापस लेना स्वीकार किया। उसने अजवायन को फिर तोला, और जिसे उसने सेर भर कह कर दिया था, उसे ही तीन पाव ठहरा कर संग्रामसिंह से कहने लगा कि तुम बेईमानी करते हो? पाव भर अजवायन घर रख आये और अब लौटाने आये हो?

संग्रामसिंह ने कहा—मैं अजवायन को जैसा ले गया था वैसा ही लौटा लाया हूँ। इसमें से एक दाना गिरने भी नहीं दिया हैं। निकालना तो दूर रहा। ऐसी दशा में, एक दम से पाव भर अजवायन कैसे कम हो गया?

चोर दूकानदार, संग्रामसिंह की इस बात पर कब ध्यान देने लगा था। दूकानदार की यह बेईमानी देखकर, संग्रामसिंह को संसार से घृणा हो गई। वे दूकानदार को अजवायन लौटा कर, थाली भी उसी के यहाँ छोड़ आये और घर आकर, ससार से विरक्त हो गये। उनके नाम से बना हुआ निम्न पद आज भी गाया जाता है।

संग्राम कहे सुण साह जी, है वो को वोई सेर।
लेता देता पाव को, पड़यो किसी विधि फेर?
पड्यो किसी विध फेर, कमी नहीं राखी काँई।
तोबा बार हजार, इसी थे करी कमाई॥
साहब लेखो माँगसी, लेसी मूँडो फेर।
संग्राम कहे सुण साहबा, हैं वो को वोई सेर॥

६५ : आत्म-निरीक्षण

एक बार बादशाह ने एक चोर को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। प्राण-हरण के लिए बादशाह ने यह उपाय बताया, कि एक मैदान में बहुत से पत्थर एकत्रित किये जावें, और चोर को उस मैदान में खड़ा किया जावे। फिर सारे नगर के लोग चोर को पत्थरों से मारें और इस प्रकार चोर का प्राण हरण किया जावे।

बादशाह के आदेशानुसार, एक मैदान में पत्थर एकत्रित गये, और ढिंढोरे द्वारा सारे नगर के लोग वहाँ बुलाये गये। चोर को भी उस मैदान में खड़ा किया गया। लोगों को बादशाह का हुक्म सुनाकर कहा गया, कि सब लोग इस चोर को पत्थरों से मारें। बादशाह का हुक्म सुनकर, सब लोग, चोर को पत्थर मारने के लिए तैयार हुए। इतने ही में वहाँ ईसा आ गये। चोर को पत्थर मारने के लिए तैयार हुए लोगों को रोक कर ईसा ने उनसे कहा—इस चोर को वही पत्थर मार सकता है, जो स्वयं चोर न हो। दूसरे के हकों को, जबरदस्ती हरण करना ही चोरी है, फिर चाहे प्रत्यक्ष रूप से दूसरे के हकों को हरण किया जावे, या परोक्ष रूप से, और सभ्य उपायों से हरण किया जावे, या असभ्य उपायों से। आप लोग अपने अपने मन में विचार कर देखें, कि आप स्वयं तो किसी के हकों को हरण नहीं करते? यदि आप लोग भी दूसरे के हकों को हरण करते हैं, तो फिर इस चोर को पत्थर मारने के आप अधिकारी कैसे हैं? स्वयं वही अपराध करना, और उसी अपराध के लिए दूसरे को दण्ड देना, न्याय नहीं है।

ईसा की उक्त बात का, लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा, कि

लोग हाथों से पत्थर डालकर, अपने-अपने घर चले गये।

बादशाह के पास ईसा के नाम की पुकार गई कि ईसा ने पत्थर मारने के लिये आये हुए सब लोगों को भड़का दिया, इससे सब लोग अपने-अपने घर चले गये। बादशाह ने, ईसा को पकड़ मंगवाया और ऐसा करने का कारण पूछा।

ईसा ने बादशाह से कहा—आपने इस चोर को पत्थरों से मार डालने की आज्ञा दी है, परन्तु आप अपने हृदय में भली भाँति विचार करके कहिये कि क्या आप चोर नहीं हैं? प्रत्यक्ष में या परोक्ष में, सभ्य उपायों से या असभ्य उपायों से, दूसरे के हकों को हरण करना ही चोरी है। क्या आप दूसरे के हकों को हरण नहीं करते? यदि करते हैं, तो क्या आप चोर नहीं हैं? ऐसी दशा में, आप इसे पत्थर मार कर मार डालने की आज्ञा देने के अधिकारी कैसे रहे? आप पत्थर मार-मार कर चोरी को ही क्यों नहीं मार डालते? आप अपनी चोरी को तो मारते नहीं और इस चोर को मार डालने की आज्ञा देते हैं, यह कहाँ का न्याय है?

ईसा के उक्त कथन का, बादशाह पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। उसने पश्चात्ताप किया और ईसा को छोड़ देने के साथ ही चोर को भी छोड़ दिया।

६६ : सभ्य चोरी

कइयों ने, विज्ञापनबाजी को ही चोरी का साधन बना रखा है। पत्रों, हैण्ड-बिलों आदि द्वारा विज्ञापन करके, लोगों से आर्डर

या पेशगी कीमत लेते हैं, परन्तु विज्ञापन के अनुसार न माल ही देते हैं, न कार्य ही करते है। विज्ञापन द्वारा किस तरह चोरी की जाती है, इसके लिये, एक विज्ञापन के विषय में सुनी हुई बात इस प्रकार है:—

एक विज्ञापन बाज ने, मक्खियों से बचने की दवा का विज्ञापन किया। उसने अपने विज्ञापन में लिखा कि 'केवल १ आने के टिकट भेज देने मात्र से, हम वह दवा भेजते हैं, जिसे भोजन करते समय पास रखने पर, मक्खियें नहीं सतातीं।' लोगों ने उसके पास एक-एक आने के टिकट भेजे। विज्ञापक ने, उन टिकटों में से, तीन पैसे के टिकिट तो अपनी जेब में रखे, और एक पैसे के कार्ड पर, टिकिट भेजने वालों को उत्तर दे दिया, कि "आप भोजन करते समय, एक हाथ हिलाते जाइये, फिर मक्खियें नही सता सकतीं।"

मतलब यह है कि आज के कानूनों से असभ्य चोरियों की संख्या चाहे कम हो गई हो, परन्तु सभ्यता की ओट में होने वाली चोरियों की संख्या में तो वृद्धि ही सुनी जाती है। असभ्य उपायों से चोरी करने वाले को, राज्य भी दण्ति करता है, और समाज भी घृणा की दृष्टि से देखता है, परन्तु इन सभ्य उपायों से चोरी करने वाले को, न तो राज्य ही दण्ड देता है, और न समाज में ही वह घृणित माना जाता है। हाँ ऐसी चोरी करने वाला, समाज में 'चतुर' या 'होशियार' अवश्य कहलाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है, कि आज, संसार का अधिकांश समाज चोरी के पाप में घिरा हुआ है।

६७ : परोपकारी

संसार में श्रमजीवी मूर्ख समझे जाते हैं, मगर देखा जाय तो संसार का अमन-चैन उन्हीं पर निर्भर है। बुद्धिजीवी लोगों को प्राण देने वाले श्रमजीवी ही हैं। 'अन्नं वै प्राणाः अर्थात् अन्न प्राण हैं', इस उक्ति के अनुसार श्रमजीवी कृषक ही तो बुद्धिजीवी लोगों को अन्न रूप प्राण देते हैं।

एक व्यक्ति को लोग मूर्खराज कहा करते थे। वह वास्तव में मूर्ख नहीं, दयालु था। उसे किसी प्रकार तीन बूटियाँ मिल गईं। उनमें यह गुण था कि उनमें से एक का सेवन करने से सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते थे। मूर्खराज के पेट में दर्द था, अतएव एक बूटी उसने खुद खाली। उसने सोचा—अपने ऊपर प्रयोग करना ठीक भी होगा। इससे पता चल जाएगा कि वास्तव में यह बूटी सब रोगों को नाश करने वाली है या नहीं? उसने बूटी खाई और उसके पेट का दर्द चला गया। बूटी की परीक्षा भी हो गई, मूर्ख-राज बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—बड़ी अच्छी चीज़ है।

मूर्खराज घर आया। उसने देखा—घर का कुत्ता पड़ा तड़-फड़ा रहा है। कुत्ते मुँह से अपना दर्द नहीं बतला सकते। अतएव मूर्खराज की समझ में नहीं आया कि कुत्ते को क्या दर्द है? उसने सोचा—सम्भव है, कुत्ता भूखा हो और भूख का मारा तड़फ रहा हो। वह घर में से रोटी लाया। कुत्ते के सामने रख दी। मगर कुत्ते ने रोटी नहीं खाई। तब मूर्खराज ने विचार किया—इसे कोई दर्द मालूम होता है। मेरे पास जो बूटी है, वह फिर क्या काम आएगी? एक बूटी से मेरा दर्द गया है और दूसरी से इसका दर्द मिटा देना चाहिए।

क्या बुद्धिवादी लोग ऐसा करने को तैयार होंगे ? क्या कुत्ते के प्राणों की उनके आगे इतनी कीमत है कि ऐसी अनमोल बूटी देकर उसके प्राणों की रक्षा की जाय ? बुद्धिवादी ऐसा करना बूटी का अपव्यय समझेगा। मगर वह तो मूर्खराज जो ठहरा ? उसने एक बूटी रोटी में मिलाकर किसी तरह कुत्ते को खिला दी। थोड़ी देर में कुत्ता ठीक हो गया और पूँछ हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

जो मनुष्य कुत्ते को एक भी टुकड़ा डाल देता है, उसे कुत्ता भौंकता नहीं है लेकिन मनुष्य क्या करता हैं ? लड्डू खिलाने वाले पर भी मनुष्य भौंकने से कब चूकता है ? लोग लड्डू खिलाने वाले के लड्डू भी खा जाते हैं और उस पर भौंकने भी लगते है। फिर भी मनुष्य के सामने कुत्ते के प्राणों की कोई कीमत ही नहीं है !

जब घर वालों ने देखा कि मूर्खराज ने कुत्ते को सहज ही ठीक कर दिया है तो वे कहने लगे—हम इसे मूर्ख समझते थे, मगर यह तो होशियार जान पड़ता है। इसने देखते-देखते कुत्ते को ठीक कर दिया ! एक ने उससे पूछा—क्या तुम्हें कुछ जादू आता है कि आनन-फानन कुत्ते को ठीक कर दिया ?

मूर्खराज ने बाकी बची बूटी दिखाकर कहा—मैं जादू नहीं जानता हूँ, पर मेरे पास यह बूटी है। इस बूटी की करामात से ही कुत्ता अच्छा हुआ है। इस बूटी से सब प्रकार के रोग मिट जाते हैं।

जो मूर्खराज अभी-अभी होशियार हो गया था, वही फिर अब बुद्धू बन गया। घर के लोग उससे कहने लगे—आखिर तो मूर्खराज ही ठहरा न ! ऐसी अमृत सरीखी अनमोल बूटी कुत्ते को खिलाकर तू ने अपना नाम सार्थक कर दिखाया। भला, यह कुत्ता अच्छा होकर क्या करेगा ? किसी दूसरे को अच्छा किया होता तो कुछ लाभ भी होता।

बुद्धिमान् कहलाने वाले अन्य लोग भी ऐसा ही सोचते होंगे। बेचारे कुत्ते पर कौन दया करना चाहता है ? लेकिन किसी प्रकार की आशा से किसी का भला करना सच्ची करुणा नहीं है। निरीह भाव से—बदला पाने की आशा न रखते हुए दूसरों की भलाई करना ही वास्तव में करुणा है।

भगवान् पार्श्वनाथ को साँप से कुछ मिलना नहीं था। फिर भी करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने उसका उपकार किया ही था ! करुणा किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखती और जो लोभ में पड़ा है, उससे भेद-भाव नहीं छूट सकता। अतएव करुणा करने के लिए 'मूर्खराज' सरीखा बनना पड़ता है।

मूर्खराज के माता-पिता भी जब उसकी अवहेलना करने लगे और कुत्ते को बूटी खिला देने के लिए उपालंभ देने लगे तो उसने उत्तर दिया—आप लोगों के लिए वह कुत्ता है और मेरे लिए मेरे ही समान प्राणी है। अतएव उसके लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूँ।

घर वाले खिन्नचित्त होकर कहने लगे—चलो, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब एक बूटी है, वह किसी को मत देना।

मूर्खराज ने कहा—ठीक है मैं इसे नष्ट नहीं करूँगा।

संयोगवश उस शहर के बादशाह की लड़की बीमार हो गई। लड़की बादशाह और उसकी पत्नी को अत्यन्त प्रिय थी। इसलिए बादशाह ने ढिंढोरा पिटवाया कि मेरी लड़की को जो अच्छा कर देगा उसे मैं मुँह माँगा इनाम दूँगा। बादशाह द्वारा पिटवाये गये ढिंढोरे को मूर्खराज के घर वालों ने भी सुना। उन्होंने मूर्खराज से कहा—बूटी की बदौलत अब तेरा भाग्य खुल जायगा। तेरे पास जो बूटी है, उसे बादशाह की लड़की को खिला दे। लड़की अच्छी हो जायगी तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायगा। तू सुखी हो जायगा और तेरे साथ हम लोग भी सुखी हो जाएंगे।

मूर्खराज ने माता-पिता आदि की बात स्वीकार करते हुए कहा—ठीक है, मैं जाऊँगा ।

माता-पिता आदि ने मूर्खराज को स्नान करवाया । अच्छे कपड़े पहनने को दिये और बादशाह के पास जाने को रवाना किया । मूर्खराज बूटी अपने साथ लेकर बादशाह के महल की तरफ चल पड़ा । मार्ग में उसने देखा कि एक स्त्री को लकवा मार गया है, जिसके कारण वह चल फिर नहीं सकती । उसका हाथ बेकार हो गया है और मुँह टेढ़ा हो गया है । मूर्खराज ने उस स्त्री से पूछा—'माँ जी ! क्या हो गया है तुम्हें ?'

स्त्री—बेटा, देख ले । मेरी कैसी बुरी हालत है ! मेरा शरीर बेकार हो गया । पेट पालने के लिए भी दूसरों की मोहताज हो गई हूँ । बड़ा कष्ट है !

मूर्खराज मन ही मन सोचने लगा—यह बूढी माँ इतने कष्ट में है । मेरे पास बूटी है । मैं इसका कष्ट मिटा सकता हूं । यह बूटी किस काम आएगी ? गरीबिनी बुढिया का कष्ट मिटा देना उचित है ।

मूर्खराज ने बुढ़िया से कहा—ले माँजी ! यह बूटी खाले । तेरा रोग अभी चला जाएगा ।

बुढ़िया बोली—बेटा, मेरा रोग मिटा देगा तो मैं समझूंगी कि तू ही मेरे लिए ईश्वर है ।

मूर्खराज—मैं ईश्वर नहीं हूं । मुझे यह बूटी कहीं मिल गई है । इसका दूसरा क्या उपयोग हो सकता है ? तू इसे खा जा ।

बुढ़िया ने बूटी खाई । वह चंगी हो गई । उसे सहसा अपना चंगापन देख विस्मय के साथ आनन्द हुआ । मूर्खराज को उसने सैकड़ों आशीर्वाद दिये ।

मूर्खराज सन्तोष के साथ अपने घर लौट आया । देख घर वाले पूछने लगे—क्यों, बादशाह के पास न

लौट क्यों आया ?

मूर्खराज—मार्ग में मुझसे एक अच्छा काम हो गया, इस लिए लौट आया हूं।

घर वालों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने पूछा—क्या हुआ, कुछ बता भी सही।

मूर्खराज ने बुढ़िया का वृत्तान्त कह सुनाया। घर वालों ने यह सुना तो क्रोध के मारे पागल हो उठे। कहने लगे—मूर्खराज कहीं के! तू ने हमारे सारे मंसूबे मिट्टी में मिला दिये!

भगवान् पार्श्वनाथ को तो आप भी पुकारते हैं, मगर किस लिए पुकारते हैं? आप उनके शिष्य कहलाते हैं, मगर क्या करने के लिए ? पार्श्वनाथ के शिष्य कहला कर भी क्या आप में मूर्खराज सरीखी दया है ? मूर्खराज की निस्पृह दया कितनी सराहनीय है? क्या आपका अन्तःकरण इस प्रकार की दया से जीवन में एक बार भी कभी द्रवित हुआ है ? स्वयं में ऐसी दया होना तो दूर रहा, आपके घर का कोई आदमी इस मूर्खराज के समान कार्य करे तो आप इसे शायद घर से निकाल देने के लिए तैयार हो जाएं! ऐसी स्थिति में आप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा की गई दया का असली महत्त्व समझ सकते हैं ? अगर आप सचमुच ही दया का महत्व समझते हैं तो अछूतों को व्याख्यान सुनने देने से क्यों वंचित रखते हैं ? मैं आपके मकान में ठहरा हूँ। अतएव आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। किसी को आने या न आने देने का मुझे अधिकार नहीं है। लेकिन इस विषय में आ क्या चाहते हैं ? अगर हम आपके मकान में न ठहरे होते और प्राचीन काल के मुनियों की तरह जंगल में ठहरे होते तो हमारा व्याख्यान सभी लोग सुन सकते थे। वहां किसी के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव का व्यवहार नहीं किया जा सकता था। भगवान् के समवसरण में बारह प्रकार की परिषद् होती थी। उसमें किसी के प्रति, किसी भी प्रकार

का भेदभाव नहीं किया जाता था। अगर आपके अन्तःकरण में भगवान् पार्श्वनाथ के समान दया है तो आप किसी भी जाति वालों को व्याख्यान सुनने से न रोकें।

मूर्खराज के घर वाले क्रोध से बावले हो उठे। कहने लगे—यह मूर्ख कितना अभागा है! पहले तो इसने कुत्ते को बूटी खिला दी और अब, जब कि सभी का भाग्य चमकने वाला था, किसी बुढ़िया को बूटी देकर चला आया। ऐसा न किया होता और बादशाह की लड़की की बीमारी मिटाई होती तो खुद बादशाह का दामाद बन गया होता और हम लोगों को इस मकान के बदले राजमहल मिला होता! हमारा घर धन से भर जाता और सब दुःख दूर हो गये होते!

मूर्खराज ने अपने घर वालों से कहा—आप लोग मुझे क्षमा कीजिये। मेरा नाम मूर्खराज है! मैं आप लोगों की बुद्धि के अनुसार काम कैसे कर सकता हूँ? आप मुझ से वृथा ही ऐसी बड़ी आशा क्यों रखते हैं? मैं मूर्ख ठहरा। सामने किसी दुखी को देखता हूँ तो अपने को रोक नहीं सकता। मेरे पास जो कुछ होता है, सभी देने को उद्यत हो जाता हूँ और दे डलता हूँ। मेरी प्रकृति ही ऐसी बनी है। मैं क्या करूँ?

मूर्खराज की सरल सीधी बात सुन कर सन्तानप्रेम के कारण माता-पिता आगे कुछ न कह सके। वे चुप हो रहे। सोचने लगे—इसका क्या दोष! दोष अगर है तो हमारी तकदीर का ही है।

मूर्खराज के हृदय में यह था कि जो दुखी सामने आवे, उसका दुःख दूर करने के लिए, अपने पास जो भी कुछ हो, दे देना चाहिए। मगर आपके हृदय में क्या है? जरा अपने हृदय को टटोलो। आप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं। आपके अन्तःकरण में दया का कैसा शीतल झरना बहना चाहिए? भगवान् [illegible] जहरीले प्राणी के लिए भी हाथी से नीचे उतरे उन्होंने पा [illegible]

उसे उपदेश का अमृत पिलाया। मगर आप दया-दया की पुकार करते हुए भी मान के हाथी पर ही सवार बने रहते हैं। ऐसी दशा में कैसे कहा जा सकता है कि आपने दया को पहचाना है? दया करने के लिए मूर्खराज के समान बनना पड़ता है। मूर्खराज को जैसी बूटी मिली थी, आपको वैसी मिल जाय तो आप उसे लेने को फौरन तैयार हो जाएंगे। और कदाचित मूर्खराज मिल जाय तो कहने लगेंगे 'यह तो मूर्खराज है। हम इसे लेकर क्या करेंगे? आप मूर्खराज का अस्थि-पंजर लो, यह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि मूर्खराज के गुणों को ग्रहण करो। जिस प्रकार मूर्खराज निस्वार्थ और निष्पक्ष होकर दया करता था, उसी प्रकार आप भी दया करो।

खरगोश हाथी का क्या लगता था? हाथी को उसकी रक्षा करने से क्या मिलने वाला था? हाथी को खरगोश से कुछ भी आशा नहीं थी। फिर भी उसने घोर वेदना सहन करके भी खरगोश की रक्षा की! इसी तरह आप भी निष्काम भाव से दीन-दुखी पर दया करो। बुद्धि के चक्कर में मत पड़ो। दया करने के लिए 'मूर्खराज' के सदृश बनो। आप में मूर्खराज की सी आदत नहीं है, इसी कारण आप किसी के मरने के बाद तो उसकी याद कर-करके रोते हो परन्तु जब वह जीवित रहता है तब तक उसकी पूरी सम्हाल नहीं करते और उसे कल्याण के मार्ग पर नहीं लगाते।

यदि संसार में मूर्खराज के समान ही प्राणी जन्में, जो दिन-रात दूसरे की दया करने में ही लगे रहें तो संसार सुखी हो सकता है। यह ध्रुव सत्य समझ लो कि ऐसे दयालु और परोपकारी मनुष्य ही संसार के शृङ्गार हैं। संसार में अगर कुछ सार है तो ऐसे मनुष्यों का जीवन ही है। ऐसे दयावान मनुष्य ही संसार में सुख और शान्ति का प्रसार करते हैं। मारकाट मचाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में संलग्न रहने वाले बुद्धिवादी लोग संसार को

सुखमय नहीं बना सकते। मूर्खराज कपड़े पहन कर बादशाह की बेटी को बूटी देने चला था, मगर मार्ग में बीमार वृद्धा को देखते ही उसका दिल द्रवित हो गया और उसने उसे बूटी खिला दी। मूर्खराज का यह त्याग मामूली नहीं कहा जा सकता। उसे राजकुमारी पत्नी मिल सकती थी, कदाचित् राज्य का भी कुछ भाग मिल सकता था और कीर्ति तो मिलती ही। पर उसने इन चीजों को तनिक भी परवाह नहीं की। सच्ची दया वही है जहाँ लेश मात्र भी स्वार्थ नहीं है। मगर बुद्धि की खटपट त्याग कर मूर्खराज के समान बनने पर ही ऐसी दया की जा सकती है।

६८ : मनोयोग

कई लोग चित्त की चंचलता को सर्वथा ही रोक देने की चेष्टा करते हैं और उसी में कल्याण समझते हैं, किन्तु ऐसा होना दुःसाध्य है। ज्यों-ज्यों आप चित्त को रोकने का प्रयत्न करेंगे, वह अधिकाधिक चंचल होता जायगा। अतएव उसे सर्वथा रोकने का विचार छोड़ कर उसकी चाल की चौकसी करना और उसे टेढ़ा मेढ़ा जाने से रोकना ही अधिक व्यवहार्य है। किसी अच्छे प्रकार के चिन्तन में फंसाये रहने से ही मन टेढ़ी चाल से बचता है। खाली रहने पर बड़ा उत्पात मचाता है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण लीजिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध पुरुष की सेवा करता था। सिद्ध ने उसकी मनोकामना पूछी। सेवक ने कहा—महाराज! मैं खेती कर-कर के मरता पचता हूं, फिर भी पेट नहीं भर पाता। इससे

विपरीत जब मैं नगर में जाकर नागरिक लोगों को देखता हूँ तो वे लोग अल्प परिश्रम करके भी खूब मजा-मौज लूटते हैं : मैं साल भर में जितना कमाता हूँ, उतना वे एक ही दिन में उडा देते हैं। उन्हें देखकर मैं भी उन्हीं सरीखा धनी बनना चाहता हूं । इसी इच्छा से आपकी सेवा कर रहा हूँ।

सिद्ध बोले—ठीक, मैं तुझे एक मन्त्र बतलाता हूं उसका जाप करने से एक भूत तेरे कब्जे में हो जायगा । वह तेरा सब काम किया करेगा और तेरी समस्त इच्छाएं पूरी करता रहेगा।

किसान ने मन्त्र लिया और उसकी साधना की । साधना से भूत आया । बोला—अब मैं तुम्हारे आधीन हूं । किन्तु एक भी क्षण मैं बेकार नहीं रहूंगा । अगर बेकार रहा तो तुम्हें खाऊंगा । यह मेरा स्वभाव है ।

किसान ने यह बात स्वीकार कर ली। फिर उसने भूत को काम बतलाना शुरू किया । खेत जोतना, बोना, मकान बनाना, भोगोपभोग की सामग्री प्रस्तुत करना, आदि सभी कार्य उसने बात की बात में पूरे कर दिये । यह सब काम पूरे करके भूत ने कहा—अब क्या करना हैं ? काम बताओ, नहीं तो तुम्हें खाता हूँ।

किसान ने घबराकर कहा—भाई, थक गये होओगे । अब कुछ देर विश्राम कर लो ! फिर काम बतला दूंगा ।

भूत—अगर कोई काम न बतलाया तो मैं अपने नियम के अनुसार अभी तुम्हें खा जाऊंगा ।

किसान सकपकाया। सोचने लगा—इसकी अपेक्षा तो मैं पहले ही अच्छा था । उस समय यह बला तो नहीं थी । अब इससे किस प्रकार पिंड छुड़ाया जाय । क्यों न उन्हीं सिद्ध पुरुष की सेवा में जाऊँ और उन्हीं से अपनी रक्षा की भिक्षा मांगू ।

उसने भूत से कहा— तू मेरे पीछे-पीछे चल, अभी यही काम बतलाता हूं । इस प्रकार दोनों सिद्ध पुरुष के पास पहुंच कर

सिद्ध पुरुष से किसान ने कहा—महाराज ! आप अपना भूत संभालिए ! बाज आए इससे ! कहाँ तक इसे काम बताऊं ? अगर कभी न बतला पाया तो मुझे खा जायगा ! ऐसे भूत की मुझे आवश्यकता नहीं । न जाने कब मुझे खा जाय !

सिद्ध ने किसान को सान्त्वना देते हुए कहा—भाई, डरो मत । इसे एक खम्भा बनाने का काम बतला दो । किसान ने सिद्ध के कथनानुसार भूत को खम्भा बनाने का काम बता दिया । भूत ने पल भर में खम्भा तैयार कर दिया । तब सिद्ध ने कहा—अब इसे कह दो कि जब मैं जो काम बताऊं, तब वह काम करना । शेष समय में इस खम्भे पर चढते-उतरते रहना । भूत चढ़ने-उतरने लगा ।

इस चढ़ने उतरने से भूत हैरान हो गया । उसने कहा—माफ करो भाई, मैं तुम्हारे बुलाने पर आ जाया करूंगा । शेष समय में, कार्य न होगा तो तुम्हें नहीं खाऊंगा ।

किसान भी यही चाहता था । उसने प्रसन्नतापूर्वक भूत की बात मान ली । भूत अपना पिंड छुड़ा कर भागा और किसना ने अपना पिंड छूटा जान सन्तोष की साँस ली और अपने घर आ गया ।

यह उदाहरण सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं है । इसमें अनेक तत्त्व भरे हैं । जैसे किसान ने भूत पैदा किया, उसी प्रकार आत्मा ने मन पैदा किया है । भूत काम में लगे रहने पर शान्त रहता है और खाली होने पर खाने दौड़ता है । इसी प्रकार मन भी निरन्तर क्रिया शील रहना चाहता है । खाली रहना उसे पसन्द नहीं, उसे कोई न कोई चटपटी बात सदैव चाहिए । जब यह निकम्मा रहता है तो हमें खाने को दौड़ता है और इतना खाता है कि पागल बना कर छोड़ता है । यह भूत कोई साधारण नहीं है । सभी के पीछे यह पड़ा हुआ है । जब इसके लिए कोई काम न रहे तो इसे

खम्भा बता देना चाहिए, जिस पर चढ़ता उतरता रहे। वह खम्भा कौनसा है ? भगवत्—भजन का।

तुम सुमरन विन इण कलियुग में अवर न को आधारो।
मै वारी जाऊँ तो सुमरन पर, दिन दिन दिन प्रीत वधारो॥
पदम प्रभु पावन नाम तिहारो॥

६१: स्वामी नहीं, ट्रस्टी

(१)

शिमला में एक पुरुष ओर एक स्त्री को देख कर गांधीजी का हृदय आनन्दित हो उठा था। वह दोनों गाँधीजी के पास आये और उन्होंने सौ रुपये का एक नोट निकाल कर एक संस्था की सहायता के लिए गाँधीजी के सामने रख दिया। वह संस्था सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा संचालित होती थी। गाँधीजी ने कहा 'जमनालालजी के पास पैसे की कमी नहीं है। उनके पास काफी पैसा है। उस संस्था को सहायता की आवश्यकता नहीं है। अतः आप यह रुपया अपने पास ही रहने दीजिए।'

यह सुनकर आगन्तुक पुरुष ने कहा—'जिस किसी कार्य में रुपयों की आवश्यकता हो उसी में यह लगा दीजिए। अमुक कार्य में रुपये लगाने की शर्त लगाना व्यर्थ है—भूल है। इस बात को मेरी अपेक्षा आप अधिक समझते हैं। अतएव अब इस विषय में मैं कुछ न कहूंगा। मैंने सरकारी नौकरी करके पैंतीस हजार रुपया बचाया है और इस समय भी मेरी आय लगभग एक हजार रुपया

उसका पति आचारभ्रष्ट है और उसने दूसरा विवाह भी कर लिया है। वह महिला उससे अलग रहती है। जैसे पूर्वोक्त पुरुष ने अपनी सम्पत्ति का त्याग किया, उसी प्रकार वह भी अपनी पैत्रिक संपत्ति का दान करना चाहती है। वह देश-सेवा के फल-स्वरूप दो बार जेलयात्रा कर चुकी है और चर्खा आदि कात कर उसी की आमदनी से अपना निर्वाह करती हैं। वह भी एक वार गाँधीजी के पास आई और अपनी सम्पत्ति के दान के विषय में गाँधीजी से निवेदन किया। गाँधीजी ने उससे भी वही बात कही कि—उस सम्पत्ति को तुम अपनी न समझ कर अपने को उसका ट्रस्ट मानो और उसे सम्भालो।

मित्रो! अगर आप लोग भी अपनी सम्पत्ति से पाप न करके, उसके ट्रस्टी-भर बने रहो तो क्या उस सम्पत्ति को कुछ दाग लग जायगा? हाँ उस अवस्था में अपने भोग-विलास में उसका दुरुपयोग न कर सकोगे। लेकिन बहुत लोगों की तो ट्रस्टी बनने की भावना ही नहीं होती। क्या श्रावक की जिन्दगी ऐसी होती है कि वह धन के कीचड़ में फँसा रहे और उससे अपनी आत्मा को मलिन बना डाले? उसे परोपकार में न लगावे? क्या श्रावक को धर्म पर विश्वास नहीं है? बैंक पर विश्वास करके उसमें लाखों रुपया जमा करा देने वालों को धर्म रूपी बैंक पर क्या विश्वास नहीं है?

७० : समझदारी

ही हो तो अच्छा है। वह जब-तब मेरी निन्दा करेगा और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा इससे मेरी अवनति रुकेगी और उन्नति होगी। मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी।

किसी कवि ने राजा से कहा— 'आप के शत्रु चिरंजीव हों।' यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया। दूसरे सुनने वालों को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा। मगर उनमें एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था। उसने राजा से कहा— आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यों होते हैं? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।

राजा झुंझलाकर कहने लगा—यह तो शत्रुओं के लिए आशीर्वाद दे रहा है! तब उस समझदार आदमी ने कहा—ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है। जब आपके शत्रु जीवित रहेंगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी। आप सावधानी रखने के कारण ही राजा हैं। राजा को सदा सावधान रहना चाहिए, सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो। शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है। इस प्रकार कवि ने आपको दुराशीष नहीं वरन् शुभाशीष ही दिया है। कवि ने सूचित किया है कि आप आलसी और भोग के कीड़े मत बन जाना किन्तु बलवान् बनना और सावधान रहना। इसमें आपके नाराज होने योग्य कोई बात नहीं।

उसका पति आचारभ्रष्ट है और उसने दूसरा विवाह भी कर लिया है। वह महिला उससे अलग रहती है। जैसे पूर्वोक्त पुरुष ने अपनी सम्पत्ति का त्याग किया, उसी प्रकार वह भी अपनी पैत्रिक संपत्ति का दान करना चाहती है। वह देश-सेवा के फल-स्वरूप दो बार जेलयात्रा कर चुकी है और चर्खा आदि कात कर उसी की आमदनी से अपना निर्वाह करती हैं। वह भी एक बार गाँधीजी के पास आई और अपनी सम्पत्ति के दान के विषय में गाँधीजी से निवेदन किया। गाँधीजी ने उससे भी वही बात कही कि—उस सम्पत्ति को तुम अपनी न समझ कर अपने को उसका ट्रस्ट मानो और उसे सम्भालो।

मित्रो ! अगर आप लोग भी अपनी सम्पत्ति से पाप न करके, उसके ट्रस्टी-भर बने रहो तो क्या उस सम्पत्ति को कुछ दाग लग जायगा ? हाँ उस अवस्था में अपने भोग-विलास में उसका दुरुपयोग न कर सकोगे। लेकिन बहुत लोगों की तो ट्रस्टी बनने की भावना ही नहीं होती। क्या श्रावक की जिन्दगी ऐसी होती है कि वह धन के कीचड़ में फंसा रहे और उससे अपनी आत्मा को मलिन बना डाले ? उसे परोपकार में न लगावे ? क्या श्रावक को धर्म पर विश्वास नहीं है ? बैंक पर विश्वास करके उसमें लाखों रुपया जमा करा देने वालों को धर्म रूपी बैंक पर क्या विश्वास नहीं है ?

७० : समझदारी

भक्त तुकाराम का कहना है कि निन्दक का घर मेरे समीप

ही हो तो अच्छा है । वह जब-तब मेरी निन्दा करेगा और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा इससे मेरी अवनति रुकेगी और उन्नति होगी । मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी ।

किसी कवि ने राजा से कहा— 'आप के शत्रु चिरंजीव हों ।' यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया । दूसरे सुनने वालों को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा । मगर उनमें एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था । उसने राजा से कहा— आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यों होते हैं ? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए ।

राजा झुंझलाकर कहने लगा—यह तो शत्रुओं के लिए आशीर्वाद दे रहा है ! तब उस समझदार आदमी ने कहा—ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है । जब आपके शत्रु जीवित रहेंगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी । आप सावधानी रखने के कारण ही राजा हैं । राजा को सदा सावधान रहना चाहिए, सावधानी तभी रह सकती है जब शत्रु का भय हो । शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है । इस प्रकार कवि ने आपको दुराशीष नहीं वरन् शुभाशीष ही दिया है । कवि ने सूचित किया है कि आप आलसी और भोग के कीड़े मत बन जाना किन्तु बलवान् बनना और सावधान रहना । इसमें आपके नाराज होने योग्य कोई बात नहीं ।

७१ : अदृश्य शक्ति

एक मजदूर था। मजदूरों की स्थिति बड़ी बेढंगी होती है। अगर वह किसी दिन मजदूरी न करे तो उसे भूखा रहना पड़ता है। खास कर वर्षा ऋतु में तो मजदूरों की हालत और भी खराब हो जाती है। इस ऋतु में उन्हें बराबर काम नहीं मिलता। एक दिन जोरों की वर्षा हुई और इस कारण उस मजदूर को कोई काम नहीं मिला। वह इसी चिन्ता में बैठा था कि कल क्या होगा ? इतने में एक सेठ उसके घर आया। उसने कहा—यह दो हजार की थैली है। अगर अमुक गाँव में, अमुक के घर पहुंचा आओ तो आठ आना मजदूरी दी जायगी। मजदूर ने थैली ले ली और नियत जगह पहुंचाना स्वीकार कर लिया।

उसी मजदूर के घर के पास एक मकरानी पठान रहता था। उसने सोचा—यह रुपयों की थैली लेकर पर गाँव जा रहा है। आज लूटने का अच्छा अवसर मिला है ! रास्ते में मजदूर के प्राण लेकर रुपया लूट लेना कोई कठिन बात नहीं है। यह सोच कर पठान ने कहा—मुझे भी किसी काम से उस गाँव जाना है।

मजदूर ने कहा—चलो, एक से दो भले। अच्छा हुआ कि तुम्हारा साथ मिल गया।

पठान ने अपनी बन्दूक ले ली। उसने सोचा—इसी बंदूक से मजदूर का काम तमाम कर दूंगा और उससे रुपया ले लूंगा। बेचारे भोले मजदूर को पठान की बदनियत का पता नहीं था। दोनों रवाना हुए। जब वह रास्ते में जा रहे थे तो अचानक घन-घोर घटा छा गई और मूसलाधार पानी बरसने लगा। दोनों के कपड़े पानी में भीग गए। दोनों एक सघन पेड़ के नीचे जा खड़े

हुए। वर्षा होते देख मजदूर कहने लगा - लोग परमात्मा-परमात्मा चिल्लाते हैं पर परमात्मा है कहाँ ? अगर सचमुच परमात्मा होता तो हम जैसे गरीबों के ऊपर दया न करता ? देखो न, मेरे सारे कपड़े पानी से तरबतर हो गए हैं और दूसरे कपड़े मेरे पास है नहीं।

मजूर की बात सुन कर पठान ने कहा—तुम यही समझ लो कि खुदा ने तुम्हारे ऊपर आज बड़ी मेहरबानी की है।

मजूर—पानी बरसने में मेरे ऊपर खुदा की क्या मेहरबानी हुई ?

पठान—देख, यह बन्दूक मैं इस लिये लाया था कि रास्ते में तुम्हें इससे ठिकाने लगा दूंगा और तुम्हारे पास जो रुपये हैं, छीन लूंगा। मगर कुदरत को तुम्हारी मौत मंजूर नहीं थी। मूसलाधार पानी बरसा और बन्दूक में डाला बारूद गीला हो गया। अब यह बन्दूक बेकार है। इस प्रकार तू कुदरत की मेहर से ही आज बच सका है। पानी न बरसा होता तो आज तुम इस बन्दूक के शिकार हो गए होते और तुम्हारे पास के रुपये मेरे कब्जे में होते। तुम चाहो तो मुझ से बदला ले सकते हो। मगर सच्ची बात मैंने तुम्हें बता दी।

मजूर, पठान की बात सुन कर प्रसन्न हुआ। उसे ऐसा लगा मानों उसने नया जीवन पा लिया हो। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। वह सोचने लगा—मैं बाहर ही बाहर देख रहा था, पर कौन जानता है कि भीतर ही भीतर कुदरत की करामात कैसी है ? दरअसल दुख का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मजूर वर्षा और परमात्मा को कोस रहा था।

७२ : दूसरा विवाह

साधारणतया लोग अपने विषय में जो बात सोचते हैं वही दूसरों के विषय में नहीं सोचते। इसी कारण घोर अन्याय हो जाता है। आज पुरुषों में यह पद्धति प्रचलित हो गई है कि वे अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हें लेश-मात्र भी यह विचार नहीं आता कि जो काम स्वयं उन्हें पसन्द नहीं है वह स्त्रियों को कैसे पसन्द आता होगा! इस विषय में गुलिश्तां में एक कथा कही गई है। उसमें कहा है—

एक अमीर की स्त्री मर गई। अमीर के मित्रों ने उससे कहा—तुम्हारे पास अखूट धन-सम्पत्ति है। तुम दूसरा विवाह कर लो।

अमीर ने कहा—मुझे बूढ़ी स्त्री पसन्द नहीं हैं।

मित्र—यह कौन कहता है कि तुम बुढ़िया के साथ विवाह करो। किसी नवयुवती के साथ शादी कर लो। तुम्हें किस चीज की कमी है?

अमीर—तुम मेरे कहने का मतलब नहीं समझे। मेरे कहने का आशय यह है जब मुझे बूढ़ी स्त्री पसन्द नहीं है तो नवयुवती स्त्री को मुझ जैसा बूढ़ा क्यों पसन्द आने लगा? मैं अपना ही मतलब समझूं और दूसरों के हिताहित का विचार न करूं, यह किस प्रकार उचित कहा जा सकता है?

क्या आपको अमीर की बात युक्तिसंगत जान पड़ती है? अगर वास्तव में आप अमीर के कथन को सत्य और न्यायसंगत समझते हैं तो आपको विवाह सम्बन्धी अन्यायपूर्ण कार्यों में कदापि भाग नहीं लेना चाहिए। जहाँ किसी वृद्ध का तरुणी के साथ विवाह

होता हो तो वहाँ आपको सम्मिलित नहीं होना चाहिए । वृद्धविवाह में भाग लेने से तुम पाप के भागी होते हो और उसमें अपना सहयोग न देकर अपने आपको पाप से बचा सकते हो।

७३ : चार ब्राह्मण

अगर सब जीवों को मित्र बनाने से काम नहीं चलेगा तो क्या सब को शत्रु मानने से संसार का काम ठीक चलेगा ? अगर आपका यह विचार हो कि सब को शत्रु बनाने से ही ठीक काम चल सकता है तो आप भी सब के शत्रु माने जायेंगे और इस दशा में संसार में एक क्षण का जीवन भी कठिन हो जाएगा। सब को मित्र बनाने से क्या फल होता है और शत्रु बनाने का परिणाम क्या निकलता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए।

किसी दातार ने चार ब्राह्मणों को एक गाय दी। चारों भाई-भाई थे, मगर अलग-अलग हो गये थे। उनके चूल्हे अलग-अलग जलते थे और दरवाजे भी अलग-अलग हो गये थे। दान में मिली हुई गाय पहले बड़े भाई के यहाँ लाई गई। उसने सोचा—'गाय को आज मैं खिलाऊँगा तो कल उसका दूध होगा। वह दूध मेरे किस काम का ? कल वह दूसरे के यहाँ चली जायगी और वही कल दूध दुहेगा। ऐसा सोचकर उसने दूध तो दुह लिया, मगर खाने को नहीं दिया। दूसरे दिन दूसरा भाई गाय अपने घर ले गया। उसके मन में भी यही विचार आया—कल यह दूसरे घर चली जायगी, फिर आज खिलाने से मुझे क्या लाभ है ? कल का दूध तो मुझे मिलना नहीं। अतएव इसके स्तनों का दूध ले

कल वह आप खिलाएगा। ऐसा सोचकर उसने भी दूध दुह लिया और खाने को नहीं दिया। शेष दो भाइयों के घर भी यही हुआ। भूख के मारे गाय की हड्डियाँ निकल आईं। चार ही रोज में गाय का कायाकल्प हो गया। उसकी दुर्दशा देखकर लोग कहने लगे—यह ब्राह्मण हैं या कसाई! इन्हें गाय की रक्षा करते हुए दूध लेना था, मगर यह तो उसका खून पीने पर उतारू हो गये हैं।

इसी प्रकार किसी दूसरे दाता ने किन्हीं अन्य चार भाइयों को गाय दी है। उन्होंने सोचा—'दाता ने उदारतापूर्वक, कृपा करके हमें गाय दी है तो हम उसे माता के समान मानकर उसकी रक्षा करेंगे। उसे किसी प्रकार का कष्ट न देंगे।' इस प्रकार विचार कर उन्होंने गाय को खिलाया-पिलाया। उन्हें दूध भी मिला और गाय की रक्षा भी हुई।

७४ : छोटा और बड़ा

एक अमीर अपने बाएं हाथ की छोटी अंगुली में अंगूठी पहने था। किसी गरीब ने उसके पास आकर पूछा—'दाहिना हाथ बड़ा होता है या बायाँ?' अमीर ने उत्तर दिया—'जो हाथ ज्यादा काम करता है, इस कारण वही बड़ा माना जाता है।' अब गरीब ने कहा—तो आपने अंगूठी बायें हाथ में क्यों पहन रखी है? दाहिने हाथ को क्यों नहीं पहनाई? अमीर बोला—मैंने पहले ही कहा कि जो ज्यादा काम करे, वही बड़ा है। जो छोटे से काम कराता है, वह बड़ा नहीं है। मैंने बायें हाथ में अंगूठी पहन रखी है, इससे दाहिने हाथ का बड़प्पन आप ही प्रकट हो जाता है। छोटे

को देना ही तो बड़प्पन है। बड़प्पन और क्या है? मैंने दुनियाँ को यही सीख देने के लिए बाएं हाथ में अंगूठी पहनी है। इससे यह जाहिर हो जाता है कि छोटे को शृंगार करादो, जिससे बड़े के बड़प्पन को धक्का न लगे।

गरीब ने फिर अमीर से पूछा— अच्छा, यह अंगूठी बड़ी उंगली को न पहना कर सब से छोटी को किस लिए पहनाई है?

अमीर ने कहा—दाहिना हाथ बड़ा और बाँया हाथ छोटा है, यह बात तो मैं बता चुका हूं, लेकिन यह और जान लो कि इस हाथ में यह उंगली सब से छोटी है। सबसे छोटी होने के कारण ही इसे अंगूठी पहना रखी है। छोटे की सार-सम्भाल करने वाले ही बड़ा कहलाता है।

जो बड़ा कहलाने वाला पुरुष इस बात का ध्यान रखता है, वह नीचे नहीं गिरता, किन्तु चढ़ता ही जाता है। यद्यपि बड़प्पन और छुटपन सापेक्ष हैं, तथापि छोटों की रक्षा करने वालों का बड़प्पन बढ़ता ही है, घटता नहीं।

अमीर की बात सुनकर गरीब ने कहा—'आपके विचार बड़े उत्तम हैं, इसी कारण आप बड़े हैं। जो मनुष्य अपने शरीर के सम्बन्ध में ऐसा विचार रखता है, वह छोटों को क्यों नहीं बढ़ाएगा?'

७५ : सत्यनिष्ठा

मनुष्य को जब तक अनुभव नहीं हो जाता, तब तक सत्य का महत्व उसकी समझ में नहीं आता; जब उसके सिर पर कोई

व्रत भँग हो जायगा।

पुत्र—तुम्हीं मेरी जान ले रहे हो।

पिता—मैं तेरी जान नहीं ले रहा हूं, किन्तु तेरा पाप तेरी जान ले रहा है। मैं तो तेरी रक्षा ही चाहता हूं। इसीलिए मैं तुझे बचपन से ही बुरे कर्म से बचने का उपदेश देता रहा। लेकिन तू मेरी शिक्षा की उपेक्षा करता रहा। अब भी मैं तुझे यही उपदेश देता हूँ कि, सत्य की शरण जा, सत्य ही तेरी रक्षा करेगा। यदि असत्य से प्राण बच भी गये, तब भी मृतक के ही समान है और सत्य से प्राण गये तब भी जीवन से श्रेष्ठ है।

निश्चित समय पर राजा ने श्रावक को बुलाया और गवाह के कठघरे में खड़ा कर के पूछा—'कहिये सेठजी, जिस दिन राज्य-भण्डार में चोरी हुई, उस दिन क्या तुम्हारा लड़का यहाँ नहीं था? और उसने चोरी नहीं की है?

सेठ—उस दिन वह नगर में ही था और चोरी उसी ने की है।

धन्य है इस श्रावक को! जिसने अपने पुत्र के लिये भी झूठ बोलना उचित न समझा। यदि यह चाहता तो, झूठ बोल कर अपने लड़के को निरपराध सिद्ध कर सकता था, लेकिन उसने अपने लड़के से भी सत्य को कहीं विशेष उच्च समझा। यह श्रावक तो अपने लड़के के लिए भी झूठ नहीं बोला, लेकिन आज के लोग कौड़ी-कौड़ी के लिए झूठ बोलने में नहीं हिचकिचाते। इतना ही नहीं बल्कि अकारण ही हँसी-मजाक और अपनी या दूसरे की प्रशंसा तथा निन्दा के लिए भी, झूठ को ही महत्व देते हैं। कहाँ तो यह श्रावक, जिसने प्राण-प्रिय सन्तान को भी सत्य के आगे तुच्छ समझा और कहाँ आज के लोग, जो सत्य को कौड़ियों से भी तुच्छ समझते हैं। अस्तु।

श्रावक चाहता तो झूठ बोल सकता था, लेकिन वह इस

बात को जानता था, कि पुत्र की रक्षा वास्तव में सत्यवादी ही कर सकता है, मिथ्यावादी नहीं।

सेठ का उत्तर सुनकर, राजा धन्यवाद देता हुआ सेठ से कहने लगा—'तुम्हारे जैसे सत्यवादी सेठ मेरे नगर में मौजूद हैं, यह जान कर मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही। मेरे नगर में जैसे चोर हैं, वैसे ही सर्वथा सत्य बोलने वाले मनुष्य भी मौजूद हैं, यह अति आनन्द की बात है। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम इच्छानुसार याचना कर सकते हो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्राणपण से चेष्टा करूंगा।'

सेठ प्रतीक्षा कर रहा था कि, देखूं लड़के को उसके अन्याय का क्या दण्ड मिलता है? किन्तु राजा के मुख से यह सान्त्वना-पूर्ण वचन सुन कर वह एकान्त में जा बैठा और अपने लड़के को बुलाकर उससे बात-चीत करने लगा।

पिता—पुत्र, तेरे ऊपर चोरी का अपराध प्रमाणित हो गया है। अब तुझे जीवित रहने की इच्छा हैं या मरने की? तू मुझे कहता था कि, झूठ बोल कर बचाओ, किन्तु अब देख कि सत्य बोल कर भी मैं तुझे बचा सकता हूं। धर्म रहे, तो जीवित रहना उत्तम है, किन्तु यदि धर्म जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो धर्म जाने के पूर्व मृत्यु ही श्रेष्ठ है। यदि तुझे जीवित रहने की इच्छा हो, तो पाप कर्मों को छोड़ कर सत्य-मार्ग ग्रहण कर। यदि तू मेरे धर्म का अधिकारी बनना चाहे, तो मैं राजा से तुझे छोड़ देने की प्रार्थना करूं। इसके पश्चात् यदि मैं तेरा आचरण अच्छा देखूंगा, तो तुझे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा, अन्यथा नहीं।

पुत्र—आपने पहले भी मुझे यही उपदेश दिया था किन्तु मैं बराबर कुमार्ग पर चलता रहा। यदि अब मैं जीवित बच जाऊंगा, तो सदैव अच्छा आचरण रखूंगा। पिताजी! थोड़ी देर पहले आप मुझे पिशाच के समान मालूम होते थे, किन्तु अब आपके वचन सुन-

कर मेरी दृष्टि ऐसी स्वच्छ हो गई है कि, आप मुझे ईश्वर के समान पवित्र मालूम होते हैं। जहाँ सत्य है वहीं ईश्वर है, यह बात मैं आज समझ सका। आप धन्य हैं, जो अपने सत्य-व्रत के सन्मुख पुत्रप्रेम को भी हेय समझते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूं कि भविष्य में मैं सत्य का पालन करूंगा। यदि मैं अपने इस व्रत का, ठीक तरह से पालन न कर सकूंगा तो प्राण त्याग दूंगा। अब आपकी इच्छा पर निर्भर है—चाहे जिलावें या मारें।

हृदय की साक्षी हृदय भरता है। जब सामने वाले का हृदय स्वच्छ होगा तो तुम्हारा भी हृदय स्वच्छ ही रहेगा।

लड़के की स्वच्छ हृदय से कही हुई बात सुनकर, सेठ राजा के पास गया और प्रार्थना की—मेरा लड़का भविष्य में सत्य-मार्ग पर चलने का सच्चे हृदय से प्रण करता है, अतः मैं आप से यही चाहता हूँ कि आप उसे छोड़ दें। मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

राजा ने कहा—हम अपराधी को इसीलिए दण्ड देते हैं कि वह भविष्य में अपराध न करे। किन्तु यदि कोई अपराधी, सच्चे दिल से अपने अपराध पर पश्चाताप कर ले, तो हमें उसके छोड़ देने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं तुम्हारे विश्वास दिलाने पर इसे छोड़ता हूँ और आशा करता हूं कि यह अब तुम्हारे आदर्श से पवित्र बन जायगा।

पहले के राजा लोग कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने के लिए ही अपराधी को दण्ड दिया करते थे, आजकल की तरह जेलों में ठूंसकर केवल बन्दियों की संख्या बढ़ाना उन्हें अभीष्ट न था। वे राज्य में शान्ति और प्रजा को सुखी बनाने के ही इच्छुक रहा करते थे। यदि अपराधी सच्चे हृदय से, अपने अपराध का पश्चा-ताप करके, भविष्य में फिर अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता,

तो उसे क्षमा कर दिया जाता था। ऐसी ही उदारता का प्रभाव, मनुष्य के मन पर पड़ा करता है और भविष्य में वह कुमार्ग पर चलने की इच्छा नहीं करता।

७६ : सत्य भाषण

सत्यव्रत के पालने वाले मनुष्यों में ऐसी शक्ति होती है कि उनके एक बार सम्पर्क से ही, पतित से पतित व्यक्ति, अपना कल्याण-मार्ग देख लेता है। जिसने सत्य-व्रत का एक देश भी ग्रहण कर लिया, वह भविष्य में पूर्ण सत्यव्रती बन सकता है। सत्य के प्रभाव से, परिस्थितियाँ ही ऐसी उपस्थित होती हैं कि वे उस मनुष्य को उत्थान की ओर ले जाती हैं। इसके लिये जैन ग्रन्थों में वर्णित जिनदास नाम के एक श्रावक की कथा इस प्रकार है:—

राजगृह नगर में, एक बड़े व्यापारी के यहाँ जिनदास नाम के श्रावक कार्यवश गये। जिनदास, उस समय के बड़े आदमियों में गिने जाते थे। व्यापारी ने उन्हें अपना स्वजातीय-अतिथि समझ कर भोजन का विशेष रूप से प्रबन्ध किया। जिनदास ने, व्यापारी से कहा— आप मेरे लिए कष्ट न कीजिये। मेरा नियम है कि जिसकी आय सत्य द्वारा होती है, मैं उसी के यहाँ भोजन करता हूँ। मैं विश्वास कर लेता हूँ कि जिसकी आय असत्य से होती है, उसके यहाँ भोजन नहीं करता। यदि आप मुझे अपने यहाँ भोजन कराना चाहते हैं तो अपना आय-व्यय का लेखा मुझे बतलाइये। उससे यदि विश्वास हो गया कि आपकी आय सत्य से होती है, तो मुझे भोजन करने में किसी प्रकार की भी आना-कानी न होगी।

जिनदास श्रावक का, व्यापारी से यह कहना कि—"मैं उस मनुष्य के यहाँ भोजन नहीं करता, जो असत्य से जीविकोपार्जन करता है" यथार्थ है। यह बात अनुभव-सिद्ध है कि जो मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाया करती है। श्रीकृष्ण ने, इसी सिद्धान्त को सामने रखकर दुर्योधन के यहां भोजन करने से इन्कार कर दिया था और विदुर के यहाँ जाकर साधारण भोजन किया था।

कई लोग कहते हैं कि सामाजिक करते समय न मालूम क्यों हमारा चित स्थिर नही रहता, लेकिन ऐसा कहने वाले लोग, यह विचार नहीं करते कि, अनीति से पैदा किया हुआ अन्न पेट में होने पर, मन स्थिर कैसे रह सकता है! चित्त स्थिर तभी रहेगा जब नीतिपूर्वक अर्जित अन्न पेट में होगा तथा नीतिपूर्वक जीवन विताने की भावना होगी।

जिनदास इस बात का अनुमान पहले ही कर लिया करते थे कि, इसका भोजन कैसा है? इसलिये उन्होंने व्यापारी से, अपना आय-व्यय का लेखा बताने को कहा। व्यापारी ने उत्तर में कहा कि आप तो स्वयं नीतिज्ञ हैं, और भलो-भाँति जानते हैं कि अपनी आय का भेद दूसरे को न बताया जाय ऐसा होते हुए भी मुझे, आपका आय-व्यय का लेखा बताने के लिये बाध्य करना, कैसे उचित कहा जा सकता है?

जिनदास—आप अपना लेखा नहीं बताना चाहते हैं तो आपकी इच्छा। मैं अपने निश्चयानुसार बिना विश्वास किये भोजन करने में असमर्थ हूँ।

व्यापारी, जिनदास के शब्दों को सुनकर विचारने लगा—इनकी प्रतिज्ञा तो ऐसी है और ऐसे सत्पुरुष को बिना भोजन कराये घर से जाने देना भी अपने भाग्य को बुरा बनाना है। ऐसी अवस्था में, क्या करना चाहिए? क्योंकि अतिथि को निराश

लौटाने के लिये कहा है:—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा, पुण्यमादाय गच्छति ॥

अर्थात्—कोई अतिथि, निराश होकर घर से लौट जावे तो वह उस गृहस्थ की पुण्यवानी लेकर, अपना दुष्कृत्य उसे दे जाता है।

इस प्रकार सोच-विचार कर व्यापारी ने जिनदास से कहा—आप लेखा देखकर क्या करेंगे, सच्ची बात मैं जबान से ही सुनाये देता हूं। वास्तव में तो मैं रात को चोरी करके धन कमाता हूं, और दिन को व्यापार का ढोंग रचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता हूं।

व्यापारी की बात सुन कर जिनदास ने कहा—ऐसी दशा में मैं आपके यहाँ भोजन नहीं कर सकता।

व्यापारी—यह आपका अन्याय है। दूसरों की अप्रतिष्ठा भी करना और फिर भोजन भी न करना, यह कैसे उचित है?

जिनदास—यद्यपि मैंने आपकी कोई अप्रतिष्ठा तो नहीं की है, फिर भी यदि आप मेरी एक बात को स्वीकार कर लें, तो मैं भोजन कर सकता हूं।

व्यापारी के पूछने पर, जिनदास ने कहा—आप चाहे अपने चोरी के कार्य को बन्द करें या न करें, परन्तु सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करलें। यदि आपने यह प्रतिज्ञा धारण कर ली, तो मैं भोजन कर लूंगा।

व्यापारी के ऊपर, प्रतिभाशाली जिनदास के शब्दों का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने जिनदास की बात स्वीकार करके असत्य न बोलने की प्रतिज्ञा करली। जिनदास भोजन करके विदा हो गये।

सदा की भांति व्यापारी आधी रात के समय चोरी करने निकला। परन्तु आज राजा श्रेणिक और प्रधान अभयकुमार प्रजा

का सुख दुःख जानने के लिए नगर में चक्कर लगा रहे थे।

आधी रात के समय अकेला जाते देख, अभयकुमार ने व्यापारी को रोक कर पूछा—कौन है ? व्यापारी इस प्रश्न को सुन कर भयभीत तो अवश्य हुआ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद आते ही, उसने निर्भय हो उत्तर दिया—'चोर'। व्यापारी का उत्तर सुनकर, राजा और प्रधान विचारने लगे, कहीं चोर भी अपने आपको चोर कहता है ? यह झूठा है। उन्होंने व्यापारी से प्रश्न किता, 'कहाँ जाता है ?' व्यापारी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, 'चोरी करने।'

व्यापारी के इस उत्तर को सुनकर राजा और प्रधान अभयकुमार ने सोचा—यह कोई विक्षिप्त है। विनोद के लिए उन्होंने फिर प्रश्न किया—'चोरी कहाँ करेगा ? व्यापारी ने उत्तर दिया—'राजा के महल में।'

व्यापारी के इस उत्तर से राजा और कुमार का अनुमान और भी पुष्ट हो गया कि, वास्तव में यह विक्षिप्त ही हैं। उन्होंने व्यापारी को 'अच्छा जाओ कह कर जाने दिया।' इस प्रकार चोर कहते हुए भी न पकड़े जाने से, व्यापारी बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वह जिनदास की प्रशंसा करने लगा कि, मैं अपने आपको चोर बतलाता जाता हूँ, परन्तु मुझे कोई पकड़ता नहीं हैं। यदि उस समय मैं भागता या झूठ बोलता तो अवश्य ही पकड़ लिया जाता, परन्तु सत्य बोलने से बच गया।

व्यापारी, इसी विचार-धारा में मग्न राजमहल के पास जा पहुँचा। योग ऐसा मिला कि, व्यापारी जिस समय राजमहल को पहुँचा, उस समय राजमहल के पहरेदार नींद में झूम रहे थे। ऐसा समय पाकर व्यापारी वेधड़क महल में जा घुसा और कोष से रत्नों के भरे हुए दो डिब्बे चुरा कर चलता बना।

लौटते समय व्यापारी को राजा और अभयकुमार फिर भी

मिले। उनके प्रश्न करने पर, व्यापारी ने अपने आपको पुनः चोर बताया। राजा और कुमार ने पहले वाला ही विक्षिप्त समझ कर हंसते हुए प्रश्न किया—'कहा चोरी की और क्या चुराया? व्यापारी ने उत्तर दिया—राजमहल में चोरी करके रत्नों के दो डिब्बे चुरा लाया हूँ।' राजा ने व्यापारी को पहले ही विक्षिप्त समझ रखा था, इसलिए उसके इस उत्तर पर भी उन्हें कुछ सन्देह न हुआ और उसे जाने दिया।

व्यापारी अपने घर की ओर चलता जाता था और हृदय में जिनदास को धन्यवाद देता जाता था, कि उन्होंने अच्छी प्रतिज्ञा कराई, जिससे मैं बच गया। अन्यथा मेरे बचने का कोई उपाय न था। अब मुझे भी उचित है कि कभी झूठ न बोल कर अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़तापूर्वक पालन करूं। इस प्रकार विचारता हुआ, व्यापारी अपने घर आया।

प्रातःकाल, कोषाध्यक्ष को कोष में चोरी होने की खबर हुई। कोषाध्यक्ष, कोष को देखकर और यह जान कर कि, चोरी में रत्नों के दो ही डिब्बे गये हैं, सोचने लगा कि. चोरी तो निश्चय ही हुई है, फिर ऐसे समय में मैं भी अपना स्वर्थ-साधन क्यों न कर लूं? राजा को तो, मैं सूचना दूंगा तभी उन्हें मालूम होगा कि चोरी हुई है, और चोरी में अमुक अमुक वस्तु इतनी गई है।

इस प्रकार विचार कर कोषाध्यक्ष ने, कोष में से रत्नों के आठ डिब्बे निकाल कर अपने घर रख लिये और राजा को सूचना दी कि, कोष में से रात को रत्नों से भरे हुए दस डिब्बे चोरी में चले गये।

इस सूचना को पाते ही, राजा को रात की बात का स्मरण हुआ। वह विचारने लगा कि, रात को जिसने अपने आपको चोर बताया था, सम्भवतः वही रत्नों के डिब्बे ले गया है। लेकिन उसने तो, रत्नों के दो ही डिब्बे चुरा कर लाने

को कहा था, फिर दस डिव्वे कैसे चले गये ? जान पड़ता है कि, आठ डिव्वे बीच ही में गायब हो गए है । इस तरह सोच-विचार कर, राजा ने अभयकुमार को रात वाले चोर का पता लगाने की आज्ञा दी ।

नगर में घूमते-घूमते, प्रधान अभयकुमार उसी व्यापारी की दूकान पर पहुँचा और उसके स्वर को पहचान शर अनुमान किया—रात को इसी ने अपने आपको चोर बतलाया था । अभयकुमार ने व्यापारी से पूछा—'क्या आपने रात को राजमहल में चोरी की थी ? यदि हाँ, तो क्या चुराया था और चोरी की वस्तु मुझे बतलाइये ।' व्यापारी ने चोरी करना स्वीकार करके दोनों डिव्वे अभयकुमार के सामने रख दिये । वह सत्य का महत्व समझ चुका था, इसलिये उसे ऐसा करने में किंचित् भी हिचकिचाहट न हुई ।

रत्नों के डिब्बों को देखकर विश्वास करने के लिए अभयकुमार ने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कि, 'क्या यही थे ?'

व्यापारी ने इस प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' कह कर दिया। कुमार ने डिब्बों सहित व्यापारी को साथ लेकर, राजा के सम्मुख उपस्थित किया । राजा, कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि, इसने तो दो ही डिब्वे चुराये थे, जो मिल गये; शेष आठ डिब्बों का पता और लगाओ ।

अभयकुमार ने अनुमान किया, और डिब्बों में कोषाध्यक्ष की ही चालाकी होगी । उसने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि, चोरी गये हुए दस डिब्बों में से दो डिल्वे तो मिल गये, शेष आठ डिब्वे कहाँ हैं ? कोषाध्यक्ष घबरा उठा और कहने लगा कि, चोरी हुई तब मैं तो अपने घर था, ऐसी अवस्था में मुझे यह क्या मालूम कि, शेष डिव्वे कहाँ है ?

अभयकुमार, कोपाध्यक्ष की घबराई हुई दशा को देख और

उस का अस्थिर उत्तर सुनकर ताड़ गया कि, आठ डिब्बों के जाने में इसी की बेईमानी है। उसने कोषाध्यक्ष को भय दिखाते हुए कहा—सत्य कहो, अन्यथा बड़ी दुर्दशा को प्राप्त होओगे।

झूठ कहाँ तक चल सकता है? कोषाध्यक्ष के होठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा—आठ डिब्बे मैंने अपने घर में रख दिये हैं। मैं अपने कर्त्तव्य और सत्य से च्युत हो गया इसके लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अभयकुमार ने कोषाध्यक्ष को भी आठ डिब्बों सहित राजा के सामने उपस्थित किया। कोषाध्यक्ष की धूर्तता और व्यापारी की सत्यपरायणता देख, राजा ने कोषाध्यक्ष को तो बन्दीगृह भेजा और व्यापारी को कोषाध्यक्ष नियत किया।

राजा ने व्यापारी को अपराधी होते हुए भी सत्य बोलने के कारण अपराध का कोई दण्ड न देकर, कोषाध्यक्ष नियत किया इसका प्रभाव लोगों पर क्या पड़ा होगा, यह विचारणीय बात है। चोरी का अपराध तो व्यापारी और कोषाध्यक्ष का लगभग समान ही था। लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोषाध्यक्ष झूठ। झूठ के कारण ही, कोषाध्यक्ष अपने पद से हटाया जाकर जेल भेजा गया और व्यापारी को सत्य के कारण ही, अपराध का दण्ड मिलने की जगह कोषाध्यक्ष-पद प्राप्त हुआ। राजा के ऐसा करने से, लोगों के हृदय में सत्य के प्रति कितनी श्रद्धा और झूठ से कितनी घृणा हुई होगी, यह आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

७७ : अंतिम अवस्था

लोग बूढ़ा आदमी देखते हैं, पर क्या सब को अपनी स्थिति का विचार आता है ? जवानी की मस्ती ऐसा विचार नहीं आने देती । योवन की कोमल और मधुर प्रतीत होने वाली कल्पनाओं में यह कठोर और नीरस सत्य स्थान नहीं पाता । असत् के बाजार में सत् की कोई पूछ ही नहीं है ! लेकिन अन्त में तो सत् ही सामने आता है ।

एक जवान आदमी जवानी के नशे में अकड़ता जा रहा था । सामने की ओर से एक बूढ़ा लकड़ी के सहारे आ रहा था । जवान आदमी की टक्कर से वह बूढ़ा गिर पड़ा । यद्यपि बूढ़े को गिराने का अपराध जवान का ही था, फिर भी वह बूढ़े पर नाराज होकर कहने लगा—'क्या जानते नहीं हो कि यह सड़क जवानों के चलने के लिए है । तुमने मेरे चलने में बाधा पहुंचाई हैं । क्या मुझे जानते नहीं ? आइन्दा ऐसी हरकत की तो हड्डियाँ चूर-चूर कर दी जाएंगी ।

बूढ़ा दबने वाला नहीं था । उसने कहा—अकड़ते क्यों हो ? मैं तुम्हें ही नहीं, तुम्हारी बुनियाद को भी जानता हूँ ।

जवान—मेरी बुनियाद को क्या जानते हो ?

बूढ़ा—तुम्हारी बुनियाद दो बूँद पेशाब ही तो है । दो बूंद पेशाब से मांस का लोथ बना, वह बढ़ा और तब तुम बाहर आये । यह तो तुम्हारी बुनियाद है और उस पर इतना घमण्ड करते हो !

७८ : असलियत

किसी जगह बाजार के बीच में एक पेड़ था। एक आदमी ने उस पेड़ को अपनी अंकवार (बाथ) में लपेट लिया और फिर चिल्लाना शुरू किया—अरे दौड़ो ! मुझे छुड़ाओ ? पेड़ ने मुझे पकड़ रखा है !

लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा—मूर्ख कहीं के ! पेड़ ने तुझे पकड़ रखा हैं या तूने पेड़ को पकड़ रखा है ?

आज संसार में लोगों की यही स्थिति हो रही है। वे कहते हैं—स्त्री, पुत्र आदि हमें नहीं छोड़ते ! यह कैसी उलटी बात है ! स्त्री-पुत्र आदि पदार्थों ने आपको पकड़ रखा है अथवा आपकी ममता ने उन्हें पकड़ रखा है ? स्मरण रहे, अगर आप इन्हें नहीं छोड़ेंगे तो ये आपको छोड़ कर अवश्य चले जाएंगे। संसार में कितना स्वार्थ भरा हुआ है, यह बात दो मित्रों की बात सुनने से स्पष्ट हो जायगी।

दो मित्र थे। उनमें से एक ज्ञानी और धर्मात्मा था और दूसरा संसार की माया में फंसा हुआ था। धर्मात्मा मित्र उससे कहता—'मित्र ! संसार की माया में इतने पचे-पचे मत रहो। दुनिया की सब चीजें दगा देने वाली हैं।' मगर वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता था।

एक दिन धर्मात्मा मित्र ने कहा—जिससे तुम खूब प्रेम करते हो उसकी परीक्षा करके देख लो। परीक्षा करने पर मेरी बात झूठ निकल जाय तो जो इच्छा हो, करना। दूसरे ने यह स्वीकार कर ली। धर्मात्मा ने उसे कहा—अपने शरीर की नाड़ी बन्द करके सो रहना। फिर देखना तुम जिसे प्यार करते

तुम्हें कैसा प्यार करती है ?

उसके घर में दो ही प्राणी थे—वह स्वयं और उसकी पत्नी। उसने अपनी पत्नी से कहा—आज बेसन का हलुआ बनाओ। पत्नी ने बढ़िया हलुआ बना कर तैयार किया। आज पति पत्नी प्रेमवश शामिल ही भोजन करने बैठे। भोजन कर चुकने के पश्चात् पति ने पेट दुखने का बहाना बनाया। पत्नी ते चूरन-चटनी दी। मगर उससे क्या लाभ हो सकता था ? पति झूठ-मूठ तड़फड़ाने लगा और फिर उसने वह नस दबा ली। उसकी नाड़ियां बन्द हो गईं। पत्नी ने यह हाल देख कर समझ लिया—हंस उड़ गया ! पति की मृत्यु हो गई !

अब पत्नी ने विचार किया—अगर मैं अभी रोने लगूंगी तो सारा मोहल्ला और सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हो जाएंगे और घर, चीजें, जो इधर-उधर फैली हुई हैं, उठा ले जाएंगे। यह सोचकर उसने सब चीजें एक कमरे में बन्द कर दीं। इसके बाद उसने सोचा—अब रोऊं ? मगर फिर एक बात याद आई। यह रोना-चिल्लाना आज ही तो खत्म होगा नहीं। अगर चार-पांच दिन भी चलता रहा तो भूखों मर जाऊंगी। अतः अभी जो हलुआ और मीठा दही पड़ा है. उसे पहले खा लूं ! फिर निश्चिन्त होकर रोऊंगी। यह सोचकर पत्नी चौके में गई। उसने खूब ठांस-ठाँस कर पेट भरा। फिर रोने की तैयारी करने लगी। उसी समय उसे एक बात और याद आ गई। पति के दाँतों में सोने की कीलें जड़ी थी। उसने विचार किया—अब मेरे यहाँ कोई कमाई करने वाला तो है नहीं। इनके दाँतों में सोने की जो कीलें लगीं हैं, उन्हें क्यों न निकाल लूं। सुना है—मुर्दे के शरीर से खून नहीं निकलता है और न उसे कोई दर्द ही होता है। तो पत्थर से दाँत तोड़कर ४-५ रुपये का सोना निकाल लेना ही उचित है। नहीं तो वह व्यर्थ चला जायगा।

पत्नी ने दाँत तोड़ने के लिए ज्यों ही पत्थर उठाया कि उसी

समय पति आँखें मलता हुआ उठ बैठा । पति की यह हालत देखकर पत्नी 'खमा-खमा' करने लगी— ऐसी दशा तो बैरी की भी न हो ! चलो, अलाय-बलाय टली ।

पति ने पूछा —क्या हुआ ?

पत्नी—कुछ तो नहीं । जो हो गया सो हो गया !

पति—जरा खुलासा करके कहो ।

पत्नी—बुद्धिमान् बीती बातों को याद नहीं करते ।

पति—घर सूना क्यों दिखाई देता है ? सब समान कहाँ गया ?

पत्नी— वह सब कोठे में डाल दिया है। पिछली बात भूल जाइए ।

पति—ठीक हैं पिछली सभी बातों को भूल जाना ही कल्याण-कारी है। मैं उन्हें भुलाने का प्रयत्न करूंगा । भूल गया तो मेरा उद्धार हो जायगा ।

मित्रो ! संसार की इस स्थिति पर टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है । आप अपने पिछले ममत्वमय जीवन को भूल कर आत्म-कल्याण में लगेंगे तो आपका परम कल्याण होगा ।

७१ : मृतक-भोज

मृतक-भोजन राक्षसी भोजन है । पवित्र ब्राह्मण पहले ऐसा भोजन नहीं खाया करते थे, किन्तु आज कई लोग इस अन्न को खाकर ब्राह्मणत्व से च्युत हो गये हैं । आज उनमें वह दिव्य तेज कहाँ है ? उनमें वह वीरता आज कहाँ है जिसके कारण एक बार सारा संसार

चकित था ?

गरीब लोग भूखों मरें—पेट भर अन्न भी न पा सकें और आप मृत्यु के उपलक्ष्य में भी लड्डू उड़ाएं ! मित्रो ! आपको यह शोभा नहीं देता । इस सम्बन्ध में एक उदाहरण लीजिए—

किसी गांव का पटेल मर गया । उस गांव में एक बावाजी हमेशा भिक्षा मांगने आया करते थे । इस दिन पटेल का 'औसर' था । बावाजी भिक्षा मांगते-मांगते उसी मकान में पहुंचे, जिसमें 'औसर' का भोजन बना था । लोगों ने उन्हें मालपुआ, खीर, पुड़ी और दो-चार शाक दिये । बावाजी ने सोचा—हमेशा थोड़ी-थोड़ी भिक्षा मिला करती थी परन्तु, आज मामला ही दूसरा है । आज इतनी भिक्षा मिली है कि दो-चार दिन का काम चल सकता है ! इसका क्या कारण है ?

आखिर बावाजी ने एक आदमी को आवाज दी और पूछा—आज यह भोजन किस उपलक्ष्य में है ?

उत्तर मिला—महाराज, इस गांव का पटेल मर गया है । आज उसका औसर है । पटेल बड़ा धर्मात्मा, न्यायी और भला आदमी था । उसके मरने से सभी लोग बहुत दुखी हैं ।

बावाजी—कैसे मर गया ?

आदमी—सांप ने डंस लिया ।

बावाजी समझ गये, दुनिया बड़ी ठगौरी है । वह बोले—

बलिहारी उस परड़ की जो पटेल को खाया ।
न्यात भी जीमी और हम भोजन पाया ॥

भाइयो ! आप लोग मिलकर उस सांप को अभिनन्दन-पत्र क्यों नहीं देते ?

लोग—वाह महाराज ! ऐसे दुष्ट सर्प को भी क्या अभिनन्दन-पत्र दिया जाता है ?

बावाजी—क्यों नहीं ?

लोग—ऐसे पापी को अभिनन्दन-पत्र देकर कौन पाप का भागी होगा ?

बाबाजी—अभिनन्दन-पत्र देने में पाप और खीर मालपुवा उड़ाने में पाप नहीं है ? यह कैसी मूर्खता है ?

बाबाजी की बात सुन कर लोगों ने समझा—आज बाबाजी भंग के नशे में मालूम होते हैं ! पर वास्तव में बाबाजी नशे में नहीं थे। उनके हृदय से मर्मपूर्ण वाक्य निकल रहे थे। उन्होंने फिर कहा—भाईयो ! सर्प ने तो दो ही दाँत मारे हैं। उसने खून भी नहीं पिया है परन्तु तुम लोग तो पटेल के मरने पर खीर-मालपुवे उड़ा रहे हो ! पटेल के घर वाले हाय-हाय करके रो रहे हैं और तुम हंसते-हंसते माल गटक रहे हो ! सच-मुच ही पटेल के प्रति यदि तुम्हारा आदर-भाव है तो कोई ऐसा काम करो जिससे दूसरों का उपकार हो ! उसका कोई ऐसा स्मारक बनाओ कि दूसरों पर भी उसके गुणों की छाप पड़े और दूसरे भी वैसे ही गुणी बनने का प्रयत्न करें।

बाबाजी के वाक्यों का उन ग्रामीणों पर अच्छा असर पड़ा। उन्होंने गो माता की सौगन्द खाकर ओसर-मौसर न करने की प्रतिज्ञा की।

भाइयो ! क्या आप ओसर-मौसर त्यागने की प्रतिज्ञा न लेंगे ? आप दयाधर्मी हैं। दूसरों को दुखी देख कर पसीजने वाले हैं ! आपको मौत के उपलक्ष्य में माल खाना नहीं सोहता।

८० : समय का मोल

समय की उपेक्षा मत करो। जो अवसर तुम्हें मिला है

प्रमाद में मत गंवाओ। गया समय फिर कभी हाथ नहीं आता। समय का क्या मूल्य है, यह बात आपको एक उदाहरण से बतलाता हूँ—

किसी गाँव में एक जोशीजी रहते थे। वह ज्योतिष-शास्त्र के बड़े विद्वान्, नीति में निपुण, सत्य शील पालने वाले आत्मनिष्ठ पुरुष थे। विद्वान् अकसर दरिद्र ही हुआ करते हैं। जोशीजी भी दरिद्रता से मुक्त नहीं थे। कहते हैं—लक्ष्मी और सरस्वती में वैर है। जहाँ लक्ष्मी होती है वहाँ सरस्वती नहीं और जहाँ सरस्वती का वास होता है वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। देखते हैं कि मूर्खों के पास धन का बाहुल्य होता है और विद्वानों के पास बिलकुल अभाव! विद्वान् पुरुष लक्ष्मी की उतनी परवाह भी नहीं करते, फिर भी उसके बिना संसार व्यवहार नहीं चलता। इस कारण कुछ इच्छा रखनी पड़ती है।

तो जोशीजी किसी के सामने हाथ नहीं पसारना चाहते थे। जोशिन इस अवस्था से दुखी थी। जोशीजी की एक पुत्री थी। जब विवाह के योग्य हुई तो जोशिन ने जोशीजी से कहा—सारे दिन घर में पड़े रहते हो। घर में लड़की है, सयानी हो रही है, विवाह करना है। कुछ खर्च की भी फिक्र है या दिन-रात पोथी-पत्रा ही पलटते रहोगे? तुम्हारे पीछे मैंने जिन्दगी में कभी सुख नहीं पाया!

जोशीजी उस समय पुस्तकावलोकन में मग्न थे। पत्नी की बातों से उनका ध्यान टूटा। उन्होंने पत्नी के वाक्यों में सत्य अंश देखा। विचार किया—पत्नी की बात ठीक है। कुछ धनोपार्जन न किया तो कन्या का विवाह कैसे होगा? इसके बाद उन्होंने सोचा—द्रव्योपार्जन तो करना ही होगा, मगर किसी से कुछ मांगने से पहले अपनी विद्या की परीक्षा भी तो कर लेनी चाहिए।

जोशीजी ग्रन्थों को टटोलने लगे। पचांग के पन्ने पलटने

लगे। पन्ने पलटते-पलटते उनका मुँह एकदम खिल उठा।

जोशिन ने पूछा—यह अचानक खुशी किस बात की है?

जोशीजी—समझ लो, अब अपनी दरिद्रता दूर हो गई।

जोशिन—कैसे हो गये हो? न कहीं गये हो न आये हो, और दरिद्रता दूर ही हो गई! मुझे नन्हीं-सी बच्ची समझ कर बहका रहे हो!

जोशी—न आने-जाने से क्या हो गया? मेरी पुस्तकों ने रास्ता दिखला दिया है। अब सब दुःख दूर हो जाएँगे।

जोशिन—क्या पागलों की-सी बातें कहते हो! मजूरी तुमसे होती नहीं, काम करते नहीं, बस पुस्तकों से धनवान् बनना चाहते हो! किसी भोली स्त्री को अपनी बातों से बहकाइए। मैं आपके चक्कर में आने वाली नहीं।

जोशी—तू हमेशा ऐसी ही बातें कहा करती है।

जोशिन—अच्छा बतलाइए, दरिद्रता कैसे दूर होगी?

जोशी—पुस्तक में ऐसा लिखा मिला है कि अमुक समय में, अमुक नक्षत्र के योग में, मन्त्र जाप के साथ मेरे 'हूँ' कहते ही यदि हाँडी में जवार ओर दी जाय तो उसके मोती बन जाते हैं।

जोशिन—वाह वाह! क्या गप्प मारी है! मैं तो पहले से ही जानती हूँ कि काम न करने का कोई न कोई बहाना चाहिए। और नहीं तो यही सही!

जोशी—तू कैसी मूर्खा है कि मेरी प्रत्येक बात पर अविश्वास ही अविश्वास किया करती है! क्या मैं कभी झूठ बोलता हूँ?

जोशिन—हाँ, यह बात तो मानती हूँ कि आप कभी झूठ नहीं बोलते। अच्छी बात है- मैं आपका कहा करूंगी।

जोशी—सब ठीक है, तैयारी करो।

जोशिन पड़ोस में रहने वाली एक सेठानी के घर गई।

सेठानी जोशिन को सदा उदास देखा करती थी। आज उसे प्रफुल्लित देखकर बोली—आज तुम्हारे चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई देती है। क्या शुभ समाचार है?

जोशिन—अब मेरे भाग्य खुलने वाले हैं। इसीलिए तुमसे एक चीज़ लेने आई हूँ।

सेठानी—बड़ी खुशी की बात है। ले जाओ क्या चाहिए!

जोशिन—थोड़ी जवार चाहिए।

सेठानी—जवार अपने यहाँ बहुत है। कहो कितनी दे दूं?

जोशिन—एक सूप भर दे दो।

सेठानी गरीब ही थी मगर हृदय उसका उदार था। जवार को साफ-सूफ करके जोशिन को देती हुई वह बोली—जोशिनजी, इससे भाग्य कैसे खुल जाएंगे?

जोशिन—जोशीजी अमुक समय में, अमुक नक्षत्र में एक मन्त्र की साधना करेंगे। जब वे 'हूँ' कहेंगे तभी मैं जवार हाँडी में डाल दूंगी। ऐसा करने से जवार मोती हो जाएगी।

सेठानी—बहुत अच्छी बात हैं। ईश्वर तुम्हारा भाग्य खोले! हमें भी तुम्हारी हवेली की कम से कम छाया तो मिलेगी ही! तुम गायें-भैंसें रखोगी, दूध-दही खाओगी तो छाछ हमें भी मिल जायगी।

जोशिन चली गई। सेठानी ने विचार किया—जोशीजी का घर दूर तो है नहीं, सिर्फ एक टाटी बीच में है। उस मौके पर अगर मैं भी उनके 'हूँ' कहने पर जवार ओर दूं तो क्या हानि है? मोती होंगे तो हो जाएंगे, नहीं तो खिचड़ी बन जायगी। बिगाड़ तो होगा नहीं।

जोशिन घर पहुंची। जोशीजी ने कहा—देखो, समय होने वाला हैं। चूल्हा जलाकर हाँडी ऊपर रख दो। मैं जब 'हूँ' कहूँ, उसी वक्त जवार डाल देना। क्षण भर की भी देरी मत करना।

जोशिन—एक दम डाल दूंगी देरी क्यों करूंगी?

जोशी- तू बातूनी बहुत है । याद रखना 'हूं' कहने के साथ ही डाल देना । नहीं तो सब बेकार हो जायगा ।

सेठानी ने सारी कार्रवाई चुपके-चुपके कर ली । इधर जोशिन ने भी चूल्हा जला लिया । जोशीजी मन्त्र पढ़ने लगे । वही समय, वही नक्षत्र और वही योग आते ही उन्होंने 'हूं' किया ।

'हूँ' की आवाज सुनते ही सेठानी ने हाँडी में जवार डाल दी । पर जोशिन 'हूँ' आवाज सुनकर पूछने लगी—'क्या अब डाल दूं ? आपने जो समय कहा था वह आ गया ? इस समय डालने से जुवार मोती बन जायगी ? अच्छा, देखना अब डालती हूँ । आपके कहने से डालती हूं, फिर मत कहना कि मेरा कहा नहीं किया !

जोशीजी ने अपना माथा ठोंका और उदास हो गये । उन्होंने सोचा – कितनी बार कहा था कि 'हूं' कहते ही जवार डाल देना, बातें मत बनाना । फिर भी इसने बातों में समय खो दिया । क्या मेरे भाग्य में दरिद्रता ही लिखी है ?

समय होने पर जोशिन ने हाँडी नीचे उतारी । देखा तो उसमें खीचड़ी थी । वह उलटी जोशीजी पर चिढ़ने लगी—वाह क्या बढ़िया मन्त्र है और कैसी उत्तम विद्या है ! कहीं जुवार के मोती होते हैं ? लो, अपने मोती संभाल लो !

बेचारे जोशी को काटो तो खून नहीं ! इधर पत्नी के वाक्य-बाणों से विंध रहे थे, उधर पश्चात्ताप की आग में जल रहे थे । उलटा चोर कोतवाल को डांट रहा है !

उधर पड़ोसिन ने भी हाँडी उतारी । उसकी थाली में उज्ज्वल मोतियों का ढेर लग रहा था ! उसकी प्रसन्नता का पार न रहा । वह जोशीजी की विद्या की तारीफ करने लगी । उसने सोचा—यह मोतियों का ढेर जोशीजी के ही प्रताप से ही हुआ है । कुछ मोती उन्हें भेंट करने चाहिए । वह मुट्ठी भर मोती लेकर जोशीजी के घर

गई। उसने अत्यन्त आदर के साथ मोती जोशीजी के चरणों में अर्पित कर दिये। वह बोली—महाराज, आपकी विद्या के प्रताप से ही मैंने यह मोती पाये हैं। लोभ के कारण थोड़े-से ही लाई हूँ। आप इन्हें स्वीकार कीजिए।

जोशी—मेरे प्रताप से कैसे ?

सेठानी ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर जोशिन से कहा—जोशिनजी, आप जोशीजी को जली-कटी सुना रही हो, पर वास्तव में दोष आपका ही हैं। देखो, मैंने समय पर जवार डाली तो वह मोती बन गई कि नहीं !

जोजीजी अपनी विद्या की सफलता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। जोशिन, जोशी के चरणों में गिर पड़ी। कहने लगी—सचमुच मैं बड़ी अभागिनी हूं। मुझे क्या पता था कि जरा-सी देर में इतना फर्क पड़ जायगा ! अब आप दूसरा मुहूर्त्त निकालिए। इस बार मैं हर्गिज चूक नहीं करूंगी।

जोशी—"लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।" भाग्य लिखे को कौन मिटा सकता है ? अब मुहूर्त्त मेरे हाथ में नहीं है। ऐसा मुहूर्त्त हमेशा नहीं आया करता। हजारों वर्षों में कभी ऐसा योग मिलता है।

मित्रो आपको जो अनमोल अवसर मिला है, वह बहुतों को असंख्य-असंख्य जन्म धारण करने पर भी नही मिलता इस अवसर को वृथा प्रमाद में गंवा देने वालों को घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अगर आप पश्चात्ताप की आग में दग्ध होने से बचना चाहते हैं तो इस अनमोल अवसर का सदुपयोग कर लीजिए।

८० : श्रद्धा

एक सेठ के दो लड़के जंगल में गये। वहाँ से वे मयूरनी के दो अण्डे उठा लाये। दोनों अंडे मुर्गी के पास रख दिये गये। मुर्गी उन अंडों को अपने पंखों के नीचे रखती और उनकी हिफाजत करती।

दोनों लड़कों में से एक को पूरा विश्वास था कि मयूरनी के अंडे में से मयूर का बच्चा जरूर निकलता है। यह बात प्रत्येक मनुष्य जानता है, परन्तु दूसरे लड़के में विश्वास की कमी थी। उसका चित्त बहुत अस्थिर था। अतएव उसे सन्देह होता—अंडे में से मयूर निकलेगा या नहीं? वह अंडे को कभी ऊँचा करता, कभी नीचा करता, कभी हिला-डुलाकर देखता कि इसमें बच्चा है या नहीं? दूसरा लड़का अपनी शान्ति में मस्त था। वह जानता था कि मयूरनी के अंडे में से बच्चा निकलेगा अवश्य, पर निकलेगा समय पर ही।

अस्थिर चित्त वाले लड़के के अंडे का रस जम न सका। हिलाने-डुलाने से वह पतला पड़ गया। उसने एक दिन ज्यों ही अंडा उठाया कि वह फूट गया। दूसरे अंडे को समय होने पर मुर्गी ने फोड़ा। भीतर से मयूर का बच्चा निकला। जब वह बड़ा हुआ तो उसे नृत्यकला सिखलाई गई। एक दिन कहीं जलसा होने वाला था। वह लड़का अपने मयूर को वहाँ ले गया। मनुष्य पक्षियों का प्रेमी होता ह हैं, फिर मयूर जैसे सुन्दर पक्षी को कौन न प्यार करेगा? उस मयूर को देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये। परन्तु जब उसने अपनी नृत्यकला दिखलाना आरम्भ किया तब तो सब लोगों के मुख से 'वाह-' और 'शाबाश शाबाश' की आवाजें

निकलने लगीं। सब ने उस पालने वाले लड़के को धन्यवाद दिया। यह दृश्य देखकर दूसरा लड़का बहुत पछताया और दुखी हुआ।

मित्रो! एक अपनी दृढ़ श्रद्धा के कारण प्रसन्न हुआ और धन्यवाद का पात्र बना और दूसरा अश्रद्धा के कारण दुखी हुआ। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर वीतराग की वाणी पर जो प्रगाढ़ श्रद्धा रखता है, वह अवश्य ही सुख का भागी होता है।

८२ : ऊंची–भावना

एक लखेरा गधी पर चूड़ियों का गौन लाद कर बाहर जाया करता था। गधी की चाल सुस्त थी, इसलिए यह उसको टिक-टिक करता हुआ 'चल मेरी बहिन, चल मेरी काकी' आदि कहा करता था।

लोग मसखरे होते ही हैं। राह चलते मनुष्य को भी वे पागल बनाने की कोशिश करते हैं, तो गधी को मां, बहिन और काकी बनाने वाले को कब छोड़ने लगे—वाह रे बेवकूफों के सरदार! गधी को भी माँ-बहिन बना रहा है। तुझे शर्म नहीं आती?

लखेरे ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—भाइयो! मेरा धन्धा और ही प्रकार का है। राजाओं, रईसों, सेठों और साहूकारों के घर की स्त्रियों के हाथों में मुझे चूड़ियाँ पहनानी पड़ती हैं। मगर मैं स्त्री जाति के प्रति माता-बहिन की भावना न रक्खूँ तो मेरा धन्धा तो डूबे सो डूबे ही, मेरा सारा भव भी डूब जाय।

ऐसी भावना वाले चाहे कोई लखेरा हो या और कोई, अवश्य ही धन्यवाद का पात्र है। ऐसी ऊँची और पवित्र भावना

वाले नररत्न ही अपने जीवन को ऊंचा बना सकते हैं।

८३ : पाप-पुराय

एक सेठ थे। सेठ जब दुकान से लौट कर आते तो उन्हें गरम-गरम रोटी दाल मिलती। सेठजी भोजन करके वापिस लौट जाते। तब सेठानी चूल्हे में से गोल बाटियाँ निकालती, उन्हें झाड़-सूफ करके घी में डुबा कर चीनी के साथ मजे में खाया करती थी। सेठजी कभी कहते—'तू भी भोजन करने बैठ जा। साथ ही साथ खा लें।' तो सेठानी कहती—अजी पहले आप तो जीम लीजिये। मैं पड़ी चूल्हें में। सेठ इस उत्तर को सुनकर समझता—मेरी पत्नी बड़ी पतिभक्ति करने वाली है। देखो न कभी साथ भोजन करने नहीं बैठती। मेरे भोजन करने के बाद ही भोजन करती है।

बहुत दिनों तक यही क्रम चलता रहा। एक दिन कार्यवश सेठानी पड़ौस में गई और भोजन का समय हो जाने से सेठजी घर में आ पहुंचे। थोड़ी देर बैठे तो उन्हें सेठानी की बात याद आ गई। सोचा—सेठानी हमेशा कहा करती है कि मैं पड़ी चूल्हे में, तो देखना चाहिए बात क्या है? ज्यों ही उन्होंने चूल्हे की राख उठाई कि अन्दर से गोल बाटी निकली। देखकर सेठजी समझ गए कि सेठानी के कहने का आशय क्या है।

सेठजी उसी समय बाटियां खाने बैठ गये। जब वह खा चुके और हाथ-मुंह धो चुके तब सेठानी आई और बोली— तैयार है। परोसूं?

सेठ— आज पहले तुम्हीं जीम लो।

सेठानी—अजी, मैं तो पड़ी चूल्हे में।

सेठ खिलखिला कर हंस पड़े और बोले – हमेशा तुम चूल्हे मे पड़ती थीं, आज मैं ही पड़ गया।

सेठानी ने चूल्हे की तरफ देखा। उसकी लज्जा का पार न रहा।

भाइयो! जो बहिन भुक्कड़ होती है, अपने स्वार्थ के लिए भोजन बनाती है, किन्तु दूसरों को सुख-शान्ति एवं साता पहुंचाने के उद्देश्य से भोजन बनाने वाली बहिन पाप में भी पुण्य का उपार्जन कर लेती है।

८४ : 'यह भी न रहेगी'

आज मैं बहुत से भाइयों के चेहरे पर उदासी देखता हूँ। इस उदासी का कारण क्या है? लोग उदास क्यों हैं? ये भूखे नहीं हैं, सब को समय पर खाने को भोजन मिलता है। ये नंगे भी नहीं हैं, सब के पास पहनने को अच्छे-अच्छे कपड़े हैं। फिर उदासी का कारण क्या है? एक ही कारण है और वह यह कि थोड़ीसी हानि होने से ही यह रंज कर बैठते हैं और थोड़ा-सा लाभ होने से ही फूल जाते हैं।

एक बादशाह को मानसिक बीमारी थी। वह दिन-दिन सूखता चला जा रहा था। उसको खाने पीने की किसी प्रकार की कमी नहीं थी। फिर भी वह इतना दुबला और तेजो हीन दिखाई पड़ता था, मानो कई दिनों से उसे भोजन नसीब नहीं हुआ है।

बादशाह का वजीर बहुत बुद्धिमान् था। उसने बीमारी का

कारण समझ लिया । अतएव एक दिन बादशाह से निवेदन किया—हुजूर, आप दुबले होते जाते हैं ।

बादशाह—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता हैं, पर मैं अपनी बीमारी को समझ नहीं पा रहा हूं ।

वजीर—मैं आपकी बीमारी को समझ गया हूँ । उसे दूर करने के लिए एक मंत्रित अंगूठी आपको दूंगा । उसे पहन रखने से बीमारी दूर हो जायगी ।

बादशाह—बहुत अच्छा ।

थोड़े दिनों के पश्चात् वजीर ने बादशाह को एक अंगूठी दी और कहा—हुजूर अब आपकी बीमारी चली गई समझिए । अब किसी प्रकार की चिन्ता न होगी ।

बादशाह को सन्तोष हुआ । उसने उंगली में अंगूठी पहन ली ।

कुछ दिनों बाद खबर आई कि अमुक गांव लुट गया है, शाही सिपाही मारे गये हैं और बहुत हानि हुई है ।

इस खबर से बादशाह को बहुत चिन्ता हुई । जब वजीर आया तो बादशाह ने उससे कहा—वजीर, तुम कहते थे कि मेरी सब चिन्ताएं दूर हो गईं, पर मुझे तो इन समाचारों से बड़ा रंज हो रहा है ।

वजीर—आप जरा अंगूठी पर नजर डालिए ।

अंगूठी पर लिखा था—'यह भी न रहेगी ।'

यह शब्द बादशाह को शान्तिदायक हुए । वह समझ गया कि आज जो स्थिति है वह कायम रहने वाली नहीं है ।

कुछ दिनों बाद खुशी के समाचार आये । बादशाह हर्ष के मारे फूल उठा । तब वजीर ने अंगूठी की तरफ इशारा किया—'यह भी न रहेगी ।' यह शब्द पढ़ कर बादशाह के हर्ष का उफान शान्त हुआ । अब बादशाह समझ गया कि मेरी बीमारी की सच्ची

दवा यही है।

मित्रो ! यही बात आप अपने लिए समझो। विपत्ति आने पर विषाद और सम्पत्ति मिलने पर हर्ष मत करो। प्रत्येक स्थिति में समभाव रक्खो। संसार में लिप्त न होओ। अपने अन्तःकरण को समभाव से भूषित करना कठिन कार्य नहीं है। थोड़े दिनों के अभ्यास से यह सुगम हो जायगा।

८५ : मच्छीमार साधु

एक राजा को जुआ खेलने का शौक लग गया। उसने समझा-वैसे तो बड़े परिश्रम से और बहुत दिनों में खजाना भरेगा; जुए से जल्दी भर जायगा। उसे सीधा धन कमाने की इच्छा हुई।

राजा के पास बहुत से पंडित आया करते थे। वे राजा को बहुत समझाते, पर वह किसी की न सुनता। पंडित आखिर दुनियादार थे। उन्हें राजा का लिहाज रखना पड़ता था। अतएव वे जोर देकर कह भी नहीं सकते थे। मगर एक दिन एक मस्त फक्कड़ आया। उसे राजा की बुरी लत का पता चला। उसने सोचा—यह बहुत बुरी बात है। राजा बिगड़ गया तो सारी प्रजा बिगड़ जायगी। 'यथा राजा तथा प्रजा।' प्रजा का सुधार और बिगाड़ राजा पर ही निर्भर है। किसी उपाय से राजा को सुधारना चाहिए।

अवसर देख कर उस साधु ने अपने कन्धे पर मछली फँसाने का जाल रख लिया और वह जंगल में घूमने लगा। संयोग से

राजा भी उधर आ निकला। साधु के कन्धे पर जाल देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने सोचा—यह कौन व्यक्ति है जिसने साधु का भेष बनाया है पर मच्छीमार का काम करता है। आखिर राजा ने उसे अपने पास बुला कर पूछा—तुम कौन हो ?

साधु—मैं साधु हूं।

राजा—साधु होकर मच्छी मारते हो ?

साधु—हाँ, माँस भी खाता हूँ।

राजा—क्या कहते हो ? साधु होकर माँस खाते हो ?

साधु—हाँ, खाता हूं पर मदिरा के साथ मिलाकर।

राजा (आश्चर्य से)—मदिरा भी पीते हो ?

साधु—वेश्यागमन का आनन्द मदिरापान किये बिना नहीं आता।

राजा—छिः छि ! साधु होकर वेश्यागमन भी करते हो ?

साधु—जी हाँ, मैं चोरी भी करता हूँ।

राजा—साधु होकर चोरी ! और फिर मेरे सामने उसे स्वीकार करते हो ?

साधु—जुआ भी तो खेलता हूँ। सच पूछिए तो जुए के कारण ही यह सब आदतें मुझ में आ गई हैं।

साधु की बात सुनकर राजा चौंक पड़ा। उसने मन में सोचा—जुआ तो मै भी खेलता हूँ ! जो काम मैं स्वयं करता हूँ, उसके लिए दूसरे को दंड किस प्रकार दे सकता हूँ ?

साधु की मुस्कान भरी मुखमुद्रा देख कर राजा समझ गया कि यह कोई व्यसनी पुरुष नहीं है। मुझे शिक्षा देने के लिए ही इन्होंने यह दिखावा किया है। अन्त में राजा साधु के चरणों में गिर कर बोला—महात्मन् ! आपने मुझे सुधारने के लिए इतना कष्ट उठाया है। मैं आपका आभारी हूं : क्षमा कीजिए।

साधु ने कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मेरा प्रयत्न सफल हुआ। मैं ऐसे कष्ट को कष्ट नहीं समझता। संसार को सुधारना, लोगों को गलत रास्ते से हटाकर सही राह पर लाना साधुओं का कर्त्तव्य ही है।

मित्रो! संतों के समागम की ऐसी महिमा है। अनेक विद्वान् से भी जो काम नहीं होता, वह सच्चे सन्त पुरुष के समागम से सहज ही हो जाता है।

८६ : शरणागत प्रतिपाल

मैंने सुना था, सन् १९२३ के लगभग दिल्ली में एक दरबार भरा था। उसमें भारत के तमाम राजा-महाराजाओं ने भाग लिया था। उसमें रतलाम के कुंवर भी गये थे। उनकी उम्र बहुत छोटी थी। उनके साथ एक मुंशीजी आये थे, जो शायद उस समय रतलाम के दीवान या और कोई ऑफीसर रहे होंगे। दरबार में सब राजाओं के लिए कुर्सियाँ लगाई गई थी पर रतलाम के कुंवर क्योंकि बहुत छोटे थे, अतएव उनके लिए कोई कुर्सी नहीं थी। मुंशीजी ने सोचा—कुंवर साहब के लिए कोई कुर्सी नहीं है और इधर-उधर बैठना भी ठीक नहीं है। लौट जाने से रतलाम की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचती है। मुंशीजी बड़े चतुर आदमी थे। आखिर उन्होंने कुंवर साहब को लाट साहब की गोद में बिठला दिया।

यह देख लाट साहब चौंक उठे। बोले—हैं, यह क्या किया? तब मुंशीजी ने नम्रता से उत्तर दिया—मैंने तो आपकी गोद में

पास खेत हैं, बैलों की जोड़ी है। फिर झूठ क्यों बोलता है?

किसान—झूठ बोलना मैं नहीं जानता। मेरे पास होता तो कभी का चुका देता।

सेठ—ऐसा झांसा किसी और को देना। बहुत दिनों में पकड़ पाया है। अब मैं नहीं छोड़ने का। चल मेरे घर पर। कर्ज चुकाये बिना हर्गिज नहीं छोड़ूँगा।

यह कह कर सेठ उसे अपने घर ले गया। सेठ ने जहाँ बिठलाया, वहीं वह बैठा रहा। बैठे बैठे तीन दिन हो गये। किसी ने रोटी के टुकड़े के लिए भी उसे न पूछा। सब अपने-अपने काम में मस्त थे। तीन दिन बाद अचानक सेठजी की निगाह उस पर पड़ी। उन्हें ख्याल आया कि तीन दिन से यह यहीं बैठा है। इसने न कुछ खाया है, न पिया है।

सेठजी समझ गये कि इसके पास देने को कुछ नहीं है। आखिर उनका दिल पसीजा और उसे जाने की छुट्टी दी। बोले—जाओ, कर्ज जल्दी चुकाने का ध्यान रखना।

किसान घर पहुँचा। उसकी स्त्री और बाल—बच्चे भूखे बिल-बिला रहे थे। स्त्री ने कहा—घर में एक दाना भी नहीं है। तीन दिन तक कहाँ चले गये थे? किसान ने आप बीती सुना दी। साथ ही कहा—मैं भी तीन दिन का भूखा हूँ। कुछ हो तो ले आओ।

किसान की स्त्री मर्माहता होकर बोली—लाऊँ कहाँ से? बच्चों के लिए इधर-उधर से रोटी ले आई थी। मैं स्वयं तीन दिनों से भूखी हूँ। समझती थी, आप आएँगे तो कुछ लाएँगे। अब मैं क्या करूँ?

पति और पत्नी—दोनों का साहस चुक गया। भला इस भूख में मेहनत-मजदूरी भी कैसे हो सकती है? निराश हो किसान ने कहा—इस जिन्दगी से मौत क्या बुरी है? दोनों

जहर क्यों न खालें ?

किसान की पत्नी इस भयानक विचार से घबरा उठी। उसने कहा नहीं, ऐसा विचार मत कीजिए। एक बार उन्हीं सेठजी के पास जाकर कुछ और मदद माँग लेना उचित है।

किसान मुझे तो अब लाज आती है।

पत्नी—लाज किस बात की ? हजम कर जाने की तो अपनी नीयत है नहीं। जाकर कहिए—सेठ साहब, हमारे यहाँ खाने को कुछ नहीं है। खाये बिना काम नहीं होता। मर जाएँगे तो आपका कर्ज सारा डूब जायगा। जिन्दा रहें तो अगला-पिछला सब चुका देंगे।

स्त्रियाँ लक्ष्मीरूप होती हैं। उनकी सलाह कई बार इतनी अच्छी होती है कि हतप्रभ मनुष्य के ख्याल में भी नहीं आती। किसान अपनी पत्नी की सलाह मानकर सेठ के पास गया। ज्यों की त्यों सारी बात सेठजी से कह दी। सेठ दयालु था। उसने किसान की बात पर विश्वास करके कहा—अच्छा, तू जितना ले जा सके उतने गेहूँ बाँध कर ले जा।

गेहूँ लेकर किसान घर पहुंचा तो उसकी पत्नी को बड़ी प्रसन्नता हुई। किसी प्रकार वे अपना काम चलाने लगे। मगर किसान को दिन रात यही चिन्ता लगी रहती कि सेठ का कर्ज किस प्रकार चुकाया जाय ? वर्षा के दिन नजदीक आ गये थे। किसान के पास खेती करने का कोई साधन नहीं था। उसने स्त्री से कहा—अब चोरी किये बिना सेठ का कर्ज अदा नहीं हो सकता। मैं चोरी करके ही सेठ का कर्ज अदा करूँगा !

स्त्री बोली—चोरी करोगे तो पकड़े जाओगे। यह काम अपने को नहीं सोहता।

मगर किसान अपने संकल्प में दृढ़ रहा। एक दिन

वह चोरों का वेष बनाकर चोरी करने निकल पड़ा।

रास्ते में २९ चोर कहीं चोरी करने जा रहे थे। वे इसे देखकर दौड़ने लगे। तब किसान बोला - भाइयों! डरो मत। मैं भी चोर हूँ। चोरी करने ही निकला हूँ। मुझे भी साथ ले लो तो अच्छा हो।

चोरों ने हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला मजबूत आदमी देख कर उसे अपने साथ ले लिया। सब मिलकर उसी शहर में चोरी करने गये, जहाँ उस किसान का सेठ रहता था। चोरों ने धनवान् की हवेली देखकर सेंध लगाई। अन्दर घुसने का अच्छा रास्ता बन गया।

इसके बाद चोरों के मुखिया ने कहा—जो सबसे पहले अन्दर घुसेगा उसे सबसे ज्यादा हिस्सा मिलेगा। बोलो, कौन तैयार होता है?

किसान ने कहा—मुझे अपने सेठ का कर्ज चुकाने के लिए धन की विशेष आवश्यकता है। मैं पहले जाऊँगा।

किसान सेंध में होकर भीतर घुसा। उसने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो वह घर सेठ का ही मालूम हुआ। वह चट बाहर निकल कर बोला—भाइयो! यहाँ से चोरी नहीं कर सकते। यह तो मेरे सेठ का ही घर है।

चोर—पागल! कहीं चोरी के लिए भी ऐसा विचार किया जाता है?

किसान—नहीं, इस घर में चोरी नहीं कर सकते।

चोर—चल, हट, हम भीतर घुसेंगे।

किसान—हर्गिज नहीं। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, यहाँ चोरी नहीं करने दूंगा।

चोरों में साहस ही कितना? वे सब चुपचाप वहाँ से चलते बने।

किसान ने सेठ को आवाज देकर जगाया। सारी कहानी सुनाकर सावधान रहने की बात कह कर वह चलने लगा। सेठ ने उसका हाथ पकड़ लिया। किसान बोला—मैंने आपकी चोरी नहीं की है फिर क्यों मुझे पकड़ते हैं?

सेठ गद्गद् होकर बोला—तू धन्य है। मैंने सारा कर्ज भर पाया। आज तू मेरी रक्षा न करता तो मेरी तकदीर फूट जाती। खैर, अब यह घर तेरा है। तू मेरा भाई है। जब कभी जिस चीज की आवश्यकता हो, निस्संकोच ले जाया कर।

मित्रों! जिस प्रकार तीस चोरों में से एक चोर के फूट जाने से २९ का दाव न लगा और सेठ का धन बच गया, उसी प्रकार दिन-रात के तीसों मुहूर्त्त रूप चोर आत्मिक धन को लूट रहे हैं। अगर उनमें से एक मुहूर्त को भी अपना लिया जाय—एक मुहूर्त्त भी सामायिक आदि धर्मक्रिया में लगा दिया जाय तो आत्मधन की चोरी को सहज ही बचाया जा सकता है।

८८ : पंचों का मकान—शरीर

कलकत्ता भारतवर्ष का सबसे बड़ा शहर है। उसकी आबादी भी घनी है। वहाँ लोगों को रहने के लिए मकान तक नहीं मिलते। ऐसी स्थिति में हरेक को बड़ा मकान मिलना मुश्किल है। गृहस्थ के यहाँ विवाह आदि कई काम होते रहते हैं। ऐसे अवसरों पर बड़े मकान के बिना काम नहीं चलता। इसी दृष्टि को सामने रखकर किसी जाति के पंचों ने मिलकर एक बड़ा जातीय मकान बनवाया। उस जाति का कोई भी व्यक्ति जिसे

प्रसंग पर उसे काम में ला सकता था। मकान लेने का नियम यह था कि उसे जो लेना चाहे, किरायानामा लिख दे और किराया तय कर ले। लोग इसी नियम के अनुसार मकान लिया करते और भाड़ा दिया करते थे। कार्य हो चुकने पर मकान पंचों को सौंप दिया जाता था

सब मनुष्य सरीखे नहीं होते। एक मनुष्य ने लड़के के विवाह के लिए मकान माँगा। मकान उसे नियमानुसार दिया गया। विवाह का कार्य समाप्त हो गया। दो चार दिन अधिक बीत गये। लोगों ने समझा-अब मकान खाली हो जायगा। पर जिसने मकान लिया था, उसने मन में सोचा—मकान बहुत अच्छा है। ऐसा मकान मुझे और कहाँ मिलेगा? आखिर पंचों का मकान है। मैं भी पंच हूँ। मैं मकान खाली नहीं करूँगा।

इस तरह बहुत दिन बीत जाने पर भी जब उसने मकान खाली नहीं किया तो पंचों के पास शिकायत पहुँची। पंचों ने अपना आदमी भेज कर कहलाया—आपके लिखे अनुसार दिन समाप्त हो चुके हैं। अब आप तुरन्त मकान खाली कर दीजिए। परन्तु वह मनुष्य उस आदमी की बात सुनकर आग बबूला हो गया। बोला—जा, जा, पंचों से कह दे कि मकान खाली नहीं होगा। मकान पंचों का है। मैं भी पंच हूँ। क्या वे अकेले ही पंच है?

नौकर ने पंचों से यही बात कह दी। पंच अचम्भे में पड़ गये। कोई रास्ता न देखकर उन्होंने अदालत की शरण ली। पुलिस आई। उसने मकान खाली कर देने का सरकारी हुक्म दिखलाया। कहा—इसी वक्त मकान खाली करो, वरना चालान कर दिया जायगा।

वह आदमी उधार खाये बैठा था। पुलिस की बात सुन कर उन पर उबल पड़ा। मार-पीट करके पुलिस को भगा दिया।

अब मामला जटिल बन गया। पहले पंच मुद्दई थे, अब

सरकार भी मुद्दई बन गई। आखिर वह आदमी गिरफ्तार कर लिया गया। फौजदारी मुकदमा चलाया गया।

उस आदमी ने अपने बचाव में कहा—पुलिस ने मुझे अपने मकान में से निकाल कर अत्याचार किया है। मकान पंचों का है और मैं भी पंच हूँ। फिर मुझे मकान में से क्यों निकाला जाता है? मगर सार्वजनिक सम्पत्ति को न्यायालय व्यक्ति की सम्पत्ति कैसे स्वीकार कर लेता? फैसला हुआ तो मालिक बनने की जालसाजी और फौजदारी—तीनों अपराधों में उसे कड़ी सजा मिली। मकान-मालिक बनना तो दरकिनार, वह बस्ती में भी नहीं रह सका।

मित्रों! इस दृष्टान्त को सामने रख कर सोचना चाहिए—यह शरीर पंच भूत रूपी पंचों का मकान है। हमें पुण्य रूप किराया देने पर कुछ कर लेने के लिए यह मिला है। अतएव इसका मालिक बनने की चेष्टा न करते हुए जल्दी ही शुभ काम कर लेना चाहिए, ताकि पंचों को धक्का देकर निकालने की नौबत न आवे। अगर आप वृथा स्वामित्व जमाने की चेष्टा करेंगे तो अन्ततः नरक रूप कारागार का अतिथि बनना पड़ेगा।

८१ : सौ सयाने एक मत

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा—'सौ सयानों का एक मता और एक मूर्ख के सौ मता' कैसे? बीरबल ने कहा—जहांपनाह! इसका उत्तर कल दूंगा।

रात्रि में बीरबल अच्छे-अच्छे सौ सयानों के पास गया। उनसे कहा—लाल बाग हौज में, बिना कुछ बोले एक घड़ा दूध का

डाल आना।

उन्होंने पूछा—वह किस काम आएगा?

वीरबल—बादशाह सलामत होली खेलेंगे।

समझदारों ने कहा—ठीक है। आज्ञा का पालन किया जायगा।

सब समझदारों ने अपने-अपने मन में सोचा—सौ आदमी दूध के घड़े हौज में डालेंगे। बादशाह को दूध पीना तो है नहीं, अगर मैं उसमें मै एक घड़ा पानी डाल दूं तो क्या हर्ज है? इस प्रकार सोच कर सभी ने एक-एक घड़ा पानी हौज में डाल दिया।

बादशाह और वीरबल हौज देखने गये। बादशाह ने हौज देखकर कहा—यह क्या? हौज में तो पानी है। इसे तो दूध से भरवाने को कहा था न?

वीरबल—हुजूर, आपने दूध से ही भरवाने का हुक्म दिया और मैंने भी लोगों को दूध से भरने के लिए ही कहा था।

बादशाह—अच्छा, उन सब को बुलाया जाय।

आखिर सब समझदार-सयाने इकट्ठे हुए। वीरबल ने उनसे कड़क कर कहा—मैंने दूध के घड़े लाने के लिए कहा था। तुमने हौज पानी से क्यों भर दिया? तुमने बादशाह सलामत की आज्ञा को भंग किया है। तुम्हें भारी से भारी दण्ड दिया जायगा।

सौ समझदारों में से एक ने उठ कर निर्भयता से कहा—श्रीमान् आपने हमें दोषी ठहराया और दण्ड देने का विचार भी कर लिया, मगर पहले हमारी अर्ज सुन लेते और बाद में हुक्म फरमाते तो अच्छा था!

बादशाह—बोलो, क्या कहना चाहते हो?

समझदार—हुजूर, मैं सिर्फ इस खयाल से पानी का घड़ा लाया था कि बादशाह होली खेलेंगे तो खेल के लिए दूध क्यों बिगाड़ा जाय? हां, पीने के लिए यदि दूध मंगवाया होता तो

हम अच्छे से अच्छा लाकर हाजिर करते । फिजूलखर्ची होते देख हमने किफायतसारी का काम किया है । मेरा खयाल है कि मेरे और सब साथी भी इसी खयाल से पानी का घड़ा लाये होंगे ।

उन सब ने कहा—हाँ, यही विचार था ।

उसने फिर कहा—हुजूर को मालूम हो गया है कि हमने सिर्फ किफायतसारी की गर्ज से ही ऐसा किया है । मगर आप हम लोगों को फाँसी की सजा दे देंगे तो आपके राज्य में किफायत करने वाले लोग कहाँ से आएँगे ?

बादशाह ने सोचा—बात ठीक है ।

वीरबल बोले—हुजूर, देखा आपने सौ सौ सयानों का एक मता ।

बादशाह वीरबल के इस प्रत्यक्ष उदाहरण से बहुत प्रसन्न हुआ ।

मित्रो ! आप लोग अगर समझदार हैं तो आपका भी एक ही विचार, एक ही संकल्प और एक ही भावना होनी चाहिए । आपस में फूट होने से संघ निर्बल और निस्तेज हो जाता है । चक्रवर्ती भरत ने जब अपने भाइयों को अपने अधीन करने का विचार किया था तो उन्होंने एकमत होकर ही उसका प्रतिकार किया था ।

९० : अस्पृश्यता का अभिशाप

जैनधर्म का विधान है कि तप करने से शूद्र भी ब्राह्मण बन सकता है । हिन्दू शास्त्र से भी इसी मत की पुष्टि होती है ।

निसंकोच होकर कहा जा सकता है कि आज शूद्रों के प्रति जितनी घृणा की जाती है, पहले उतनी नहीं की जाती थी। पीछे से लोगों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए मनगढ़न्त नियम बना लिए हैं। इन मनगढ़न्त नियमों से हिन्दू जाति की भारी क्षति हुई है।

हिन्दू जाति अपने अन्त्यज भाइयों पर इतना जुल्म करती है कि उनकी कहानी सुनकर ही हृदय रो उठता है। 'चाँद' पत्रिका के अछूतांक में टामस नामक एक भारतीय ईसाई की आत्मकथा छपी है। उसे पढ़कर हृदय हिल उठता हैं। अन्तरात्मा पुकारने लगती है—संसार में अपनी सभ्यता का सिक्का जमाने वाली हिन्दू जाति आज किस प्रकार निष्ठुर होकर अपने ही भाइयों पर अत्याचार पर तुली हुई है !

टामस भारतीय ईसाई थे। बड़े हंसमुख और प्रसन्नचित व्यक्ति थे। जाति-भाई होने के कारण ईसाइयों पर तो उनकी कृपा रहती ही थी, मुसलमानों पर भी वे बड़े मेहरबान थे। सिर्फ हिन्दुओं पर बहुत क्रुद्ध रहते थे और उन्हें देखकर नाक-भौंह सिकोड़ा करते थे। वे रामपुरा में तहसीलदार थे। हिन्दुओं के मामले में आवश्यकता से अधिक सख्ती से काम लिया करते थे।

उनके पास कई क्लर्क थे। उनमें एक ब्राह्मण पंडित भी था। वह लिखता है—टामस अपने अदने से अदने मुसलमान क्लर्क को प्रेम की दृष्टि से देखते थे, पर मैं उनका रीडर था। बड़ी सावधानी से काम करता था, तो भी मुझ पर वक्र दृष्टि रखते थे। कभी थोड़ी-सी भूल भी हो जाती तो साहब मुझे डांटते-फटकारते पर मुसलमान मुंशी से बड़ी गलती हो जाने पर भी वे केवल मीठी फटकार बतलाते। उनके इस दुरंगे व्यवहार से मेरा हृदय जल उठता। मैं मन ही मन सोचता—मुझ पर इतनी शनिदृष्टि क्यों रहती है ? पर कारण पूछने की हिम्मत न हुई।

एक बार मेरी स्त्री बीमार पड़ी। दवा-दारू का प्रबन्ध करने

के लिए छुट्टी की आवश्यकता पड़ी। मैंने छुट्टी माँगी तो साहब ने बुरी तरह झिड़क दिया। क्रोध के मारे मेरा सारा शरीर भन्ना उठा। आंखें लाल हो गईं। पर करता क्या? उनका मातहत जो ठहरा। पर निश्चय कर लिया कि आज कारण पूछ कर ही रहूंगा।

अदालत बन्द होते ही मैं साहब के बंगले पर गया। साहब कुर्सी पर बैठे थे। मैं चुपचाप खड़ा हो गया। साहब बोले—पण्डित, क्या है?

मैंने नम्रता से कहा—हुजूर, कुछ प्रार्थना चाहता हूँ।

साहब रुखाई से बोले—मैं समझ गया। तुम लोगों को छुट्टी के सिवाय और भी कुछ काम है? मैं छुट्टी नहीं दे सकता।

मैंने कहा—नहीं, मैं कुछ और ही निवेदन करना चाहता हूं।

टामस—बोलो।

मैं | हुजूर कहीं नाराज न हो जाएं।

टामस—नाराज होने की क्या बात है। बोलो।

मैं—मैं जब आपको देखता हूँ, हिन्दुओं पर अप्रसन्न ही देखता हूँ। मैं जैसा काम करता हूँ, आप भली-भाँति जानते हैं। मेरे साथी मुसलमान का भी काम आप देखते हैं। मैंने आपसे पहले कभी छुट्टी नहीं माँगी। मेरी पत्नी इस समय बीमार है। सहानुभूति मिलनी दूर रही, मुझे झिड़कियाँ मिल रहीं हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि हिन्दुओं पर आपकी अप्रसन्नता क्यों है?

कहने को तो कह गया, पर प्राण काँपने लगे। उनकी तरफ देख न सका। नीची निगाह करके खड़ा हो गया। इतने में साहब बोले—पण्डित, हिन्दुओं से मुझे बड़ी घृणा है। उन्हें देखकर मेरा खून खौल उठता है। हिन्दुओं जैसी पापी और भयंकर कौम दुनिया में दूसरी नहीं है। तुम लोग ईसाइयों और मुसलमानों को नीच मानते हो, पर वे तुम जैसे नीच नहीं हैं। हो सकता है कि वे दूसरों को सताया करते हों, पर अपने भाइयों के प्रति सुख-दुःख में

सहानुभूति रखते हैं। एक तुम्हारी कौम है जो आपस में प्रेम करना जानती ही नहीं। वह अपनों को सताती ही सताती है। अपने भाइयों पर वह और अधिक निर्दयताक्रूरता करती है। फिर भी दावा करते हो कि हमारी कौम ऊँची है।

मैं इसी देश में, इसी जाति में पैदा हुआ हिन्दू था। मुझे ईसाई किसने बनाया? तुमने और केवल तुमने। तुमने मुझे राम और कृष्ण की गोद से उठाकर ईसा की गोद में फैंक दिया। अब तुम मेरे कौन हो? हिन्दू जाति मेरी कौन होती है? मैं तुमसे घृणा न करूंगा तो क्या उनसे घृणा करूँगा जिन्होंने दुःख में मेरे प्रति सहानुभूति दिखलाई और पढ़ा-लिखा कर आदमी बनाया?

पंडित, तुम मेरी बात को न समझोगे। अच्छा, एक बात बताओ। तुम जिस बैंच पर बैठे हो, यदि इस पर कोई भंगी या बसोर आ बैठे तो तुम क्या करोगे?

पण्डित—हुजूर, यह भी कोई पूछने की बात है? अव्वल तो मैं अपने पास उसे बैठने ही न दूंगा। अगर बैठ जायगा तो उसकी मरम्मत किये बिना न रहूँगा?

साहब—आखिर तुम उन बेचारों से क्यों घृणा करते हो? क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या उन्हें तुम्हें उत्पन्न करने वाले भगवान ने उत्पन्न नहीं किया है?

पण्डित—भगवान ने तो सारी सृष्टि उत्पन्न की है, पर भगवान ने उण्हें नीच जाति में जन्म दिया हैं। उनका काम हमारी सेवा करना है। उनका आचार-विचार भी अपवित्र होता है।

साहब—सब तो ऐसे नहीं होते। कई शूद्रों का आचार विचार पवित्र होता है। ऊँची जाति के हिन्दुओं में कौन से सभी शुद्ध आचार विचार वाले होते हैं। उनके कई कृत्य तो शूद्रों से भी गये-बीते होते हैं।

पंडित—कुछ भी हो, उच्च जाति वाले शूद्रों से हजार दर्जे

अच्छे हैं।

साहब– यही तो तुम्हारी अंध परम्परा है। तुम लोग अपने ही हाथों अपने धर्म-शास्त्रों पर हड़ताल फेरते हो। मनुस्मृति में साफ कहा है कि जो ब्राह्मण ब्राह्मणधर्म का पालन नहीं करता, वह ब्राह्मण नहीं है। शूद्र भी सुकृत्य करके ब्राह्मण बन सकता है। अच्छा बताओ, तुम्हारे मन्दिर में कोई शूद्र ठाकुरजी के दर्शन करने जाना चाहे तो तुम उसे जाने दोगे?

पंडित—यह बिलकुल असम्भव है। इससे मन्दिर अपवित्र हो जायगा और ठाकुरजी का अपमान होगा। अछूत लोग स्वयं मन्दिर बनाकर प्रसन्नता से ठाकुरजी के दर्शन कर सकते हैं।

साहब– वहाँ ठाकुरजी का अपमान नही होगा?

साहब की बातों से मैं हतप्रभ हो गया। मुझसे कोई उत्तर न बन पड़ा। साहब फिर बोले—तुम लोग ऐसे पोचे विचारों के कारण अछूतों पर घोर अत्याचार करते हो। वे दिन-रात तुम्हारी सेवा करते हैं, फिर भी तुम उनसे घृणा करते हो, उन्हें जली-कटी सुनाते रहते हो। कुत्ता घर भर में फिर जाय तो कुछ नहीं, अछूत तुम्हारे मकान की एक भी सीढ़ी पर पाँव नहीं रख सकता। वे तुम्हारे कुंए से पानी नहीं भर सकते, तुम्हारे मन्दिरों की तरफ दृष्टि नहीं डाल सकते। कितने अत्याचार उनकी सेवा के पुरस्कार हैं? जानते हो, तुम्हारी इस हृदयहीनता से उनके हृदय पर कितनी गहरी चोट लगती है? और इससे तुम्हारी भी कितनी हानि हुई है?

पंडित—जी नहीं।

साहब—अच्छा, सुनो। किसी छोटे गाँव में एक वसोर रहता था। उसका टूटा-फूटा झोंपड़ा गाँव से बिलकुल बाहर था। उसके झोंपड़े से ही जंगल लगा हुआ था। तुम समझ सकते हो कि उस बेचारे के जीवन के दिन कितनी भयपूर्ण अवस्था में

बीतते होंगे ?

वसोर का परिवार बहुत छोटा था। उसमें तीन ही आदमी थे—पति, पत्नी और उसका आठ वर्ष का लड़का। फिर भी उन्हें दोनों वक्त भरपेट रोटी नसीब नहीं होती थी। वसोर गांव में बाजा बजाने जाता था और उसकी पत्नी दाई का काम करती थी। इस सेवा के बदले उन्हे वर्ष में बँधा हुआ धान्य मिलता था और वह भी कितनी ही बार करुण प्रार्थना करने पर।

एक बार की बात सुनो। गर्मी के दिन थे। गांव के मालगुजार के बेटे की शादी थी। वसोर को वहाँ बाजा बजाने के लिए जाना पड़ा। उसे आशा थी कि यहाँ से अच्छी आमदनी होगी। बेचारा दिन भर धूप में बैठा-बैठा बाजा बजाता रहा। पर उसकी आशा घातक बन गई। बेचारे को लू लग गई। शाम होते-होते बुखार चढ़ आता। घर आकर चटाई पर आ गिरा। सवेरा हुआ। वसोर मालगुजार के यहाँ न पहुंचा। बस उसका चपरासी यमदूत के समान उसके घर आ पहुंचा। गरज कर बोला—क्यों रे कमीने ! तेरा इतना दिमाग ! अब तक बाजा लेकर न आया।

वसोर को उस वक्त भी बुखार चढ़ा था। दर्द के मारे उसका सिर फटा जा रहा था। आखें लाल हो रही थीं। बड़ी दीनता से चपरासी से कहा—सरकार ! मैं मारे बुखार के मरा जा रहा हूँ। मुझ में चलने की हिम्मत नहीं है।

वसोर की बात सुनते ही चपरासी को क्रोध चढ़ आया। बिगड़ कर बोला—साले, मैं खूब जानता हूँ। तू एक नम्बर का बदमाश है। शराब पी गया होगा। अब बहाना बनाता है ! चलता है कि नहीं ?

वसोर और उसकी पत्नी ने बहुत प्रार्थनाएं की, पर चपरासी न माना। वसोर आखों में आंसू भर कर उसके पीछे-पीछे चला। उसने मालगुजार को अपना दुखड़ा सुनाया। मालगुजार ने

नौकर को आज्ञा दी—इस बदमाश को गाँव में किसने बसाया है ? इसे यहाँ से निकाल बाहर करो और निकालते-निकालते इतना मारो कि यह भी याद रखे कि किसी के साथ बदमाशी की थी।

अब बसोर क्या करता ? जान पर खेल कर बाजा बजाता रहा। दियाबत्ती होते-होते लड़खड़ाता हुआ घर लौटा। द्वार पर पहुँचते पहुँचते उसे चक्कर आ गया। गिर पड़ा। आधी रात होते होते उसकी जीवन-ज्योति सदा के लिए बुझ गई। उसकी पत्नी निराश्रित हो गई। बालक अनाथ हो गया।

प्रात:काल हुआ। विधवा बसोरिन ने बिलखता हृदय लेकर द्वार खोला। फिलहाल उसके सामने पति के शव को ठिकाने लगाने का सवाल था। पास में पैसा नही। सारा गाँव उसे अस्पृश्य-अपवित्र समझता है पति का शव ठिकाने कैसे लगेगा ? उस गाँव के दूसरे कोने में एक बसोर और रहता था। विधवा, पति के पास अपने अज्ञान बालक को बिठला कर उसके पास गई। वह उससे बोला बहिन मैं भी तुम्हारे समान दुःखी हूँ। मैं अकेला आदमी क्या करूँ ? तुम मालगुजार के यहाँ जाओ। अच्छा, मैं भी चलता हूँ। शायद उसे दया आ जाय और कुछ बन्दोवस्त कर दे।

बसोरिन उसके साथ मालगुजार के घर पहुँची। मालगुजार दालान में बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसे देखते ही बसोरिन चीख मार कर रो उठी। बोली—सरकार, मैं लुट गई। विधना ने मेरा सुहाग छीन लिया। मालगुजार पशु के समान था। उसके हृदय में दया का एक कण भी नहीं था। वह बिगड़ कर बोला—लुट गई तो मैं क्या करूँ ? मैं तो तेरा सुहाग लौटा नहीं सकता। रांड सवेरे-सवेरे अपशकुन करने आ गई !

साथ के बसोर ने कहा—सरकार, आप सच कहते हैं। कोई किसी का सुहाग नही लौटा सकता। दया करके ऐसा प्रवन्ध कर दीजिए कि उस बेचारे की लाश ठिकाने लग जाय।

इस पर मालगुजार और भी तीखा होकर बोला—मैंने क्या तुम्हारे बाप का कर्ज खाया है ? जाओ, अपनी राह लो।

वसोर हाथ जोड़कर कातर स्वर से कहने लगा – सरकार, ऐसा न कहिए। आप हमारे माई-बाप हैं। हम आपके राज्य में रहते हैं। आप ही हमारी न सुनेंगे तो कौन सुनेगा ?

पर उस पाषाण हृदय पर इस कातरोक्ति का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यह गरज कर बोला—सीधी तरह जाते हो कि नहीं ? परन्तु वसोरिन न मानी। विलाप करते-करते लेट गई और बोली —पिता, मैं आपकी बेटी हूँ। मुझ पर दया कीजिए।

अब तो मालगुजार का गुस्सा और ज्यादा भड़क उठा। कहने लगा—हाय, हाय, सवेरे-सवेरे ऐसा अपशकुन ! कोई है इन सालों को मार-मार कर अभी हटा दो।

टामस बोले—पंडित, यह है तुम्हारी हिन्दू जाति की उच्चतर करतूत ! हिन्दू अपनी सेवा करने वालों के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार करते हैं। पर तुम्हारे समाज की गौरव-गाथा यही समाप्त नहीं हो जाती। आगे और सुनों।

पति के मरने से वसोरिन बड़ी दुखिया हो गई। अब पुत्र ही उसका एक मात्र आधार था। वही उसकी आँखों का तारा और आशाओं का केन्द्र था उसका नाम दमरू था। माता के लाड़-प्यार से वह कुछ स्वच्छन्द हो गया था। रोटी खाई नहीं कि वाहर चला जाता। माता भी उससे कुछ न कहती थी।

मालगुजार के घर के पिछवाड़े वेर के कई पेड़ लगे थे। मीठे-मीठे वेर खाने के लालच से दमरू वहाँ पहुँच जाया करता था। मालगुजार का एक सात-आठ वर्ष का बालक भी वेर बीनने आया करता था वच्चे छुआछूत का भेद नहीं समझते। दमरू पेड़ पर चढ़ जाता और डालियाँ हिलाकर पड़ापड़ वेर वरसाता। मालगुजार का लड़का वेर वीनता। बाद में दोनों बाँट कर खाते।

धीरे-धीरे दोनों में बड़ा प्रेम हो गया। एक दिन मालगुजार ने दोनों को देख लिया। उसे बड़ा क्रोध आया। अपने लड़के को दो चपत लगा कर कहा—खबरदार, अब इस नीच के साथ मत रहना। दमरू से कहा—खबरदार आगे से इधर न आना। नहीं तो चमड़ी उधड़वा लूँगा। मालगुजार के इतना कहने पर भी दोनों मिलते रहे।

गाँव में एक छोटा-सा मन्दिर था। एक दिन मालगुजार के लड़के ने दमरू से कहा—आज मन्दिर में जलसा होगा। प्रसाद में पेड़े बँटेंगे। तुम भी मेरे साथ चलो। पेड़े का नाम सुनते ही दमरू नाच उठा। उस बेचारे को नहीं मालूम था कि मेरे जाने से मन्दिर अपवित्र हो जायगा। ताली पीटता हुआ वह मन्दिर में जा पहुँचा। उसे देखते ही मन्दिर में हलचल मच गई। यह हल-चल देख दमरू भौंचक्का-सा खड़ा रह गया। पुजारी पागल हो उठा। बोला—कलयुग में कमीनों के हौंसले इतने बढ़ गये हैं! यह कह कर वह दमरू पर टूट पड़ा। उसे पशु से भी बुरा पीटा। हिन्दू लोग अहिंसा की दुहाई दिया करते हैं। वे छोटे-छोटे कीड़ों पर अवश्य दया करते हैं, पर उनके हृदय में मनुष्य रूपधारी अछूतों के लिए दया का एक भी कण शेष नहीं है।

प्रसाद के बदले मार खाकर दमरू रोता-बिलखता घर पहुँचा। माता अपने लाल की यह दशा देख अस्थिर हो गई। गोद में लेकर स्नेहपूर्वक पूछा—क्या हुआ? दमरू ने सब हाल सुनाया। माता बोली—बेटा, उधर कभी मत जाना।

मन्दिर में जाने की भर पूर सजा दमरू को मिल चुकी थी, फिर भी लोगों को इससे सन्तोष न हुआ उन्होंने मालगुजार के पास जाकर शिकायत की। बसोरिन बुलाई गई। लोग क्रोध से पागल हो रहे थे। अछूत स्त्री होने के कारण बसोरिन पर हाथ नहीं उठाया, केवल गालियाँ देकर रह गये।

वसोरिन अब अपने लड़के पर पूरी नजर रखने लगी। बहुत दिन बीत गये। एक दिन आँख बचाकर वह फिर बाहर निकलगया। खेलते-खेलते उसे प्यास लगी। कुए पर दो चार स्त्रियाँ पानी भर रही थी। दमरू वहाँ जा पहुँचा। पानी माँगने पर स्त्रियां उसे गालियाँ देने लगी। अपने-अपने घड़े पटक दिये। वेचारा दमरू भौंचक रह गया। भय के मारे उसके प्राण काँप उठे। वह घर की तरफ भाग खड़ा हुआ।

गाँव भर में होहल्ला मच गया। मालगुजार के यहाँ वसोरिन की बुलाहट हुई। जाकर बोली—सरकार, मैंने उसे बहुत समझाया, पर वह मानता नहीं। नादान बालक हैं। इस बार माफ कीजिये। अब कहीं वाहर न जाने दूंगी।

मालगुजार ने कड़क कर कहाँ – रांड, अब ते'ा हौंसला वहुत बढ़ गया है। मरम्मत हुए विना न मानेगी। और उसने अपने चपड़ासी को इशारा करके कहा—मार इस रांड को, गाँव भर में उधम मचा रक्खा है ! कोई हर्ज नहीं, बाद में नहा लेना। वसोरिन बहुत गिड़गिड़ाई। पर चपरासी ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

वसोरिन रोती-पीटती घर आई। उस दिन से वसोरिन बहुत सावधान रहने लगी। उसके मन में सदैव यह भय बना रहता था कि बच्चा दो बार अपराध कर बैठा है। अब कहीं फिर अपराध कर बैठा तो न जाने क्या हालत होगी ! वह मनाया करती—हे भगवन्, तुम्हीं मेरे बच्चे पर दया रखना।

भगवान् ने उसकी कातर वाणी सुनलीं। कुछ ही दिनों के बाद उस गाँव में दो मिशनरी मेंमें आई। वसोरिन ने भी उनका उपदेश सुना। उनकी दयालु प्रकृति से वसोरिन को बड़ी आशा बँधी। उसने मेमों को अपना दुखड़ा सुनाया। मेमों की आँखे भर आई। उन्होंने कहा—मसीह दुखियों का दुख दूर

ठाकुरजी को श्रद्धा के साथ मस्तक झुकाता था और अब घृणा नहीं करोगे, क्योंकि वह हिन्दू नहीं है और तुम्हारे ठाकुरजी से घृणा करता है। कैसी मूर्खता है ? क्यों आँखें रहते अन्धे हो गये हो ?

साहब—महात्मा ईसा की शीतल छाया में दमरू की यथेष्ट उन्नति हुई और टामस नाम लेकर वह तुम्हारे सामने तहसीलदार के रूप में तुम्हारा स्वामी बना बैठा है !

मित्रों ! इस उदाहरण से मिलने वाली शिक्षा स्पष्ट है। हिन्दुओं, नेत्र खोल कर देखो।

९१ : माया की महिमा

दो मित्र थे। दोनों शामिल रहते थे। एक दिन दोनों ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि किसी भी अवस्था में हम एक दूसरे को नहीं भूलेंगे। कोई कैसा ही ऋद्धिशाली हो जाय अथवा कैसा भी गरीब रहे, एक दूसरे को बराबर याद रक्खेगा और सहायता करेगा। उस समय दोनों की स्थिति समान थी, अतएव यह प्रतिज्ञा करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं थी।

कुछ समय बाद एक मित्र को कोई बड़ा ओहदा मिल गया। अधिकार भी मिल गया और धन भी प्राप्त हो गया। दूसरा मित्र ज्यों का त्यों गरीब ही रहा।

गरीब मित्र ने सोचा— मेरा मित्र सब प्रकार से सम्पन्न हो गया है, लेकिन मुझे कभी स्मरण ही नहीं करता। सचमुच गरीब को गरीब के सिवाय कोई नहीं पूछता। कहावत है —

माया से माया मिले, कर-कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात।।

गरीब मित्र ने सोचा – मेरा मित्र मुझे नहीं पूछता तो न सही, मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसे नहीं भूल सकता। मैं स्वयं उसके पास जाकर मिलूंगा।

यह सोचकर गरीब अपने धनी मित्र के पास गया। उसने पूर्ववत् स्नेह के साथ अपने मित्र का अभिवादन किया। मगर धनी मित्र उसकी ओर चकित दृष्टि से देखने लगा और बोला – मैंने पहचाना नहीं, कौन हो तुम ?

गरीब ने सोचा– आगे की बात तो दूर ही रही, यह तो मुझे पहचानता भी नहीं है! प्रकट में उसने कहा–मैंने सुना था की मेरा मित्र अन्धा हो गया। सोचा, जाकर देख आऊं, क्या हाल है ? बिलकुल अन्धा हो गया है या थोड़ा बहुत सूझता भी है ? यहां आकर देखा कि मित्र तो एकदम ही अन्धा हो गया है !

धनी मित्र ने कहा – यह कैसे कह रहे हो ?

गरीब ने उत्तर दिया। आप मुझे बिलकुल भूल गये। अब आपकी वे आंखे नहीं रहीं, जो प्रतिज्ञा करते समय थीं। अब मैं यहां से भागता हूं, वर्ना मैं भी अन्धा हो जाऊंगा! माया से प्रभावित होकर लोग अन्धे हो जाते हैं ।

६२ : अर्थ का अनर्थ

कई बार वक्ता लोग कथा के [illegible] वर्णन को बड़े अलंकारों से सजाते हैं पर सार भूत वर्णन को बहुत [illegible] देते हैं, इसलिए श्रोता उस कथा के सार को समझ नहीं सकते। कई जगह ऐसा भी होता है कि श्रोता भी [illegible]

अनर्थ कर देता है। वक्ता कहता कुछ ओर है और श्रोता कुछ ओर ही समझता है।

एक पण्डितजी रामायण की कथा बांच रहे थे। उन्होंने कहा 'सीता–हरण हो गया–पर एक श्रोता ने समझा 'सीता को हरणिया हो गया' यानी सीता मृगी (हरिणी) बन गई।

कथा रोज बंचती थी। वह श्रोता हमेशा उत्सुक रहता कि देखें सीता, हरिणी से वास्तविक सीता कब बनती है। बहुत दिनों बाद कथा समाप्त होने के अवसर तक भी हरिणी बनी हुई सीता की वास्तविक सीता होने की बात न सुनी, तब उस श्रोता से न रहा गया। वह बोल ही उठा–'पण्डितजी, सीता हरिणी तो हो गई पर फिर सीता हुई या नहीं ?'

पण्डितजी ने अपने सिर पर हाथ लगाकर कहा – फूटे नसीब तुम्हारे और हमारे शामिल ही! मैंने कहा था क्या और तुमने समझा क्या!'